दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

Directorate of Distance Education

जम्मू विश्वविद्यालय

UNIVERSITY OF JAMMU

जम्मू

JAMMU

पाठ्य सामग्री

STUDY MATERIAL

एम० ए० हिन्दी

M.A. (Hindi)

2020 onwards

Semester - Ist

सत्र – प्रथम

पाठ्यक्रम संख्या - **HIN 104** आलेख संख्या – 1 से 23 तक

COURSE CODE – HIN 104 **LESSON NO. 1 - 23**

रीति एवं आधुनिक काव्य

DR. ANJU THAPPA

Co-ordinator P. G., Hindi

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू – 180006 के पास सुरक्षित है।

http:/www.distanceeducationju.in

Printed and Published on behalf of the Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu by the Director, DDE, University of Jammu, Jammu.

M.A. HINDI

COURSE CONTRIBUTORS :

PROF. PUSHP PAL SINGH **Lesson - 1 to 4**
Retd. Professor, Department of Hindi
Punjabi University, Patiala.

PROF. PARMESHWARI SHARMA **Lesson - 5 to 12**
Department of Hindi
University of Jammu.

PROF. PARVINDER KOUR **Lesson - 13 to 16**
Department of Hindi
University of Jammu.

DR. MEETA SHARMA **Lesson - 17 to 20**
Associate Professor, Department of Hindi,
University of Rajasthan, Jaipur

DR. PARSHOTAM KUMAR **Lesson - 21 to 24**
Assistant Professor, Department of Hindi,
University of Jammu

REVIEW, CONTENT EDITING & PROOF READING
DR. POOJA SHARMA
Lecturer in Hindi
Director of Distance Education
University of Jammu, Jammu.

Printed by : DTP Print-o-Pack/ 2021 / 500

M.A. Hindi

आलेख संख्या	आलेख	पृ० संख्या
1.	सतसई परम्परा में बिहारी का स्थान	1 – 9
2.	बिहारी की रस योजना	10 – 19
3.	बिहारी की बहुज्ञता	20 – 28
4.	बिहारी की काव्य कला	29 – 40
5.	घनानन्द की प्रेम व्यंजना	41 – 58
6.	घनानन्द का श्रृंगार वर्णन	59 – 70
7.	घनानन्द की काव्य कला	71 – 79
8.	घनानन्द की भक्ति भावना	80 – 90
9.	कामायनी की दार्शनिकता	91 – 101
10.	कामायनी का महाकाव्यत्व/काव्य कला	102 – 112
11.	कामायनी में इतिहास और कल्पना	113 – 123
12.	कामायनी में रूपक तत्व	124 – 137
13.	प्रगतिवादी कविता एवं नागार्जुन	138 – 145
14.	नागार्जुन की जन चेतना	146 – 154
15.	नागार्जुन का व्यंग्य	155 – 162
16.	नागार्जुन का शिल्प विधान	163 – 170
17.	अज्ञेय की प्रतीक योजना	171 – 187
18.	अज्ञेय की काव्य संवेदना	188 – 205
19.	अज्ञेय की काव्य भाषा	206 – 214
20.	प्रयोगवाद और अज्ञेय	215 – 230
21.	मुक्तिबोध की काव्य दृष्टि	231 – 238
22.	मुक्तिबोध की काव्य कला	239 – 252
23.	समकालीन कविता और मुक्तिबोध	253 – 266
24.	निर्धारित कविताओं का वैशिष्ट्य	267 – 279

सतसई परम्परा में बिहारी

1.0 रुपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 सतसई परम्परा में बिहारी

1.4 सारांश

1.5 कठिन शब्द

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

- सतसई परम्परा में बिहारी का स्थान निर्धारित कर सकेंगे।
- शृंगारी कवि के रूप में बिहारी से परिचित हो सकेंगे।
- बिहारी सतसई में प्रवाहित शृंगार, भक्ति एवं नीति की त्रिवेणी से अवगत हो सकेंगे।
- बिहारी की भाषा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

'बिहारी सतसई' बिहारी की एकमात्र रचना है और इसी पर उनकी ख्याति अवलंबित है साहित्यिकों और सहृदयों को यह अत्यन्त प्रिय कृति रही है। 'बिहारी सतसई' शृंगार–रस का अमर ग्रन्थ है। भाव, भाषा, अलंकार और नायिका भेद की दृष्टि से यह एक अत्यन्त प्रौढ़ कृति है। बिहारी ने अपने से पूर्व छः सौ वर्ष के काव्य को धर्म के प्रभाव से मुक्त करके जीवन की ओर मोड़ा। लौकिक जीवन के एक बड़े पक्ष के सौन्दर्य, क्रीड़ा और आनन्द का जैसा सजीव वर्णन बिहारी में पाया जाता है, वैसा आज तक किसी कवि के काव्य में नहीं मिलता। रीतिकाल के दो सौ वर्ष की कड़ी टूटी हुई दिखायी देगी, यदि उसमें से बिहारी का नाम निकाल दिया जाय तो।

1.3 सतसई परम्परा में बिहारी

जो कोऊ रस–रीति को, समुझौ चाहे सार।

पढ़ै बिहारी सतसई, कविता को सिंगार।।

X X X X X

सतसैया के दोहे, ज्यों नाविक के तीर।

देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।।

साहित्यिक जन–मानस में प्रचलित ये दोनों लोकप्रिय दोहे स्वतः ही सतसई–परम्परा में बिहारी का महत्त्व–निर्धारण कर देते हैं। ग्रियर्सन, लाल चन्द्रिका के प्रसिद्ध कवि, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास रत्नाकर, पं॰ पद्म सिंह शर्मा, आदि ने विविध रूपों में महाकवि बिहारी की सतसई की प्रशंसा कर इसका महत्त्व प्रतिपादित किया है।

'सतसई' का अर्थ है सात सौ दोहों, मुक्तकों, का संग्रह। सात सौ ही नहीं, तीन सौ फुटकर पदों, मुक्तक काव्यों, के संकलन की परंपरा हमारे देश में बहुत पुराने समय से चली आ रही है जिनमें सात सौ या सौ पदों के संकलन की प्रथा बहुत लोकप्रिय रही है। प्राचीन समय में कवि प्रायः ही अपने फुटकल–मुक्तक–पदों को संख्यापरक नाम दे दिया करते थे। सौ पद्यों का संग्रह शतक और सात सौ पदों–दोहों, आदि का संग्रह सतसई कहा जाता था अमरुक का 'अमरुक शतक' तथा भर्तृहरि के तीन शतक – शृंगार शतक, भक्ति शतक तथा नीति शतक तो प्रसिद्ध हैं ही, मयूर कवि का सूर्य–स्तुति में रचित 'सूर्यशतक' तथा बाप कवि विरचित चण्डी की स्तुति में लिखा गया 'चण्डी शतक' भी पर्याप्त लोकप्रिय रहे हैं। बाप के समय में तो संस्कृत में शृंगारशतक शतकों की परंपरा पर्याप्त लोकप्रिय हुई। चौदहवीं शती से पूर्व उत्प्रेक्षा वल्लभ ने सुंदरी शतक की रचना की थी, इसके बाद अठारहवीं शती में विश्वेश्वर कवि ने रोमावली शतक' लिखा था। मुबारक, आदि कवियों के 'अलक शतक'

और 'तिल शतक' इसी परम्परा में पड़ते हैं। अपनी नयी शृंगारी उद्भावनाओं के कारण ये पर्याप्त लोकप्रिय भी हुए 'तिल शतक' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

ठोड़ी में एक तिल लसै, कवि यों उपमा नत देत।

रूप कूप डूब्यौ कोई, ससी दिखाई देत।।

ऐसे रसिक–प्रिय दोहों की रचना इस कारण भी प्रचुर मात्रा में हो रही थी कि तत्कालीन राजे–रजवाड़ों में मुग़लिया दरबारी संस्कृति का प्रभाव था। साथ ही फ़ारसी की शायरी में जिस प्रकार की रचना हो रही थी, हिंदी कवि को उनसे भी होड़ लेनी पड़ रही थी। उनकी प्रतिस्पर्द्धा में ये ऐसे दोहे या मुक्तक लिखने की परंपरा बलवती हुई जिनमें अतिशयोक्ति, वैचित्र्य और शृंगार रस की प्रधानता थी। वस्तुतः संख्यापरक नाम देकर संस्कृत में बहुत से ग्रंथ लिखे गये। हाल नाम से प्रसिद्ध कुन्तल नरेश सातवाहन या शालिवाहल लिखित 'गाथा सप्तशती' इस प्रकार की सात सौ पद्यों की प्रथम रचना है और बिहारी लाल की सतसई इसी परंपरा की कृति है जिसने हिंदी की सतसई परंपरा को काव्य कला की दृष्टि से चरम पर पहुँचा दिया। इस परंपरा का दूसरा श्रेष्ठ ग्रंथ कवि अमरुक या अमरुक कृत 'अमरुक शतक' है जिसमें शृंगार रस के मुक्तकों की प्रधानता है, उसमें भी विप्रलंभ शृंगार का आधिक्य है। 'अमरुकशतक' से भी अधिक महत्ता और लोकप्रियता 12वीं शती के आसपास बंगाल के गोवर्द्धन कवि प्रणीत 'आर्या सप्तशती' की है। 'आर्या' छंद में लिखी जाने के कारण इसे 'आर्याशप्तशती' कहा गया। वस्तुतः यह हाल की 'गाथा सप्तशती' के आदर्श पर ही रची गयी थी। शृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृत भाषा को ही उपयुक्त माना जाता था किंतु गोवर्द्धन ने संस्कृत में 'आर्यासप्तशती' की रचना कर एक चुनौतीपूर्ण कार्य किया किंतु 'गाथा सप्तशती' के अंधानुकरण के कारण उसे अपेक्षित गौरव प्राप्त न हो सका। इस प्रकार सतसई परंपरा में इन तीन ग्रंथों – हाल की 'गाथासप्तशती', 'अमरुकशतक' तथा गोवर्द्धन कवि की 'आर्यासप्तशती' का विशेष महत्त्व है, यद्यपि 'अमरुकशतक' में केवल सौ पद्य ही हैं। इस परंपरा में उन कृतियों को भी परिगणित किया गया जो संख्यापरक और शृंगार–रस प्रधान हैं। विलृण कवि कृत 'चौर पंचाशिका' या 'चोरी सुरत पंचाशिका' भी इसी प्रकार की एक प्रसिद्ध रचना है। कवि ने राजकुमारी से गुप्त प्रेम किया था, इसीलिए उस विषय पर रचित कृति का यह नाम रखा गया। इसी प्रकार प्रसिद्ध कवि बाप के श्वसुर तथा श्रीहर्ष के दरबारी कवि मयूर का लिखा 'सूर्यशतक' भी इसी परंपरा का ग्रंथ माना गया है। इस प्रकार शतक और सतसई परंपरा के अनेक ग्रंथों का प्रणयन होता रहा, इस सम्बन्ध में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी का मत समीचीन है, "प्राकृत और संस्कृत के समान ही अपभ्रंश में भी सतसई और शतकों की परंपरा बनी रही पर दुर्भाग्यवश अब वह साहित्य उपलब्ध नहीं है। हेमचन्द्र के व्याकरण में आए हुए दोहों को देख कर अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि उस समय वह परम्परा जीती अवश्य होगी। इस प्रकार बिहारी की सतसई किसी रीति मनोवृत्ति की उपज नहीं है। यह एक विशाल परंपरा के लगभग अंतिम छोर पर पड़ती है और अपनी परंपरा को संभवतः अंतिम बिन्दु तक ले जाती है।" वस्तुतः बिहारी सतसई की लोकप्रियता ने इस 'संभवत' के लिए स्थान नहीं छोड़ा है अपितु निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सतसई परंपरा में सर्वोपरि ग्रंथ है।

बिहारी जिस सतसई परंपरा में आते हैं, उनका उन्होंने गंभीर दोहन किया था। उन सबके मनोहारी प्रभावों को आत्मसात् करते हुए उनकी कवि–चेतना निर्मित हुई है। किंतु कवि की विभिन्न उक्तियों में सीधे–साधेगाथा–सप्तशती', 'आर्याशप्तशती' या हिन्दी के पूर्ववर्ती रीति कवियों केशव, सेनापति, सुंदर, आदि के काव्य की अनुकृति,ाधानुकृति मानना उचित नहीं होगा। यदि किसी कवि का कोई पद्य, कवित्त, दोहा, आर्या छंद, आदि उन्होंने गाया भी है, तो मात्र प्रसंग या मान–कल्पना वहाँ से ले कर बिहारी ने उसे अपनी मौलिक कल्पना से ऐसा रूप दे दिया है कि वह और अधिक कांतिमान तथा प्रभावी हो उठता है। आधुनिक काल में प्रारंभ में जब साहित्य में तुलनात्मक समीक्षा का जोर था, बिहारी श्रेष्ठ है या देव, जैसी बहसें चल रही थीं अथवा पं॰ पद्म सिंह शर्मा जैसे लोग 'गाथा'–सप्तशती' तथा 'आर्यासप्तशती' से तुलना कर उनकी श्रेष्ठता प्रमाणित कर रहे थे – तब ऐसे प्रयत्न हुए कि बिहारी के दोहों को उनके समकक्ष रख कर तुलित कर उन पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन किया गया। किंतु वास्तविकता यह है कि श्रेष्ठ कवि किसी का अनुकरण नहीं करता, अपितु वह उसे अपना बना कर प्रस्तुत करता है। बिहारीलाल के संदर्भ में भी यही बात उचित ठहरती है कि उन्होंने परम्परा–प्राप्त सामग्री का उपयोग करके भी इसे नितांत मौलिक रूप में प्रस्तुत किया। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य होंगे : प्राकृत–संस्कृति के दिए गए उद्धरण छात्रों के लिए दुर्बोध होंगे, उनका भावार्थ देकर स्पष्ट किया जायेगा कि बिहारी अपने पूर्ववर्तियों से किस प्रकार अलग हैं और सतसई परंपरा को उनका अपना मौलिक योगदान क्या है।

'गाथा सप्तशती' का मुक्तक पद है कि प्रियप्रवास से अभी तो लौटा है और कुछ समय बाद ही पुनः जाने की बात उठाने लगा, इस पर गाथाकार नायिका से कहलाते हैं, 'हे दुष्कर व्यवहार करने वाले प्रिय, नायिका के केश जो तुम्हारे प्रवास की अवधि में बाँधे नहीं जा सके (व्यथित दशा के कारण), अभी तक उलझे पड़े हैं, सुलझ नहीं पाए हैं और तुम पुनः प्रवास में जाने की बात कहने लगे।"

इसी मनोदशा को बिहारीलाल अपनी ही तरह से चित्रित करते हैं उन्हें केवल केशों की चिंता नहीं है, संपूर्ण शरीर ही प्रिय वियोग में दुबला (दूबर) हो गया था, अभी उस पर स्वास्थ्य का सहज रंग चढ़ा भी नहीं है कि ललन ने चलन की बात पुनः चला दी –

अजैं न आये सहज रंग, बिरह दूबरे गात।
अब ही कहा चलाइयत, ललन चलन की बात।।

तो बिहारी लाल नायिका के केशों की चिंता में ही 'दूसरे' नहीं होते, उनकी चिंता नायिका के पूरे शरीर, स्वास्थ्य की कांति को लेकर हैं। यह मौलिकता उनकी कवि–प्रतिभा सृजित है। इस प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण मिल जाएँगे जहाँ कवि गौवर्द्धन की 'आर्यासप्तशती' के भावों से भी बहुत आगे चला जाता है किंतु 'बिहारी सतसई' की श्रेष्ठता आँकने के लिए केवल ''गाथा सप्तशती', 'अमरुक शतक', 'आर्याशप्तशती' के पदों से तुलना करना ही पर्याप्त नहीं होगा, उन कारकों का विवेचन अभीष्ट होगा जो उसे अपनी परंपरा से विलग कर अद्वितीय बनाते हैं।

बिहारी के दोहों का सबसे बड़ा गुण है कि वे जिस रसराज श्रृंगार का चित्रण करते हैं, उसका माध्यम सामान्य नायिका को बनाया है, यह दूसरी बात है कि यह नायिका कहीं न कही लक्षण ग्रंथों या कामशास्त्र में वर्णित नायिकाओं की कोटि में आ जाती हैं, या उस कसौटी पर कस जाती है। इस नायिका को उन्होंने राधा, कृष्ण–प्रेमिका, के रूप में दिखाया है। इसलिए उनके काव्य के ये दो नायक सामान्य हो कर भी विशिष्ट बन जाते हैं – वस्तुतः ही यहाँ 'राधा–कृष्ण' 'सुमिरन कौ बहानौ' भर हैं। उनके क्रिया–कलाप, भाव–अनुभाव, प्रेम–क्रीड़ाओं के विविध रूप सब हमारे समाज के हैं, आधुनिक शब्दावली में कहें तो सामान्य जन के हैं, यथा–

पीठी दिये हौं, नेक मुरि, कर घूँघट–पट टारि।

भरि, गुलाल की मूठि सौं, मई मूठि–सी मारि।।

यह प्रेम की बड़ी स्वाभाविक भंगिमा है, 'नेक मुरि' कर घूँघट वाली चितवन से ऐसी दृष्टि–मूठ कर देना मानो प्रेमी पर गुलाल की मुट्ठी बिखेर दी गयी है, फेंक दी गयी। यहाँ तक तो अभिधापरक अर्थ सामान्य पाठक/श्रोता को अभिभूत करता है किंतु इसमें प्रबुद्ध पाठक के लिए एक और भाव अन्तर्निहित है। 'मूठ मारना' या 'मूठ चलाना' तंत्र शास्त्र के अनुसार एक वशीकरण का उपाय है जिसमें मूठ में तिल, यव (जौ) आदि को अभिमंत्रित कर प्रिय पर वशीकरण के लिए चलाया जाता था। छोटे–से दोहे में इतनी अर्थवत्ता भर देना, बिहारी की ही कला है, इसीलिए उनके दोहे 'देखत में छोटे लगें घाव करें गंभीर' की श्रेणी में आते हैं। बिहारी अपने को – 'रीतिकाल' में भी रखते हैं और उससे बाहर भी, उन्हें भले ही 'रीति सिद्ध' में श्रेणीबद्ध किया जाए किंतु वे उस चौहद्‌यी से बाहर आकर भी अपने पाठक को रस–रिक्त करते हैं।

बिहारी रूप–चित्रण में भी अद्वितीय हैं। यूँ तो नख–शिख वर्णन से पूरा रीति साहित्य अँटा पड़ा है। रूप–सौंदर्य के एक से एक सुंदर चित्र और बिम्ब यहाँ उपलब्ध हैं किंतु 'बिहारी सतसई' अपनी कारीगरी से अपनी नायिका का ऐसा रूप–चित्रण करते हैं जो आज भी पाठक को मनोहर लगता है, भले ही वे नख–शिख चित्रण की पारंपरिक शैली में भी परिलक्षित किए जा सकते हैं। उनका रूप–चित्रण मादक तो है ही, वह प्रभाव में 'मारक' भी है जिसे बांग्ला भाषा में भीषण सौंदर्य कहा जाता है, एक उदाहरण से बात स्पष्ट होगी। केशों की सुन्दरता का वर्णन विविध रूपों में किया गया है किंतु बिहारी वह चित्रण इस रूप में करते हैं कि नायक पर 'मारक' प्रभाव पड़ता है – वह पक्ष–अपक्ष–मार्ग–कुमार्ग – सब भूल जाता है, वह सहसा ही इस बात का विश्वासी हो उठता है कि प्रेम मार्ग (और युद्ध मार्ग) में सब कुछ जायज़ है –

सहज सचिक्कन, स्यामु–रुचि, सुचि, सुगंध, सुकुमार।

गलतु न मनु पथु अपथु, लखि बिथुरे सुथरे बार।।

तनिक शब्दों पर ध्यान दीजिए – ये केश सहज चिकने, काले, अमल, मनोहर गंध वाले हैं – इन्हें किसी प्रकार से 'ट्रीट' नहीं कराया गया है – (कैमिकल्स का प्रयोग तो उस समय नही था, पर अगरु–चंदन चर्चित

केशों का प्रचलन अवश्य था) इस नायिका के केश स्वभाव से ही इन गुणों से पूरित हैं और बिखरे–छितराये बाल आज भी उसी प्रकार मन मोहते हैं जिससे नायक का मन 'पथ–अपथु' की गणना ही नहीं करता। इस प्रकार उनका सौंदर्य–चित्रण आज के पाठक को भी प्रभावी लगता है।

रूप–चित्रण के इस मादक प्रभाव की चर्चा को छोड़ कर बिहारी सतसई में प्राप्त अनुभाव चित्रण की ओर आते हैं जिसके कारण इन दोहों की लोकप्रियता निरंतर बनी रही है। दोहे जैसे छोटे–से छंद में नायिका के इतने हाव–भावों का चित्रण अनुभाव–चित्रण के द्वारा ही संभव हुआ है। सामान्यतः यह माना जाता है कि दोहे के छोटे कलेवर में प्रबंध काव्य के समान एक भाव की अभिव्यक्ति के लिए कई चेष्टाओं का वर्णन प्रायः असंभव है किंतु बिहारी की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने दोहों में एक साथ कितनी ही आंगिक चेष्टाओं और मनोदशा के अनुरूप अंग–संचालन की क्रियाओं को सफलतापूर्वक चित्रित कर दिया है। इस सम्बंध में दो उदाहरण पर्याप्त होंगे –

कहत, नटत, रझित, खिलत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात।।

X X X X X

बतरस–लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।

सौंह करैं, भौंहनु हंसैं, दैन कहैं नटि जाइ।।

'बिहारी सतसई' की लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा कारण उसकी मधुर रस पगी अत्यंत परिनिष्ठित ब्रज भाषा है। उनसे पूर्व के किसी भी कवि में ब्रजभाषा का ऐसा व्यवस्थित, परिमार्जित और मनोहर रूप नहीं मिलता। अपनी कला से उन्होंने भाषा को अपेक्षित गांभीर्य और अर्थवहन क्षमता प्रदान की। भाषा में अलंकारों का प्रयोग प्रायः उन्होंने स्वाभाविक रूप में किया है, कहीं–कहीं युग–रुचि के अनुसार उसमें वैचित्र्य प्रदर्शन भी मिलता है किंतु ऐसे दोहों की संख्या अधिक नहीं है। भाषा–वैभव की चर्चा, उनकी काव्य–कला पर विचार करते समय करना ही अमल होगा कि बिहारी ने ब्रजभाषा को बहुत ऊँचाई दी, तथा बाद के घनानंद सरीखे लोगों को उसे इतना समृद्ध बनाने का अवसर प्राप्त हो सका।

'बिहारी सतसई' की एक और बड़ी विशेषता है कि उसके कवि को जो लाघव शृंगार के दोहों की रचना में प्राप्त हैं, वही भक्ति के दोहों की रचना में भी देखा जा सकता है। अन्य सतसइयों में शृंगार और भक्ति की ऐसी युगपत धारा दिखाई नहीं देती। भक्ति के साथ नीति–परक दोहे भी बिहारीलाल ने लिखे, वे सीधे हृदय पर प्रभाव डालने में सक्षम हैं। 'सतसई' में मंगलाचरण रूप में उनका यह दोहा तो प्रसिद्ध है ही–

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोई।

जा तन की झाईं परैं स्यामु हरित–दुति होई।।

बिहारी ने अनेक कृष्ण लीलाओं का इंगितपूर्ण चित्रण धारण लीला से संबंधित दोहा द्रष्टव्य है –

लोपे कोपे इन्द्र सबै गो, गोपी, गोपाल।।

कहीं वे संत कवियों के समान भक्ति के सच्चे स्वरूप की व्याख्या करते हैं ––

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु।

मन काँचे नाचे बृथा, साँचै राँचे रामु।।

बिहारी कृत नीति के दोहे भी अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं, कहीं–कहीं तो लगता है, वे अपने जीवन–अनुभव का निचोड़ प्रस्तुत कर समाज को एक दिशा दे रहे हैं, दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

बड़े न हुजै गुननू बिनु बिरद बड़ाई पाइ।

कहत धतरे सो किनकु गीनो गढ़यौ न जाइ।।

X X X X X

नर की अरु नल नीर की गति करि जोइ

जे तो नीचो ह्वै चलै ते तौ ऊँचौं होइ।।

1.4 सारांश

इस प्रकार शृंगार, भक्ति और नीति की त्रिवेणी 'बिहारी सतसई' में प्रवाहित होती हुई उसे अन्य सतसइयों से अलग कर एक महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी बनाती है। आज के इस भूमंडलीय समय में लगभग पूरे देश के विश्वविद्यालयों में 'बिहारी सतसई' पढ़ी–पढ़ायी जा रही है, यह इसके अक्षय गौरव का बहुत बड़ा प्रमाण है। वस्तुतः बिहारीलाल की सतसई परंपरा का अत्यंत गौरवपूर्ण ग्रंथ है।

1.5 कठिन शब्द

1. परिगणित
2. प्रणयन
3. दुर्बोध
4. अभीष्ट
5. अभिधापरक
6. प्रबुद्ध

7. परिमार्जित
8. परिनिष्ठित
9. इंगितपूर्ण
10. परिलक्षित

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र॰1. 'बिहारी सतसई' की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र॰2. सतसई परम्परा में बिहारी का स्थान निर्धारित कीजिए ।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र॰3. बिहारी सतसई में प्रयुक्त भाषा पर सारगर्भित लेख लिखें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. श्याम सुन्दर दूबे
3. बिहारी व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन – रमेश चंद्र गुप्त
4. बिहारी सतसई : तुलनात्मक अध्ययन – पद्मसिंह शर्मा
5. बिहारी सतसई का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – रामकुमारी मिश्र
6. बिहारी का नया मूल्यांकन – बच्चन सिंह

_____

बिहारी की रस योजना

2.0 रुपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 बिहारी की रस–योजना

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्द

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 सन्दर्भ–ग्रन्थ/पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– रीति–सिद्ध कवि बिहारी के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

– बिहारी की रस योजना से अवगत हो सकेंगे।

– रीतिकालीन काव्य श्रृंगार–प्रधान है इसका अध्ययन कर सकेंगे।

– संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत बिहारी द्वारा विभिन्न क्रिया कलापों का चित्रण किया गया है इससे अवगत हो सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

बिहारी रीति–सिद्ध कवि होने के साथ–साथ एक रससिद्ध कवि भी थे। बिहारीलाल जिस साहित्य–युग में उत्पन्न हुए, उसकी परंपराओं का उन पर प्रभाव पड़ना तो स्वाभाविक ही था किंतु जब वे लीक से अलग हट कर रस पूर्ण दशा मे अपने दोहों की रचना करते हैं तो उनका काव्य अद्वितीय हो उठता है। इस प्रकार उनमें परंपरा और मौलिकता का अत्यंत सफल निर्वाह हुआ है। रसराज शृंगार उनके काव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य है, शेष भक्ति तथा शांत रसों की अवस्थिति गौण रूप में उनके काव्य में है। कुछ लोगों ने उनकी व्यंग्योक्तियों तथा प्रकृति–चित्रण की रचनाओं को इनसे इतर माना है किंतु उनके नीति विषयक पद शांत रस में समाहित हो जाते हैं तथा कहीं–कहीं वे भक्ति रस के सीमांत को भी छूते हैं। बिहारी काव्य में प्रकृति–चित्रण स्वतंत्र रूप में प्राप्त नहीं होता है, वह शृंगार–रस के संयोग या वियोग पक्ष में उनका उद्दीपक बन कर ही आया है। इस प्रकार शृंगार रस 'बिहारी सतसई' का मुख्य रस है जिसमें कहीं–कहीं वियोग–पक्ष का भी चित्रण हुआ है किंतु कवि की वृत्ति उसमें रमी नहीं है, परंपरा–पालन–मात्र के लिए प्रेम का वियोग–पक्ष चित्रित है।

2.3 बिहारी की रस–योजना

बिहारी और अधिकांश रीतिकालीन कवि शृंगार के संयोग पक्ष के ही कवि हैं, वियोग–पक्ष के नहीं। संयोग–पक्ष में भी उनका शृंगार रस जिस रूप में प्रस्तुत हुआ, है। उसके विषय में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का मत द्रष्टव्य है, "रीतिकाल का काव्य यद्यपि शृंगार–प्रधान है। पर इस शृंगार रस की साधना में जीवन की संतुलित दृष्टि का अभाव है, जैसे सब ओर से चोट खा कर किसी ओर रास्ता न पा कर बुद्धि घर के भीतर सिमट गई हो, जैसे जीवन के व्यापक क्षेत्रों में मनोनिवेश का अवसर न मिलने के कारण मनोरंजन का साधन नारी देह की सीमाओं और चेष्टाओं के अवलोकन–कीर्तन तक ही सीमाबद्ध हो गया हो।" किंतु इस सबके बीच भी वे बिहारी को अलग श्रेणी का कवि मानते हैं, "किंतु एक दूसरे प्रकार के कवि होते हैं जिनका चेतन चित्त आविष्ट नहीं होता। वे शब्दों और उनके अर्थों पर विचार करते रहते हैं और तैरते रहते हैं। शृंगार रस की अभिव्यंजना के समय ऐसे कवि रसोद्दीपन–परक चेष्टाओं की पूरी मूर्ति ध्यान में रखते हैं। वे प्रिया की शोभा, दीप्ति, कांति के साथ–साथ माधुर्य, औदार्य आदि मानस गुणों को भी जब व्यक्त करना चाहते हैं तो उन आंगिक और वाचिक चेष्टाओं का चित्र खींचते हैं तो उन तत्रद्गुणों की मानसिक अवस्था की व्यंजना करते हैं।.....बिहारी इस कला में बड़े पटु हैं।" इस अभिमत से स्पष्ट है कि आचार्य द्विवेदी बिहारी के शृंगार–चित्रण को उस काल के अन्य कवियों से विशिष्ट मानते हैं, जो अपने न्यूनाधिक अभावों के होते हुए भी निश्चय ही विशिष्ट बन पड़ा है।

संयोग शृंगार में प्रिय के रूप–सौंदर्य पर आसक्त होना स्वाभाविक है। इस आसक्ति में प्रेमी (तथा कवि) प्रिया के रूप को विभिन्न रूपों में सराहता है। बिहारी अपनी नायिका के अंग–प्रत्यंग, रीतिकालीन शब्दावली में कहें तो नख–शिख, का चित्रण बड़े मनोहारी रूप में करते हैं। संपूर्ण मुख, केश, नासिका, अधर, दशन, कपोल, नेत्र, भ्रकुटि, मस्तक, ग्रीवा, वक्षस्थल, नाभि, उदर–त्रिवली, कटि, जघन, नितम्ब – सब पर उन्होंने दोहे रचे हैं

किंतु उनमें विशेष रसपूर्ण वे दोहे हैं जिनमें संपूर्ण मुख–वैभव, नेत्रों का चुम्बकीय प्रभाव, संपूर्ण देहयष्टि का सौंदर्य छलक–छलक पड़ता है। संपूर्ण मुख–छवि के उजास को देखकर अनेक कवियों ने चन्द्रमा को लज्जित किया है किंतु बिहारीलाल उस मुख–सुषमा की कांति की बात इस रूप में करते हैं कि उसका चारों ओर फैलने वाला प्रभाव पूनम के चाँद को भी भुला देता है –

पत्रा ही तिथि पाइयै वा घर कै चहुँ पास।

नित प्रिय पून्यौई रहत, आनन ओप उजास।।

यद्यपि यहाँ अतिशयोक्ति के प्रयोग से चित्रण युग–कवि के निकट जा पहुँचता है किंतु असली बात उस सौंदर्य के सर्वव्यापी रूप की है। चन्द्रमा को विविध रूपों में प्रिया के मुख से तुलित करने की परंपरा अत्यंत प्राचीन है किंतु घूँघट के बीच से झलकता यह चन्द्रमा मानो (नीले जल वाली) यमुना में अपनी परछाईं दिखाकर अपने आकर्षण में बाँध रहा है –

छिप्यौ छबीलौ मुख लसै नीलै अंचर–चीर।

मनो कलानिधि झलमलै कालिन्दी कैं नीर।।

इस प्रकार बिहारी चन्द्रमा के परंपरित उपमान को नई भंगिमा के साथ अपने .....में प्रयुक्त करते हैं किंतु रूप चित्रण में संपूर्ण देहयष्टि के लिए उनका नया बिम्ब और उपमान साहित्य में विरल है। इस मनोहारी चित्रण का यह दोहा कल्पतरु की परछाईं को सिंधु में सपल्लव डार (पुष्ट बाहों) के रूप में देखता है –

झीनैं पट मैं झुलमली झलकति आपे अपार।

सुरतरु की मनु सिंधु मैं लखति रूपल्लव डार।।

बिहारी के शृंगार–चित्रण की विशिष्टताओं को रेखांकित करते हुए अधिकांश लोग बिहारी के केवल विभिन्न अंगों के सौंदर्य को ही देखते हैं, क्योंकि देहयष्टि, उसके ओप, गौर वर्ण आदि के समग्र प्रभाव को बिहारी ने जिस प्रकार महत्त्व दिया है, वह पक्ष अलक्षित रह जाता है। पीले रंग (गौर वर्ण) को सोनजुही से तुलित करते हुए करूंभि (पुण्य के) रंग की कंचुकी से सज्जित प्रिया (लोगों को 'नायिका' कहना ही अधिक आता रहता है) जब निकलती है तो उसका कैसा मादक प्रभाव पड़ता होगा यह बिहारी के इस दोहे में देखिए – (रंगों की पहचान कोका कलर, लैमन कलर आदि के माध्यम से प्राप्त करने वाली पीढ़ी को 'कुसुंभी' पुण्य रंग की पहचान का बोध कैसे दिया जाए !!)

सोनजुही–सी जगमगाती अँग–अँग जोबन–जोति

सुरंग, कसूँभी कंचुकी दुरँग देह–दुति होत।।

सोनजुही के पीत रंग में जब लाल कुसुंभी रंग की झलक पड़ती होगी तो प्रिया का वह रूप अपरूप हो उठता होगा। इस रूप–चित्रण में नेत्रों का विशेष महत्त्व है, नेत्रों के विशाल आकार (विशालाक्षी), उनकी चितवन, भंगिमा तथा चांचल्य का चित्रण कवि ने विविध रूपों में किया है। सबसे अधिक कवि झीने पट के बीच से झाँकते चंचल नयनों पर रीझा है –

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट पट झीन।

मानहु सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन।।

यहाँ नेत्रों को केवल जल में उछलते युग मीन ही नहीं कहा गया है, देव नदी गंगा के निर्मल जल में उछलता बता कर कवि इन नेत्रों और प्रेम के पावित्र्य को प्रकट करना चाहता है। गौर वर्ण पर नीले अचंल की बात अनेक कवियों ने की है किंतु उसमें छिपे मुख (नेत्रों) को देश की सबसे अधिक पवित्र मानी जाने वाली सरिताओं में प्रतिबिम्बित दिखाने में बिहारी का कला–कौशल है। ऊपर सुर–सरिता गंगा में पड़ता प्रतिबिम्ब था, तो यहाँ कालिंदी में पड़ता यह प्रतिबिम्ब दर्शनीय है –

छिप्पौ छबीले मुँहु लसै नीलैं अधर चीर।

मनौ कलानिधि झलमलै कालिंदी कैं नीर।।

उपर्युक्त दोहे में 'नीर' कह कर कवि अभिव्यंजित करना चाहता है कि यमुना की मंद लहरों में मानो चंद्रमा झलक रहा है। 'नीर' धीर समीर में बहता जल है, इस रूप में कवि का शब्द–चयन–कौशल भी दर्शनीय है।

राधा (नायिका) का चित्रण तो बहुत कवियों ने किया है किंतु प्रेम में वशीकरण प्रभाव का चित्रण कम किया गया है, बिहारी यहाँ श्रीकृष्ण के इसी रूप–प्रभाव का चित्रण करते हुए कहते हैं कि पल–भर को भी उस पर दृष्टि पड़ते ही नेत्र खुले के खुले रह जाते हैं, पल–भर को भी नेत्र झपकते नहीं हैं –

लाल, तिहारे रूप की, कहौ रीति यह कौन

जासौं लागत पलकु दृग लागत पलक पलौ न।

संयोग शृंगार की अनेक लीलाओं – क्रीड़ाओं, विभिन्न क्रिया–कलापों का चित्रण भी कवि ने किया है। प्रेमिका की अनेक क्रियाएँ प्रिय को लुभाती हैं बिहारी का मन वहाँ रमा है जहाँ प्रिया का रूप–प्रभाव और भी मादक हो उठता है। दहेड़ी पर मटकी रखती प्रिया इसलिए उसके लिए विशेष आकर्षक हो जाती है कि उस

स्थिति में उसकी वक्ष और उन्नत होकर प्रिय को आकर्षित कर रहा है, वह चाहता है कि वह इसे 'चिर मुद्रा' बना कर खड़ी रहे –

अहे, दहैंड़ी जिनि धरै, जिनि तूँ लेहि उतारि।

नीकैं है छींकैं छुवै, एसेंई रहि, नारि।।

जहाँ तक प्रेम के भाव–प्रकाशन की बात है, प्रेमिका–प्रेमी कितना ही एक–दूसरे से अपनी बात कह लें, कितनी ही लम्बी–लम्बी पातियाँ लिख लें, किंतु फिर भी कुछ अनकहा रह जाता है किंतु संतोष यही है कि वे एक दूसरे की बात समझ रहे हैं। ऐसी ही एक पाती का वर्णन यूँ हुआ है –

कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।

कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात।।

प्रेमी पर यह अटूट विश्वास है कि वह मेरे हिय की बात अवश्य बूझ रहा होगा, केवल रूप–चित्रण पर बल देने वाली पारंपरिक आलोचना हिय की बात नहीं समझ सकी जबकि बिहारी यहाँ बल इसी हृदय की बात पर दे रहे हैं। प्रेमाभिव्यक्ति के लिए बिहारी ने कितने ही इंगित अपनी नायिका से कराये हैं, प्रेम की ये चेष्टाएँ नायक के हृदय में विविध रूपों में प्रीति उत्पन्न करती हैं, एक उदाहरण द्रष्टव्य होगा –

भौंह ऊँचै, आँचर उलटि, मौर–मोरि, मुँह मोरि।

नीठि नीठि भीतर गई, डीठि डीठि सों जोरि।।

दृष्टि से दृष्टि मिलाने की यह मनोहारी क्रिया (चेष्टा) प्रिय को लुभाने के लिए पर्याप्त है। मुरली लुकाने, अधरामृत पान–अभिलाषा, रति, विपरीत रति, चित्रण और संयोग शृंगार के एक से एक मनोहारी चित्र बिहारी ने अपने दोहों में कभी स्पष्टतः तो कभी इंगित में प्रस्तुत किए हैं जिनसे उनकी संयोग शृंगार–चित्रण की अभिरुचि का परिचय मिलता है। अनेक प्रकार की शास्त्रोक्त नायिकाओं की विविध काम–चेष्टाओं का भी चित्रण वे करते हैं, किंतु इनमें वे ही सुन्दर बन पड़े हैं जहाँ बिहारी नायक–नायिका के हृदयगत भावों में अवगाहन करते हैं।

वियोग शृंगार के चित्रण में बिहारी अधिक सफल नहीं हो सके हैं, यहाँ बल उक्ति–वैचित्र्य, अतिश्योक्ति और ऊहात्मक वर्णनों पर अधिक रहा है। एक तो इन दोहों में दरबारी संस्कृति में वाहवाही लूटने का भाव है, कदाचित् बिहारी की प्रतिस्पर्द्धा फ़ारसी शायरों से भी रहती हो जो दूर की कौड़ी लाकर दाद बटोरने के आदि थे, बिहारी के यहाँ भी स्थान–स्थान पर ऐसा देखा जा सकता है। विरह में नायिका के क्षीण हो जाने का ऐसा ही चित्रण बिहारी ने कितने ही दोहों में किया है, हाथ के मसले हुए फूल के समान दूबर गात नायिका सदैव समीप रहने वाली सखियों से भी पहचानी नहीं जा पा रही है –

करकै मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाइ।

सदा समीपिनी सखिनु हूँ नीठि पिछानी जाइ।।

इसी प्रकार इस दूबरि–गाता विरहणि को मृत्यु भी चश्मा लगा कर नहीं देख पा रही है –

करीं बिरह ऐसी, तऊ गैल न छाड़तु नीचु।

दीनैं हूँ चसमा चखनु चाहै लहै न मीचु।।

विरह की तप्त साँसों में हिंडोले–सी छः–सात हाथ इधर से उधर चले जाना और विरह में इतनी तप्त और दग्धावस्था को पहुँच जाने की बात कि जाड़े की ऋतु में भी आले (गीले) वसन ओढ़ कर नायिका के पास जाने की बात बिहारी के वियोग शृंगार के ऊहात्मक चित्रण के चर्चित उदाहरण हैं। ये सब दोहे चमत्कृत भले ही करते हों किंतु रस–दशा का उनमें नितांत अभाव है। इनसे भी उत्तम विरह का उनका यह दोहा कहा जा सकता है जिसमें स्वयं प्रेमी से चल कर नायिका की दशा चुपचाप देखने का आग्रह किया गया है –

जो वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आपु

तो बलि, नैंक बिलौकियै चलि अचकाँ, चुपचापु।।

किंतु ऐसे उदाहरण बिहारी के विरह–वर्णन में अधिक नहीं है, अधिकांशतः तो विभिन्न नायिकाओं को लक्षित कर उक्ति वैचित्र्य प्रदर्शन ही है।

बिहारी के भक्ति और नीति विषयक दोहों का भी अपना साहित्यिक महत्त्व है जिनमें भक्ति और शांत रस की धारा है। कुछ आचार्यों ने भक्ति को स्वतंत्र रस न मान कर, उसे शांत रस के अंतर्गत ही माना है किंतु परवर्ती समय में भक्ति रस की स्वतंत्र सत्ता स्वीकृत हो गयी। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप बिहारी श्रीराधाकृष्ण के भक्त हैं। यद्यपि कुछ लोगों ने 'सतसई' के मंगलाचरण रूप में रखे गये दोहे के आधार पर यह दूर की कौड़ी लाने वाली बात कही कि शृंगारी कवि होने के कारण बिहारी श्रीराधा को श्रीकृष्ण से अधिक महत्त्व दे रहे हैं क्योंकि इसमें भव–बाधा दूर करने का निवेदन पहले श्रीराधा से ही किया गया है –

मेरी भव–बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।

जा तन की झाईं परै स्यामु हरित–दुति होइ।।

किंतु ऐसा नहीं है, अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण की रूप माधुरी, गुण–कथन, आदि का चित्रण वे एक सच्चे कृष्ण–भक्त की भाँति करते हैं, यथा –

सीस–मुकुट कटि–काछनी, कर–मुरली उर माल।

इहि बानक मो मन सदा, बसौ, बिहारी लाल।।

श्रीकृष्ण के प्रति बिहारी के हृदय का यह अनुराग विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ है, कहीं वे अत्यंत कातर रूप में अनेक तारे हुए भक्तों का उदाहरण देते हुए सख्य भक्ति के अनुरूप अपने आराध्य को चुनौती देते हैं, सूरदास की ही भाँति खुंम ठोंक कर, अकड़ कर खड़े हो जाते हैं कि 'मुरारि' अब देखूँगा कि किस प्रकार मेरा उद्धार आप नहीं करते, –

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबौ, मुरारि।

बीधे मोझौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि।।

कई जगह वे उन्हें सूरदास के समान ही उपालंभ देते हुए श्रीकृष्ण से अपना नैकट्य दर्शाते हैं कि कर दिया होगा, अपने जिस–तिस का उद्धार किंतु मुझे तो आपकी प्रतिज्ञा झूठी दिखाई देती है, आप इसी में इतराते फिरते हो –

बंधु भए का दीन के, को तार्‌दो रघुराई।

तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद कहाइ।।

भाव यही है कि मैं तो आपको तभी दीनबंधु मानूँगा जब आप मेरा उद्धार कर दोगे। इसी शैली में 'जगनायक' को 'जग–बाइ' दुनिया की हवा लग जाने का उपालंभ दिया गया है।

कहीं वे प्रभु की अपार माया का ध्यान करते हुए अपने को आत्म–ग्लानि में गलाते हैं कि हे जीव तूने प्रभु को क्यों नहीं पहचाना –

जगत जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि।

ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि।।

कहीं वे जीव को लताड़ते हैं कि वह दुख में ही 'हरि–सिमरन' करता है, सुख में उसे पूरी तरह भूल जाता है –

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईं हिं न भूलि।

दई–दई क्यों करतु है, दई–दई सु कबूलि।।

मनुष्य जीवन में भौतिक सुख–समृद्धि के लिए कितनी ही भाग–दौड़, आपाधापी कर ले किंतु उसकी वास्तविक निधि तो प्रभु–भक्ति ही है, बिहारी इस सत्य को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं –

कोऊ कोरिक संग्रहों, कोऊ लाख हज़ार।

मो संपति जदुपति सदा बिपति–बिदारनहार।।

इन सब पदों में भक्ति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है, केवल कहीं–कहीं भक्ति में भी वे उक्ति–वैचित्र्य तथा अलंकार–ज्ञान–प्रदर्शन का सहारा लेते हैं, यथा –

अजौं तर्‌यौना ही रह्‌यो श्रुति सेवत इक रंग,

नाक–बास बेसरि लह्‌यौ बसि मुकुतनु कैं संग।।

किंतु उक्ति–वैचित्र्य के ऐसे दोहे बिहारी की कृष्ण–भक्ति में बहुत कम हैं, श्रीकृष्ण–राधा में अनन्य भक्ति के उनके दोहे भक्ति रस की सरिता से परिचित कराते हैं।

बिहारी के नीति विषयक दोहों में शांत रस के दर्शन होते हैं। छोटे–से दोहे छंद में आये ये नीति वचन सूक्ति रूप में लोक में काफ़ी प्रचलित रहे हैं, यथा –

कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।

मढ्‌यौ दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे के चाम।।

इसी प्रकार –

नर की अरू नल–नीर की गति एकै करि जोइ।

जेतौ नीची ह्‌वै चलै, तेतो ऊँचौ होइ।।

इन नीतिपरक दोहों में कवि ने अपने जीवन–दर्शन को प्रस्तुत किया है जो उनके जगत् और जीवन को गहरी दृष्टि से देखने के परिणामस्वरूप निसृत हुए हैं। कहीं–कहीं ये दोहे इस रूप में प्रभावित करते हैं

कि उन्हें गाँठ बाँध कर रख लेने का मन होता है, यथा –

बड़े न हुजै गुनन बिनु, बिरद बड़ाई पाय।

कहत धतूरे सौं कनक, गहनो गढ़ो न जाय।।

2.4 सारांश

इस प्रकार बिहारी–काव्य में शृंगार, भक्ति और शांत रस का मनोहारी चित्रण प्राप्त होता है।

2.5 कठिन शब्द

1.	द्रष्टव्य	2.	आविष्ट
3.	अभिव्यंजना	4.	आसक्त
5.	भंगिमा	6.	अभिरूचि
7.	अवगाहन	8.	परिपाक
9.	सूक्ति	10.	उपालंभ

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र॰1. बिहारी रीति–सिद्ध कवि होने के साथ–साथ रस सिद्ध कवि भी थे स्पष्ट करें ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र॰2. बिहारी की रस योजना पर प्रकाश डालें ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र॰3. बिहारी के भक्ति एवं नीति विषयक दोहों के साहित्यिक महत्व का विवेचन करें ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. श्याम सुन्दर दूबे
3. बिहारी व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन – रमेश चंद्र गुप्त
4. बिहारी सतसई : तुलनात्मक अध्ययन – पद्मसिंह शर्मा
5. बिहारी सतसई का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – रामकुमारी मिश्र
6. बिहारी का नया मूल्यांकन – बच्चन सिंह

_____

बिहारी की बहुज्ञता

3.0 रुपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 बिहारी की बहुज्ञता

3.4 सारांश

3.5 कठिन शब्द

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– किन दोहों के आधार पर बिहारी की बहुज्ञता प्रमाणित की जाती रही है इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

– बिहारी ज्योतिष विद्या के अच्छे ज्ञाता थे इससे परिचित हो सकेंगे।

– बिहारी अपने लोक और परम्परा के सूक्ष्म द्रष्टा थे इससे अवगत हो सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

महाकवि बिहारी की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए उनको बहुज्ञ–बहुल शास्त्रों, आदि का ज्ञाता, सिद्ध करने की परंपरा रीतिकालीन साहित्य की आलोचना में बनी हुई है। कुछ लोगों ने दूर की कौड़ी लाकर ऐसी–ऐसी विद्याओं में बिहारी की गति बतायी है जिनसे उनका दूर का भी सम्बन्ध नहीं रहा है। इस सम्बन्ध में डॉ॰ बच्चन सिंह ने बहुत सुचिंतित मत व्यक्त किया है, "परंपरा का रुढ़ अंश बिहारी में एक प्रकार से और मिलता है – निजी जानकारी और पांडित्य प्रदर्शन के रूप में। ऐतिहासिक चेतना के लिए यह आवश्यक है कि परंपरा में रक्षित ज्ञान–विज्ञान की अच्छी जानकारी प्राप्त की जाय, पर उसका उपयोग निजी जानकारी के प्रदर्शन के रूप में नहीं होना चाहिए। यह पांडित्य और जानकारी जब तक चेतनागत नैरंतर्य का अनिवार्य अंग नहीं बन जाती, तब तक कारयित्री प्रतिभा उसका काव्योचित उपयोग नहीं कर सकती।

3.3 बिहारी की बहुज्ञता

बिहारी के कुछ दोहों के आधार पर उन्हें चोटी का गणितज्ञ, वैद्य या ज्योतिषी मान लेना अर्थ का अनर्थ कर बैठना है। यह बात अब इतनी घिस–पिट गयी है कि उसका उल्लेख भी बासीपन की गंध से खाली नहीं है। निजी जानकारियाँ पांडित्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंग है, इसलिए सच्चे कवि को, लोक–हृदय की पहचान करने वाले कवि को – उससे पलायित होना होगा। इस प्रकार का पांडित्य–प्रदर्शन साहित्य के किसी भी क्षेत्र में अभिनंदनीय नहीं कहा जा सकता।" इस दृष्टि से बिहारी को समझने में बिहारी–काव्य को पारंपरिक मूल्यांकन से भी मुक्ति मिल सकेगी। किंतु फिर भी विद्यार्थियों को इस तथ्य से परिचित होना चाहिए कि किन दोहों के आधार पर बिहारी की बहुज्ञता प्रमाणित की जाती रही है। इनमें वे दोहे विशेष आकर्षक बन पड़े हैं जो पांडित्य–प्रदर्शन के लिए नहीं लिखे गए, अपितु उनमें बिहारी का सहज लोक–ज्ञान और परंपरा–ज्ञान सहज रूप में प्रकट होता है। बिहारी की बहुज्ञता का आधार उनके काव्य में प्राप्त तीन प्रकार का शास्त्रीय और लोक परंपरा का ज्ञान है –

(क) शास्त्रों का ज्ञान

(ख) इतिवृत्त का ज्ञान तथा

(ग) लोक–परंपरा का ज्ञान।

शास्त्रीय ज्ञान में बिहारी को निश्चित रूप से ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था जो कुछ उन्हें ज्योतिष विद्या से तो कुछ लोक–परंपरा से प्राप्त हुआ था। ज्योतिष सम्बन्धी उनके ज्ञान–विषयक दोहों में किंचित् दुरूहता भी आ गयी है, उनको सीधे–सीधे समझना सरल कार्य नहीं है। इसीलिए वे दोहे विद्यार्थियों के लिए भी नीरस और जटिल सिद्ध होते हैं। ज्योतिष ग्रंथ 'जातक–संग्रह' के राजयोग प्रकरण में वर्णित है कि यदि शनि ग्रह तुला, धनु या मीन में हो अथवा इनकी लग्न में पड़ा हो तो वह राजा होता है। ज्योतिष की इस परिगणना को आधार बना कर बिहारी लाल कहते हैं –

सनि–कज्जल चख–झख लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।

क्यों न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देह।।

प्रसंग इस प्रकार है कि किसी सुअवसर पर नायिका के काजल रंजित नेत्रों की दृष्टि नायक पर पड़ी तो उसके ह्रदय में प्रेम का उदय हुआ, जिससे उसका शरीर पूरी तरह प्रिया का हो गया, उसने उस पर अधिकार जमा लिया। उसकी इस दशा का वर्णन सखी नायक से कर नायिका को उससे मिलाना चाहती है। इसी बात को ज्योतिष के रंग में रंग वह इस प्रकार कहती है कि काजल सज्जित (शनि का रंग भी काला माना गया है) नेत्र रूपी मीन की लग्न में स्नेह (प्रेम) रूपी बालक का जन्म हुआ है। अतः वह स्नेह–रूपी बालक नृपति – राजा – के रूप में (अपने अबाध अधिकार का प्रयोग करते हुए) समस्त शरीर रूपी देह का शासन कर रहा है, अर्थात् उसके सर्वांग पर प्रेम का प्रभाव है। यहाँ मुख्य बल 'नृपति' होकर शरीर को संपूर्ण रूप में भोगने में है। स्पष्ट है कि ऐसे दोहों का अर्थ करने वालों के भी छक्के छूट जाने की स्थिति है।

इसी प्रकार ज्योतिष का एक और सिद्धांत है कि यदि चन्द्र के अन्तर्गत बुध जैसे सौम्य ग्रह का योग पड़ा हो और वह केन्द्र में ग्याहरवें स्थान पर अथवा त्रिकोण में पड़ा हो तो धनागम, राजमान, संतान–प्राप्ति, आदि अनेक सुख प्राप्त होते हैं। इस सिद्धांत पर आधारित बिहारी का दोहा यह है –

तिय–मुख लखि हीरा–जरी बेंदी बढ़ै विनोद।

सुत सनेह मानौ लियौ विधु पूरन बुध गोद।।

सखी नायक से नायिका की हीरा–जड़ी बिंदी की शोभा प्रशंसा कर उससे मिलने का अति उत्तम अवसर बताती है – स्त्री के मुख पर हीरा–जड़ी बेंदी देख कर, आनन्द बढ़ता है। उसकी शोभा ऐसी शुभ तथा मनोहर है कि मानो पूर्ण चन्द्रमा (मुख) ने सुत–स्नेह से बुध (बिंदी) को अपनी गोद में ले लिया है अर्थात् इस समय नायिका से मिलने में नायक को आनन्द, सुख तथा पुत्र–प्राप्ति का योग है। कहना न होगा कि ऐसे चमत्कृति उत्पन्न करने वाले दोहे दरबारी संस्कृति के परिवेश की देन हैं जिन पर उस समय खूब वाहवाही (दाद) मिलती होगी पर आज ये पाठक को भाव–विभोर नहीं करते। इनसे अच्छे तो उनके वे दोहे हैं जिनमें ज्योतिष के सामान्य लोक–ज्ञान का प्रयोग है, यथा – नायिका का मुख इतना गोरा, उजासपूर्ण है कि चारों ओर उसका प्रकाश पूनम के चन्द्रमा की भाँति ही विकीर्ण रहता है, लोग केवल ज्योतिषी के पत्रे से पता चला पाते हैं कि पूर्णिमा किस दिन है –

पत्रा हीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास।

नित प्रति पून्यौई रहै आनन–ओप–उजास।।

इस प्रकार इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि बिहारी को ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था, सामान्य व्यक्ति से अधिक ज्ञान था।

आयुर्वेद–ज्ञान के सम्बंध में उद्धृत किए जाते रहे दोहों में बिहारी का आयुर्वेद के विषय में सामान्य लोक–परंपरा प्राप्त ज्ञान ही दिखाई देता है, उनके आधार पर उन्हें आयुर्वेद का ज्ञाता या पंडित बताना बहुत तर्क संगत नहीं है। उस समय जो बुखार, आदि की सामान्य बीमारियाँ थीं, वैद्यराज नब्ज–ज्ञान द्वारा ही उनका निदान बता देते थे। बुखार में सुदर्शन–रस (एक वनस्पति विशेष) का रस या चूर्ण एक प्रसिद्ध औषधि थी। बिहारी 'सुदर्शन' को श्लेष के चमत्कार से प्रिय दर्शन से सम्बद्ध कर दोहे में चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं –

यह बिनसतु नगु राखि कै जगत बड़ौ जसु लेहु।
जरी विषम जुर जाइयै आई सुदरसनु देहु।।

विषम विरह ज्वर से पीड़ित नग (श्रेष्ठ स्त्री) की रक्षा की कामना है, इसलिए हे प्रिय, तुम शीघ्र आकर इन्हें 'सुदर्शन' – अपने श्रेष्ठ दर्शन रूपी – औषधि देकर इनकी रक्षा करो। सुदर्शन रस अथवा चूर्ण रूप में उस समय इतना ही ख्यात था जितना आज बुखार के लिए 'क्रोसिन' या 'पैरासिटामोल'। अपने इसी लोक–ज्ञान का प्रयोग कर बिहारी ने कई दोहों में सुदर्शन रस की बात कही है। मीराबाई ने भी तो वैद से नाड़ी देखने के लिए मना किया था, इसी आधार पर मीराबाई को आयुर्वेदिक का ज्ञान रखने वाली नहीं माना जा सकता –

बाबुल बैद बुलाइया, पकड़ि कै देखि मोरि बाँह।
जाओ बैद घर आपने, करक कलैजे माहिं।।

लगभग इसी रूप में बिहारी कहते हैं कि इस नायिका का रोग एक ही है, वह है प्रिय–मिलन का रोग, वही रोग है, वही निदान है। हाँ, बिहारी इसे अपने श्लेष–प्रयोग की कला से विशिष्ट अवश्य बना देते हैं 'नारी ज्ञानु' में श्लेष है – नाड़ी ज्ञान और दूसरा अर्थ है नारी शरीर और मन का ज्ञान जो उसके प्रिय को है –

मैं लखि नारी–ज्ञानु करि सख्यौ निरधारु यह।
बहई रोग–निदानु वहै, बैदु, औषधि बहै।।

श्लेष आश्रित पद का पहला अर्थ है नाड़ी–ज्ञान अर्थात् नाड़ी–परीक्षा और दूसरा अर्थ नारी–ज्ञान। यहाँ नायिका विरह से व्याकुल है, अर्थात् विरह–ज्वर से पीड़ित है, सखियाँ अनेक उपाय करती हैं किंतु कुछ लाभ नहीं होता। तब एक सखी उसके रोग का मूल समझ गयी है, उसके प्रेम–रोग का जो आदि कारण है, वही उसका निदान है, वही वैद्य है और वही उसकी औषधि है अर्थात् उसका प्रिय लाकर इस विरह–ज्वरग्रस्ता से मिला दिया जाय– यही रोग

का एकमात्र निदान है। इस दोहे में कोई गंभीर आयुर्वेदिक ज्ञान प्रदर्शित नहीं होता, यह तो सामान्य ज्ञान कि प्रिया के लिए प्रिय ही उसके समस्त रोगों का निदान है। इसी प्रकार यह भी एक लोकप्रसिद्ध ज्ञान है कि पारा नंपुसकता दूरकरने की एक प्रसिद्ध औषधि है। जब यही औषधि स्वयं एक नंपुसक वैद्य द्वारा बहुत अधिक धन लेकर तथा बड़े अहसानसे किसी को दी जा रही है तो वैद्य की पत्नी भेद–भरी मुस्कान से अपने पति को देखती है (कि अपना तो इलाज कर नहीं सकते, दूसरे को रति–सुख बढ़ाने के लिए पारा दे रहे हैं) –

बहु धनु लै, अहसानु कै, पारौ देत सराहि।

वैद–बधू, हँसि भेद सौं, रही नाह–मुँह चाहि।।

कहना न होगा कि इस पद में भी बिहारी का कोई गंभीर आयुर्वेदिक ज्ञान दिखाई नहीं देता, यह तो सामान्य लोक–ख्यात बात है। इसी प्रकार गर्मियों में बहुत अधिक प्यास, ऐसी प्यास जो कितना भी पानी पी लो बुझ नहीं पाती है, लगना बड़ी सामान्य–सी बात है, बिहारी उसे अपनी श्लेष कला से इस रूप में अभिव्यक्त करते हैं –

नेहु न, नैनहु, कौं कहू उपजी बड़ी बलाइ।

नीर–भरे नित प्रति रहैं, तउ न प्यास बुझाइ।।

'नीर भरे' का विषम रूप तो भी 'प्यास न बुझाइ' के रूप में दर्शाया गया है। इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बिहारी का आयुर्वेदीय ज्ञान लोक–परंपरा से प्राप्त ज्ञान है, मात्र ऐसे दोहों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना तर्क संगत नहीं होगा कि बिहारी आयुर्वेद के पंडित थे।

कुछ दोहों में बिहारी के दर्शन सम्बन्धी ज्ञान की छाया ज़बरदस्ती देखने की चेष्टा की गयी है। ऐसे दोहों में भी यही कहा जा सकता है कि यह बिहारी का सामान्य लोक–सुलभ ज्ञान है। ईश्वर की सर्वव्यापक सत्ता को कौन नहीं जानता है, बिहारी भी इसी रूप में नंद किशोर की सर्वव्यापकता देखते हैं –

मैं समुझयो निरधार, यह जग काँचौ काँच सौ।

एक रूपु अपार प्रतिबिम्बित लखियत तहाँ।।

अथवा यह दोहा उद्धृत किया जाता है –

अपने अपने मत लगे बादि मचावत सोरु।

ज्यों त्यों सबकौ सेइबो एकै नंदकिशोर।।

विभिन्न मतवादी दुराग्रही लोगों को सुनाते हुए बिहारी अपना जीवनगत अनुभव बताना चाहते हैं कि जो ब्रह्म को विभिन्न रूपों में व्याख्यायित करते हैं, वे व्यर्थ का शोर मचाते रहते हैं, मेरा दृढ़ मत यही है कि सबका ध्यान करने

के बजाय एक नंदकिशोर श्रीकृष्ण का ध्यान ही श्रेयस्कर है। इसी प्रकार ब्रह्म की महिमा वे सहज भाव से प्रकट करते हैं, उसमें किसी प्रकार का कोई दार्शनिकवाद उनके यहाँ नहीं है –

जगतु जनायो जिहि सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं।

ज्यों आँखिन सबु देखिए, आँखि न देखी जाँहि।।

यहाँ कवि अपनी कवि प्रतिभा से आँखों का उदाहरण प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार आँखें सब कुछ देखती हैं और कोई उन्हें ही नहीं देख पाता है, यही गति ब्रह्म, हरि की है, वे ही जगत के कर्ता, स्रष्टा हैं, वे ही मनुष्य को अपनी लीलाएँ देखने की सामर्थ्य देते हैं। इसी प्रकार नायिका की सूक्ष्म कटि की प्रशंसा में उसे ब्रह्म की तरह अलक्ष्य माना गया है –

बुधि अनुमान, प्रभान श्रुति किऐं नीठि ठहराइ।

सूक्ष्म कटि परब्रह्म की अलख, लखी न जाइ।।

नायिका की कटि की सूक्ष्मता का ध्यान करते हुए ब्रह्म की सूक्ष्मता का ध्यान आना श्रृंगारी कवि की सहज मनोवृत्ति की उपज है, इसमें किसी प्रकार की दार्शनिकता खोजना निरर्थक ही होगा। इसी प्रकार कर्णचुम्बी नेत्रों का वर्णन करते हुए प्रिय से अद्वैतता, मिलन, की कामना की गयी है –

जोग जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।

चाहत पिय अद्वैतता काननु सेवत नैन।।

इसमें अद्वैतवाद और योग (जोग) का प्रभाव खोजा गया है किंतु यह वास्तविकता से दूर की बात है। असल बात यही है कि कवि अपनी श्लेष–प्रयोग की कला से अर्थ में चमत्कृति उत्पन्न करता है – योग की सारी युक्तियाँ अर्थात् मिलन की सारी युक्तियाँ, प्रिय–मिलन के व्यवहार सम्बन्धी कलाएँ और प्रिय अद्वैतता की कामना (चाहत प्रिय अद्वैतता) – से सब श्रृंगारी कवि की प्रिय वर्णन–युक्तियाँ हैं। इसी प्रकार उनके दोहों में ब्रह्म की सर्व–व्यापकता तथा तलाशने की चेष्टा की गयी है। वस्तुतः इन सभी दोहों में बिहारी अपने लोकानुभव से अपने आराध्य हरि, श्रीकृष्ण की महिमा विभिन्न रूपों में देखते हैं, उनका मुख्य उद्देश्य तो नायक या नायिका के भावों का चित्रण ही है, किसी दार्शनिक मतवाद की प्रस्थापना नहीं।

बिहारी दरबारी कवि थे, अतः उन्हें राजधर्म की अनेक बातों का ज्ञान था किंतु इसी आधार पर उन्हें राजधर्म का ज्ञाता नहीं माना जा सकता, वह तो कवि का राज–संस्कृति का सूक्ष्म निरीक्षण है। निम्न दोहे को लोगों ने राजधर्म विषयक उनके ज्ञान के रूप में उद्धृत किया है –

अपने अंग के जानि कै जोबन–नृपति प्रवीन।

स्तन, मन, नैन, नितम्ब कौ बड़ौ इजाफ़ा कीन।।

राजा अपने अंग के (सभासदों) को अपनी उन्नति में सहायक जान (अपने पक्ष के) उनके वेतन आदि में इज़ाफ़ा (वृद्धि) कर देता है, यहाँ यौवन रूपी नृपति ने अपने अंग के (सहायक रूप में) जान उनकी वृद्धि कर दी है। यौवनागम पर नायिका के शरीर में विकास (वृद्धि) देख कवि स्तन, मन, नैन और नितंब को बढ़ा पाता है। इसी स्थिति को शृंगारी कवि के रूप में उन्होंने अपने परिवेश से उपमान – 'जोबन' को 'नृपति' रूप में – चयन कर किया है। यह उनका अपने परिवेश से सहज परिचय है, किसी प्रकार का शास्त्रीय ज्ञान यहाँ प्रदर्शित नहीं किया गया है। बिहारी ने निकट से युद्धों को भी देखा होगा। सभी जानते हैं कि युद्ध–प्रयाण में एक हरावल दस्ता – मुख्य सेना के आगे–आगे चलने वाली सैनिक टुकड़ी के रूप में – होता है। अपने एक दोहे में कवि ने झीने चीर के घूँघट को सेना के हरावल दस्ते के रूप में देखा है जिसका अतिक्रमण कर मुख्य सेना – दोनों के नेत्र–आपस में मिल जाते हैं और वे परस्पर विभिन्न प्रकार के कटाक्ष करते हैं। प्रीति उत्पन्न होने की इस रीत को बिहारी इस नए रूप में प्रस्तुत करते हैं। खोजी विद्वानों ने इसे बिहारी के सैन्य–ज्ञान के रूप में देखा है –

जुरे दुहुन के दृग झमकि, रुके न झीनैं चीर।

हलुकी फौज हरौल ज्यौं परै गोल पर भीर।।

इसी प्रकार बिहारी के ऐतिह्य ज्ञान, इतिहास–पुराण सम्बन्धी ज्ञान की पुष्टि में अनेक दोहे उद्धृत किये जाते हैं किंतु रामायण–महाभारत की कथाओं–प्रसंगों का ज्ञान अनपढ़ समाज को भी परंपरा से प्राप्त रहा है। द्रौपदी के चीर–हरण, दुर्योधन की कुटिलता, सीता की अग्नि–परीक्षा, कामदेव दहन, बलि प्रसंग, वामनावतार, गज–ग्राह–मुक्ति प्रसंग, आदि कथाओं का लोक–परंपरा में व्यापक प्रसार है। यदि किसी दोहे में इन प्रसंगों को इंगित किया गया है तो इसका अर्थ यह नहीं कि कवि ने समस्त महाकाव्यों तथा पौराणिक साहित्य का अध्ययन किया होगा। इस सम्बन्ध में दो–एक उदाहरण द्रष्टव्य होंगे। राम–कथा में हनुमान् के सागर पार करते समय एक छाया–गृहिणी राक्षसी का उल्लेख मिलता है, इसे भव–सागर से पार उतरने की बाधा के रूप में नारी के रूप में कल्पित किया गया है –

या भव–पारावार को उलँघि पार को जाइ।

तिय–छवि–छायाग्रहिणी गहै बीचहिं आइ।।

इसी प्रकार शिवजी द्वारा कामदेव को भस्म कर देने की कथा अत्यंत प्रसिद्ध है, बिहारी इस प्रसंग को श्रीकृष्ण के रूप–वर्णन में इस प्रकार अपनाते हैं –

मोर–मुकुट की चन्द्रिकन यौं राजत नंद नंद।

मनु ससिसेखर की अकस किय शेखर सत चंद।।

मोर मुकुट की चन्द्रिकाओं से श्रीकृष्ण ऐसे विराजमान हैं मानो महादेव जी (शशि शेखर) कामदेव से वैर (अकस) सूचित करते हुए मस्तक पर सौ चन्द्रमाओं से सुशोभित हैं। यहाँ कवि का उक्ति वैचित्र्य कौशल ही प्रकट हुआ है।

इसी प्रकार कभी उनके दोहों में चित्रकला के रंग–ज्ञान का परिचय ढूँढ लिया गया है – नीले, लाल, पीले, रंगों की कल्पना कर ली गयी है। मुरली बजाते श्रीकृष्ण का यह चित्र देखिए –

अधर धरत हरि कैं, परत ओठ, डीठि–पठ–जोति।

हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष रंग होति।।

अधरों का लाल रंग, श्रीकृष्ण का नील वर्ण, दृष्टि का काला रंग, पीतांबर का पीला रंग, बाँसुरी का हरा रंग सब मिल कर इन्द्रधनुष की छटा दे रहे हैं। इसी प्रकार मंगलाचरण के दोहे में श्रीकृष्ण की आभा हरी (प्रसन्न) हो जाती हैं। यहाँ भी बिहारी का रँग–ज्ञान, सामान्य व्यक्ति का है जिसे उक्ति–वैचित्र्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार कवि को खेलों–चकरी, पंतगबाज़ी, आदि से परिचित दिखा कर उनकी बहुज्ञता को प्रमाणित किया गया है।

3.4 सारांश

बिहारी बहुज्ञ थे – एक सशक्त कवि–कल्पना के स्वामी के रूप में, उनका उपमान चयन, बिम्ब योजना, आदि सब अपने परिवेश की लौकिक ज्ञान–परंपरा पर आधारित हैं। उन्हें बहुज्ञ न कह कर अपने लोक और परम्परा का सूक्ष्म द्रष्टा कवि कहना अधिक उपयुक्त होगा। उनका विविध क्षेत्रीय ज्ञान पांडित्य प्रदर्शन के रूप में नहीं, उनकी काव्य–कला का अंग बन कर आया है ।

3.5 कठिन शब्द

1. इतिवृत
2. दुरूहता
3. रंजित
4. दुराग्रही
5. मनोवृत्ति
6. अतिक्रमण
7. उक्ति–वैचित्र्य

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बिहारी की बहुज्ञता पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

2. बिहारी की काव्य कला को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

_____

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. श्याम सुन्दर दूबे
3. बिहारी व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन – रमेश चंद्र गुप्त
4. बिहारी सतसई : तुलनात्मक अध्ययन – पद्मसिंह शर्मा
5. बिहारी सतसई का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – रामकुमारी मिश्र
6. बिहारी का नया मूल्यांकन – बच्चन सिंह

_____

बिहारी की काव्य–कला

4.0 रुपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 बिहारी की काव्य कला

4.3.1 बिहारी काव्य का भाव पक्ष

4.3.2 बिहारी काव्य का कला पक्ष

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्द

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

– बिहारी ने किस तरह काव्य को धर्म के प्रभाव से मुक्त करके जीवन की ओर मोड़ा इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

– बिहारी काव्य के भाव–पक्ष से अवगत हो सकेंगे।

– बिहारी काव्य के कला–पक्ष को जान सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

बिहारी रीतिकाल के तो प्रसिद्ध कवि हैं ही, पूरे हिंदी काव्य–इतिहास में भी उनका अप्रतिम महत्त्व है। उनसे पूर्व भक्ति की जो धारा काव्य में लगभग छह सौ वर्ष पूर्व से चली आ रही थी, उन्होंने उसका प्रवाह मोड़ कर सीधे उसे जगत और जीवन से जोड़ा। भक्ति–काव्य जीवन की क्षणभंगुरता की बात करता है तो बिहारी का काव्य इस अनुपम जीवन को पूर्ण रूप से जीने में विश्वास करता है। विश्भंर मानव उनके इस अवदान को इस रूप में देखते हैं, "....उन्होंने अपने से पूर्व के छः सौ वर्षों के काव्य को धर्म के प्रभाव से मुक्त करके जीवन की ओर मोड़ा। यही काम आज के युग में यदि किसी ने किया होता तो वह 'काव्य में विद्रोह' कहलाता। लौकिक जीवन के एक बड़े पक्ष के सौंदर्य, क्रीड़ा और आनन्द का जैसा सजीव वर्णन बिहारी में पाया जाता है, वैसा आज तक के किसी काव्य में नहीं। यह जीवन कहीं–कहीं गंदला है, पर धरती का जीवन ऐसा ही है, क्या किया जाए। इतना तो निश्चित ही है कि उनके काव्य का एक ऐतिहासिक महत्त्व है।" उपर्युक्त कथन में भक्ति–काल के महत्त्वपूर्ण अवदान को कमतर करके नहीं देखा जा रहा है अपितु बल इस बात पर है कि जीवन का लौकिक पक्ष जो पहले अनचीन्हा रह गया था, बिहारी और उनके युग के अन्य कवियों ने उसे पूर्ण मन से रेखांकित किया। बिहारी के युग की परिस्थितियाँ भी ऐसी थी कि जीवन के उस पक्ष को भरपूर रूप में उजागर किया गया। एक और बात के लिए बिहारी को सराहा जा सकता है, वह है कि उन्होंने बहुत थोड़ा लिख कर बहुत ख्याति पायी। मात्र लगभग सात सौ उन्नीस (जगन्नाथदास रत्नाकर विरचित 'बिहारी रत्नाकर' के अनुसार केवल 713) दोहों की सतसई की रचना कर उन्होंने अपार लोकप्रियता और सम्मान प्राप्त किया। वस्तुतः बिहारी का काव्य आज भी रसिकों का हृदयहार बना हुआ है जिसका श्रेय उनकी अतुलनीय काव्य–कला को दिया जा सकता है।

4.3 बिहारी की काव्य–कला

बिहारी की काव्य–कला पर विचार दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है – बिहारी काव्य का भाव–पक्ष तथा बिहारी काव्य का कला–पक्ष।

4.3.1 बिहारी काव्य का भाव–पक्ष

बिहारी रसराज शृंगार के अतुलनीय कवि हैं। उन्होंने शृंगार का चित्रण शास्त्रीय पंरपरा के अनुसार भी किया किंतु उनमें शृंगार–मुक्तक परंपरा अधिक दिखाई देती है। व्यंग्य, लाक्षणिक वक्रता, अलंकार, नायिका भेद, नख–शिख वर्णन, षट्ऋतु वर्णन की समस्त शास्त्रीय परंपराओं का वे अनुपालन तो करते हैं किंतु लक्षण–ग्रंथ लिखने के झंझट में वे नहीं फँसे। उन्होंने लक्षण ग्रंथ के रूप में सतसई की रचना नहीं की किंतु उसका प्रचार लक्षण ग्रंथों से अधिक हुआ। बिहारी सतसई की जितनी टीकाएँ हुई हैं, वे उसकी लोकप्रियता का अकाट्य प्रमाण है, इन टीकाकारों ने उन्हें शृंगार रस का अधिष्ठाता ही बना दिया। शृंगार रस बिहारी सतसई का मुख्य प्रतिपाद्य है किंतु साथ ही उसमें भक्ति और शांत रस का भी चित्रण मिलता

है। लोगों ने ज़बरदस्ती उसमें हास्य, वीर रस, आदि के उदाहरण खोजे हैं, किंतु वह दूर की कौड़ी लाने जैसी बात ही है।

शृंगार रस के दो पक्ष हैं – संयोग और वियोग। यद्यपि बिहारी ने वियोग के भी कुछ दोहे रचे हैं किंतु अधिकांश में उनकी कृति संयोग चित्रण में ही रमी है जो तत्कालीन परिस्थितियों तथा विशेषतः दरबारी संस्कृति के कारण सहज ही है। संयोग–दशाओं का चित्रण वे शास्त्रीय लक्षणों तक ही करके नहीं रुक जाते, अपने जीवनानुभव से नये–नये प्रसंगों, प्रकरणों, चेष्टाओं – हाव–अनुभावों की वे नवीन कल्पनाएँ करते हैं। संयोग शृंगार में सर्वाधिक महत्त्व प्रिय के रूप–चित्रण का ही है, बिहारी नायिका और नायक दोनों के रूप के एक–से–एक मनोहारी चित्र प्रस्तुत करते हैं जिनमें आधिक्य नायिका, प्रिया, के रूप–चित्रण का ही है। रूप की बहुत बड़ी विशेषता उसका प्रत्येक क्षण नवीन होते चले जाना है, इतने विचित्र रूप में कि बड़े–बड़े चित्रकार भी उसकी छवि (शबीह) को अपनी तूलिका से पकड़ नहीं पाते हैं, यही कठिनाई कवि की है कि वह उसके अपरूप का चित्रण कैसे करे। इसी रूप में अंकुरित यौवना नायिका की सखि नायक से उसका रूप वर्णन करने में अपनी असमर्थता दिखाती है –

लिखनि बैठि जाकी सबी गहि गहि गरव गरूर।

भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।

सखि नायिका की प्रतिक्षण बढ़ती शोभा का वर्णन करने में अपनी असमर्थता बताते हुए कह रही है कि मैं अपनी क्षण–क्षण बढ़ती शोभा का वर्णन कैसे कर सकती हूँ जिसका चित्र–सबी–शबीह– बनाने के लिए बड़े–बड़े गर्वीले (प्रसिद्ध) चित्रकार भी अपने को सक्षम नहीं पाते हैं। रूप–चित्रण में बिहारी के वे दोहे विशेष आकर्षक बन पड़े हैं, जहाँ रूप–माधुरी के समग्र प्रभाव का चित्रण किया गया है। महाकवि कालिदास को सुन्दर देहयष्टि के लिए दीपशिखा उपमान का प्रयोग करना अत्यंत प्रिय है। दीपशिखा का अपना सौंदर्य है – ऊपर से पतली, बीच में थोड़ी चौड़ी, नीचे फिर पतली – नारी–शरीर का भी यही सुन्दर अनुपात है। बिहारी इस सौंदर्य में इतना और जोड़ते हैं कि वह पूरे घर को प्रकाशित कर देने वाला सौंदर्य है, अतएव दीपक के बढ़ने पर भी पूरे घर में इस अपरूप का उजास रहता है –

अंग–अंग नग जगमगै, दीप सिखा–सी देह।

दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह।।

सौंदर्य की बहुत बड़ी परिभाषा यह है कि वह आँखों को प्रिय लगे, उसे देख कर नयन तृप्त हों, बिहारी की नायिका का रूप भी ऐसा ही है कि उसे देख कर आँखों में भी एक उजास, खुशी की रोशनी, भर जाती है –

कहा कुसुम, कँह कौमुदी, कितिक आरसी जोति।

जाकी उजराई लखै, आँखि उजरि होत।।

नायिका के रूप में सर्वाधिक आकर्षक नेत्र ही होते हैं। नेत्रों की आकारगत सुंदरता, चांचल्य, प्रीति रीति को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता, उनका मारक प्रभाव, आदि का चित्रण कवि ने विविध रूपों में किया है।

पहले इन नेत्रों की शोभा से परिचित हुआ जाए, देव नदी गंगा – सुर सरिता – में उछलते हुए 'जुग मीन' बिहारी का प्रिय उपमान है जिसका प्रयोग वे कई दोहों में अलग–अलग प्रसंग कल्पित कर करते हैं, यह उदाहरण द्रष्टव्य है –

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीन।

मानहुँ सुर–सरिता विमल, जल उछरत जुग मीन।।

इन आँखों के चांचल्य पर भी कवि की दृष्टि बार–बार जाती है। चंचल नेत्रों की विविध भंगिमाओं से वे 'भरे भौन' में बतियाते हैं –

कहत नटत रीझत, खिजत, मिलत, खिलत लजियात।

भरे भौन में करत हैं नैननु हीं सब बात।।

कमलों, खंजनों, हरिणों, आदि को तो इन नेत्रों ने लज्जित किया ही है, ये नागर जनों का 'सिकार' भी करते हैं, काम–बाण भी चलाते है, वस्तुतः वे ऐसे अद्‌भुत नयन हैं जो कभी देखे ही नहीं गये –

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।

हरिनी के नैननु तैं, हरि, नीके ए नैन।।

बिहारी इन नेत्रों को माध्यम बना कर प्रेम की कितनी ही मनोदशाओं का चित्रण करते हैं। बहुत बड़ी–बड़ी बातें, विस्तृत बातें करने वाले ('स्पीक्स वाल्यूम' की स्थिति) ये नेत्र अपनी भंगिमाओं से प्रेम–क्रीड़ाओं का परिचय देते हैं –

बतरस–लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।

सौंह करैं, भौंहनि हँसै, दैन कहै नटि जाइ।।

बिहारी प्रेम–क्रीड़ाओं का ऐसा चित्रण करते हैं जो सामान्य व्यक्ति के जीवन में भी जब–तब घटती रहती है। प्रिय मिलन की चाह में नायिका जो विभिन्न इंगित करती है, उसका मनोहर चित्रण यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि बिहारी किस प्रकार प्रेम की विभिन्न स्थितियों की कल्पना करने में सक्षम हैं –

त्रिबली, नाभि दिखाइ, कर सिर ढकि, सकुचि समाहि।

गली, अली की ओट कै, चली भली विधि चाहि।।

नायक का सामना होने पर नायिका ने अपने मनोभाव को इस प्रकार प्रकट किया – संकोच के कारण घूँघट करने के मिस (बहाने) से, हाथ उठा कर अपनी मनोहर त्रिबली तथा नाभि दिखा कर, सखी की आँख बचाते हुए, मेरी ओर आँख भर कर (पूरे प्रेम से) देख कर गली में चली गयी। प्रिय को या किसी को भी आकर्षित करने के लिए नाभि–दर्शाना साड़ियों, टॉप्स–जीन्स का जमाना तो बाद में आया, बिहारी लाल मध्यकाल में भी उसकी कल्पना कर सहृदय पाठकों का मन मोहते हैं। इसी प्रकार प्रेमी को झरोखे से छिप–छिप कर देखने की क्रिया बहुत स्वाभाविक है, यद्यपि लोगों ने इसे परकीया प्रेम के रूप में देखा है, किंतु ध्यान देने की बात है कि बिहारी इस मनोदशा का कितना सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत करते हैं। नायिका संकोच में विवश है, इसीलिए वह स्थिर नहीं है, एक जगह टिक नहीं पा रही है। बारम्बार झरोखे में उचकती है, फिर छिप जाती है, आ जाती है – इस प्रकार वह अपनी प्रीति प्रकट करती है –

समरस–समर सकोच बस, बिबस न ठिक ठहराइ।

फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति, दुरि दुरि उझकति आइ।।

प्रेम की ऐसी कितनी ही मनोदशाओं, क्रिया–व्यापारों, आदि का मनोहारी चित्रण बिहारी संयोग शृंगार में करते हैं, जिसके कारण बिहारी–सतसई रसिकों का हृदयहार है।

वियोग शृंगार का चित्रण करने में बिहारी को वैसी सफलता नहीं मिली है जितनी संयोग पक्ष का चित्रण करने में। जब वे विरहिणी नायिका का वर्णन करते हैं, उनकी दृष्टि उसकी विरह–व्याकुल दशा पर और उसके शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव पर ही जाकर रुक जाती है। विरहणी नायिका का चित्रण करते हुए तो वे पूर्णरूपेण दरबारी कवि की संस्कृति में ढल जाते हैं। फ़ारसी कवियों से टक्कर लेने के लिए उन्हीं की शैली पर नायिका का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र या उससे भी आगे बढ़ कर ऊहात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं, जिससे उन्हें श्रोताओं की वाह–वाही, ज़्यादा से ज़्यादा दाद, मिल सके। उनकी विरहणी "नायिका कभी प्राण बचाने के हेतु चन्द्रमा और समीर के सामने दौड़ती फिरती है (जिससे विरहाग्नि में झुलसती को कुछ राहत मिले), कभी जुगनुओं को अँगारे समझ कर भीतर छिप जाने की सलाह देती है। साँस लेती है तो (इतनी दुबली है कि) कभी छः–सात हाथ इधर; कभी छः–सात हाथ उधर खिसक जाती है। रोती है तो आँसू छाती पर पड़ते ही भाप बन कर उड़ जाते

हैं। कोई उस पर गुलाब जल छिड़क देता है तो वह बीच में ही सूख जाता है (गोया नायिका नहीं विरह में जलती भट्टी हो गयी हो)। दुर्बल इतनी हो गयी है कि मृत्यु चश्मा लगा कर भी उसे देखना चाहे तो देख नहीं पाती। पड़ोसी उससे परेशान हैं। जाड़ों की रातों में गीले कपड़े आगे कर उसके पास पहुँच पाते हैं और ग्रीष्म में तो उसके पड़ोस में रहना ही असंभव हो गया है।" ये सभी वर्णन उनके काव्य में चमत्कृति तो पैदा करते हैं, उनमें उक्ति वैचित्र्य–कौशल है किंतु वे हृदय पर सीधे–सीधे प्रभाव डाल कर सहृदय को नायिका के भावों का सहभोक्ता नहीं बना पाते हैं। उन्हें पढ़ कर नायिका के प्रति किसी प्रकार की संवेदना नहीं उपजती। दो–एक ऐसे उदाहरण द्रष्टव्य होंगे –

इत आवति, चलि जात उत, चली छसातक, हाथ।

चढ़ी हिडोरैं सीं रहैं लगी उसासनु साथ।।

X X X X X

करी बिरह ऐसी; तऊ गैल न छाड़त नीचु।

दीने हू चसमा चखनि चाहै लहै न मीचु।।

X X X X X

आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की राति।

साहस ककै सनेह बस सखी सबे ढिग जाति।।

ऐसा भी नहीं है कि विरहिणी नायिका के कुछ स्वाभाविक सरस चित्र बिहारी के यहाँ हैं ही नहीं किंतु ऊहात्मक चित्रों की प्रसिद्धि, अतिशय चर्चा, के कारण उन दोहों की ओर कम ध्यान दिया गया है, हैं भी वे अल्प मात्रा में। ऐसे रसपूर्ण दोहों से परिचय पाना भी अपेक्षित है। प्रिय से सम्बन्धित वस्तुओं को देखकर उसकी स्मृति आना स्वाभाविक है। गोपियाँ भी जब श्रीकृष्ण के साथ बिताये मधुर क्षणों की स्मृति उन स्थलों को देख कर करती हैं तो उनकी स्थिति यह है कि –

जहाँ जहाँ ढाढ़ौ लख्यौ स्याम सुभग–सिरमौरु।

बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु दृगन अजौं वह ठौरु।।

जिन–जिन स्थानों पर श्रीश्याम को खड़े देखा था, उन स्थानों में उनके ससंर्ग से ऐसी रमणीयता आ गयी कि अब श्रीकृष्ण के न रहने पर भी वे स्थान पुनः आँखों को प्रिय लगते हैं क्योंकि उन्हें देख कर पुनः

श्रीकृष्ण के ध्यान में डूब कर मन उन्हीं में रमा रहता है। यह प्रिय–स्मृति का अत्यंत स्वाभाविक मनोभाव है। इसी प्रकार विरहिणी नायिका को नींद न आ पाना, एक स्वाभाविक क्रिया–व्यापार है जिसका प्रिय चला गया हो, उसकी आँखों में नींद कहाँ। बिहारी इस मनःस्थिति को इस प्रकार प्रकट करते हैं –

जब तब बै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि।

आँखिनु आँखि लगी रहैं, आँखैं लागति नाँहि।।

जब–जब उनकी स्मृति आती है, तब समस्त चेतना शून्य हो जाती है। उनकी आँखों की स्मृति में ही आँखें लगी रहती हैं किंतु आँखें नहीं लगती हैं, नींद नहीं आ पाती है। यहाँ यमक की अलंकृति का स्वाभाविक प्रयोग कर कवि ने नायिका की दशा का स्वाभाविक अंकन किया है। फिर भी, यह मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि बिहारी शृंगार के वियोग पक्ष का उतना सजीव चित्रण नहीं कर सके हैं जितना सफल वे संयोग–पक्ष के चित्रण में हुए हैं।

बिहारी ने भक्ति और नीति विषयक दोहे भी रचे हैं। दोनों क्षेत्रों में ही उन्हें अपेक्षित सफलता इसी प्रकार मिली है जिस प्रकार संयोग शृंगार के चित्रण में। वस्तुतः प्रेम और भक्ति का मूल भाव चित्त का राग है, जब अनुरक्ति सखी के प्रति होती है तो वह शृंगार का रूप लेती है और जब वह अलौकिक के प्रति होती है तो भक्ति का रूप ले लेती है, इसीलिए देखा गया है कि विद्यापति, सूरदास, आदि प्रेम–चित्रण करने वाले कवियों की भक्ति–भावना भी उतनी ही उत्कट है। बिहारी भी इसी परंपरा के कवि हैं। दोहे जैसे छोटे छंद में अपने भक्ति–भाव को विस्तार से वर्णित करने की सुविधा तो उन्हें नहीं थी किंतु दोहे की छोटी सीमा में भी उनके भक्त हृदय के दैन्य, आराध्य के प्रति सख्य, मैत्री भाव, दिये गये उपालंभ, आदि की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है, जिनसे उनके भक्ति–भाव का परिचय मिलता है। अपने आराध्य श्रीकृष्ण का ध्यान वे सदैव इसी रूप में करना चाहते हैं –

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।

यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल।।

उनका दृढ़ विश्वास है कि इस भवसागर से पार लाने का एकमात्र उपाय हरि–स्मरण, हरि–नाम, ही है। इस भावना को वे एकाधिक बार व्यक्त करते हैं, यथा –

पतवारी माला पकरि और न कछु उपाउ।

तीर संसार पयोधि कौं, हरि–नावै करि नाउ।।

विनय और दैन्य भक्ति के अनिवार्य तत्त्व हैं। दोनों ही बिहारी में भरपूर मात्रा में हैं, यथा –

हरि कीजति तुमसों यहै, बिनती बार हजार।

जेहि तेहि भाँति डर्‌यो रह्‌यौ पर्‌यौ रहौ दरबार।।

कभी वे अंतरंग सखा की तरह प्रभु को उपालंभ भी देते हैं कि वे उनकी सहायता क्यों नहीं कर रहे हैं, यह उनकी सख्य भक्ति का बहुत सुंदर उदाहरण है –

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्यार सहाइ।

तुम्हु लगी जगत–गुरु, जग–नाइक, जग बाइ।।

प्रभु को ऐसा उपालंभ कोई मुँह लगा भक्त ही दे सकता है। उनकी श्रीकृष्ण–चरणों में असीम आस्था है, इसीलिए वे 'एकै नंद–किशोर' को 'सेईबो' की बात करते हैं। अपने 'गुन–औगुन' न गिनने की बात 'गोपीनाथ' से कहते हें। वे भक्ति के विधि–विधान, ताम–झाम के भी विश्वासी नहीं हैं, वे केवल सच्चे मन से 'रामु' का स्मरण करने के विश्वासी हैं – 'साँचे' राँचै रामु'। बिहारी का मन भक्ति में खूब रमा है किंतु वे जिस युग में पैदा हुए थे, उसका मुख्य सरोकार श्रृंगार से था।

बिहारी ने नीति सम्बन्धी जो दोहे लिखे हैं, वे उनके जीवनानुभव से निसृत हैं। उनमें जगत, दुनिया को गहरी दृष्टि से देख कर जीवन–भर का पगा अनुभव है, इसीलिए वे इतने मार्मिक बन पड़े हैं कि लोक में सूक्ति रूप में प्रचलित हैं, पग–पग पर उन्हें उद्‌धृत कर सीख दी जाती है। इन सूक्तियों में अलंकार–प्रदर्शन और उक्ति–वैचित्र्य बिलकुल नहीं है, वे सीधे–सीधे अपनी बात कहते हैं, यथा –

बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद बड़ाई पाइ।

कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ्‌यो न जाइ।।

इसी प्रकार निम्न दोहे का दूसरा चरण तो इतना लोकप्रिय है कि प्रायः ही सुना दिया जाता है –

मीत, न नीति गलीतु ह्‌वै, जो धरियै धनु जोरि।

खाए खरचैं जो जुरै, तो जोरिए करोरि।।

कहीं इन नीतिपरक दोहों में भक्ति का ऐसा समावेश देखा जा सकता है कि यह कहना कठिन हो जाए कि वहाँ बल भक्ति पर है या नीति पर –

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईं नहि भूल।

दई–दई क्यों करत है, दई दई सो कबूल।।

यहाँ यमक का प्रयोग कर भी उक्ति–वैचित्र्य प्रकट नहीं किया गया है, इसीलिए इस दोहे के दूसरे चरण का प्रयोग लोक में बारम्बार होता है।

बिहारी ने अपनी सतसई में प्रकृति का भी सरस चित्रण किया है, यद्यपि वह उद्दीपन रूप में ही है। वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर, आदि का वर्णन उनके साहित्य में मिलता है। वसंत ऋतु में प्रकृति चारों ओर शृंगारता होती है, बिहारी उसका चित्र यूँ खींचते हैं, एक में बसंत के मादक समीर का वर्णन है, दूसरे में आम्र–बौर की सुगन्ध और मकरंद–पान से मस्त भ्रमरों का चित्रण कर बसंत के मादक प्रभाव को अंकित किया गया है –

रनित भृंग–घंटावली, झरति दान मधु नीरु।

मंद मंद आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज समीरू।।

छकि रसाल–सौरभ, सने मधुर माधुरी–गंध।

ठोर–ठोर झौरँत झँपत भौर–भौर मधु अंध।।

इसी प्रकार अन्य ऋतुओं में प्रकृति की शोभा उस ऋतु के वातावरण के अनुरूप चित्रित की गयी है।

4.3.2 बिहारी काव्य का कलापक्ष

यद्यपि किसी कवि की कला भाव–पक्ष और कला–पक्ष के सम्मिलित रूप से ही प्रभावी बनती है, तो भी यहाँ कला से तात्पर्य उसके अभिव्यक्ति पक्ष से है जिसमें भाषा, अलंकार और छंद विधान पर विचार किया जा सकता है। बिहारी ब्रज भाषा के निष्णात कवि हैं, उन्होंने परंपरा से चली आती भाषा को उसका टकसालीपन, शुद्धता, प्रदान की। उनका यह कार्य सूरदास सरीखे महाकवि से आगे का कार्य है। यहाँ विषय–विवेचन को भाषिक उदाहरणों से, विभक्तियों, शब्दों के रूप–विधान को उदाहरणों से, बोझिल न बनाते हुए उनके भाषिक वैभव को मात्र कुछ दोहों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। कहीं उसमें ऐसा सारल्य है –

भाल लाल बेंदी, ललन आखत रहे बिराजि।

इन्दु कला कुज मैं बसी मनौ राहु भय भाजि।।

कहीं अनुभाव–चित्रण में भाषा में इतना लालित्य भर दिया गया है कि वह सहज ही मन मोह लेती है –

कहत नटत रीझत, खिजत, मिलत, खिलत लजियात।

भरे भौन में करत हैं नैननु सौं सब बात।।

इतनी सारी आंगिक चेष्टाओं को दोहे की एक पंक्ति में भर देना बिहारी का ही कौशल है। इसीलिए उनके दोहे 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं।

इसी प्रकार विरोधी मुहावरों का प्रयोग कर वे भाषा को कितना अर्थ–सक्षम कर देते हैं –

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरित चतुर–चित प्रीति।

परति गाँठ दुरजन–हियें, दई नई यह रीति।।

दृगों के उलझने से कुटुम्बों से सम्बन्ध टूटना, चतुर जनों की प्रीति जुड़ने से दुरजनों के हृदय में गाँठ पड़ना जैसे प्रयोग उनकी काव्य कला को विशिष्ट उत्कर्ष प्रदान करते हैं। इसी प्रकार वे अपनी भाषा को उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सांगरूपक, प्रतीप, आदि अलंकारों का कुशल प्रयोग कर और अधिक मोहक रूप प्रदान कर देते हैं। कदाचित् ही उनका कोई दोहा होगा जिसमें किसी न किसी अलंकार की छटा दिखाई न देती हो। उत्प्रेक्षा का यह उदाहरण देखिए –

लसतु सेतसारी ढप्यौ, तरल तर्यौना कान।

पर्यौ मनौ सुरसरि–सलिल रबि प्रतिबिम्ब बिहान।।

बिहारी ने दोहे जैसे छोटे से छंद को जितनी भाव–समृद्धि और गरिमा प्रदान की है, वह अतुलनीय है। दोहा अर्ध–सम 24 मात्राओं का छंद है जिसके प्रथम तथा तीसरे चरण में 13–13 तथा दूसरे तथा चौथे चरण में 11–11 मात्राएँ होती हैं। बिहारी इसका कहीं भी व्यतिक्रम नहीं करते हैं, दोहे के साथ–साथ उन्होंने कहीं–कहीं सोरठा छंद का भी प्रयोग किया है। वस्तुतः दोहे को बिहारी ने उतनी ऊँचाई दी जितनी कवि रहीम ने अपेक्षित की थी –

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे माहिं।

ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमट कूदि चढ़ि जाहिं।।

इससे भी आगे बढ़ कर उन्होंने दोहे को इतना मार्मिक बना दिया कि लोक में यह प्रचलित हो गया –

सतसइया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।

देखन में छोटे लगैं, घाव करें गंभीर।।

4.4 सारांश

वस्तुतः बिहारी की काव्य–कला अत्यंत श्रेष्ठ है, जो निश्चय ही उन्हें महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

4.5 कठिन शब्द

1.	क्षणभंगुरता	2.	अवदान
3.	तूलिका	4.	द्रष्टव्य
5.	भंगिमा	6.	ऊहात्मक
7.	असीम	8.	उत्कर्ष
9.	व्यतिक्रम	10.	मार्मिक

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बिहारी रसराज़ श्रृंगार के अतुलनीय कवि हैं स्पष्ट करें ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. बिहारी काव्य में वर्णित संयोग पक्ष का चित्रण कीजिए ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3. बिहारी काव्य के कला पक्ष पर प्रकाश डालिए ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. श्याम सुन्दर दूबे
3. बिहारी व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन – रमेश चंद्र गुप्त
4. बिहारी सतसई : तुलनात्मक अध्ययन – पद्मसिंह शर्मा
5. बिहारी सतसई का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – रामकुमारी मिश्र
6. बिहारी का नया मूल्यांकन – बच्चन सिंह

_____

घनानंद की प्रेम व्यंजना

5.0 रुपरेखा
5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 घनानन्द की प्रेम–व्यंजना
5.3.1 स्वप्नजन्य संयोग
5.3.2 संयोग में वियोग
5.3.3 वियोग
5.3.4 स्मृतिजनित वेदना
5.3.5 प्रेम–वैषम्य
5.3.6 विवशता
5.4 कठिन शब्द
5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.6 संदर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

1. रीतिकाव्य परम्परा में घनानंद के महत्व से अवगत हो सकेंगे।
2. घनानन्द के प्रेम संबंधी दृष्टिकोण को जान सकेंगे।
3. घनानन्द की प्रेम–व्यंजना की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

घनानन्द रीतिकाव्य की स्वच्छंद काव्य–धारा के प्रमुख कवि हैं। रीतिकालीन स्वच्छंद काव्य–धारा अपने युग की रचना–पद्धति से पृथक; परम्परागत रूढ़ियों से सदा उन्मुक्त होकर चली। शास्त्रीय बन्धनों से पूरी तरह से स्वतन्त्र एवं स्वच्छंद इस धारा के कवियों ने नैसर्गिक एवं प्रकृत प्रेम से ओत–प्रोत कविता की सर्जना की। इस प्रेम में कृत्रिमता एवं आडम्बर प्रियता लेशमात्र भी नहीं है। यह कविता प्रेम की सहज उमंग से ओत–प्रोत है और इसमें प्रेम के सहज भावों का उद्रेक बिना किसी बौद्धिक व्यंजना से हुआ है।

5.3 घनानन्द की प्रेम–व्यंजना

रीतिकालीन स्वच्छंद काव्य धारा के कवियों ने प्रेम के बाह्य सौन्दर्य के स्थान पर उसके आन्तरिक सौन्दर्य को प्रमुखता दी, इस में बाह्य स्पर्श करने वाले प्रेम–भावों के स्थान पर अन्तर स्पर्श करने वाले प्रेम के तीव्र उद्‌गारों का माधुर्य मिलता है। हिन्दी की स्वच्छंद प्रेम–धारा के कवियों में रसखान, आलम, घनानन्द, ठाकुर और बोधा का नाम उल्लेखनीय है। ये सभी कवि प्रेम–काव्य के प्रणेता हैं और इन्होंने स्वच्छन्दता की प्रेमानुभूति का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है किन्तु इनमें से घनानन्द सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। घनानन्द ने अपनी लौकिक प्रेयसी 'सुजान' को आलम्बन बनाकर अपना प्रेम–निवेदन किया है जो हिन्दी साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गया है। घनानन्द की श्रेष्ठता का सबसे बड़ा कारण है कि उन के हृदय में सुजान के प्रति उत्कृष्ट प्रेम है, मन में सुजान की अक्षय रूप–राशि समाई हुई थी और प्राणों में अनन्त प्यास भरी हुई थी। इसीलिए घनानन्द का काव्य प्रेम की गूढ़ता से भरा हुआ है।

घनानन्द की दृष्टि में प्रेम का दूसरा नाम पीड़ा है। प्रेममार्ग पर चलने वाले व्यक्ति विरले होते हैं। इस पथ के राही को संकटों का सामना करना पड़ता है। यह रास्ता भीड़ के सहारे तय न होकर, वीरान के सहारे तय होता है। प्रेमी लोगों के आश्रय को छोड़कर केवल अपने सहारे से चलता है। प्रिय के प्रति वह समर्पित रहता है, क्योंकि वह अपनी और प्रिय की मूल्यवत्ता अच्छी तरह समझता है। प्रेम–मार्ग पर चल पाना ही जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। प्रेम ही जीवन का सार–तत्व है। जिसके हृदय में प्रेम नहीं है, उसका जीवन व्यर्थ है। यहां यह स्पष्ट कर दिया जाये कि घनानन्द ने प्रेम की परिपक्वता उसके वासनारहित होने में मानी है। शुद्ध प्रेम की इस सीमा के छूने के लिए सब–कुछ भूलकर प्रेममय होना पड़ता है। यहां आकर ज्ञान और भोग की सभी रेखाएँ क्षीण हो जातीहैं –

ज्ञान हूं तो आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोग जात है।

घनानन्द के अनुसार प्रेम का मार्ग सरल भी है और कठिन भी। इस मार्ग पर चलने के लिए चतुराई–पांडित्य को भूलना पड़ता है और कष्ट सहन करने के लिए अपने–आपको तैयार करना पड़ता है –

अति सूधो सनेह कौ मारग है इहाँ नैकु सयानप बाँक नहीं।

यहां हृदय की अनन्यता और निश्छलता प्रेमी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। छली–कपटी लोगों के लिए यह मार्ग नहीं बना।

घनानन्द ने प्रेम–मार्ग की सभी यातनाओं को भोगा है, जीवन के एक–एक पल का हिसाब जोड़ा–तोड़ा है,

जिसमें कहीं कोई गलती नहीं है। उसके एक–एक पल में सभी यातनाएँ देखी जा सकती हैं। यह मार्ग कठिन हैं, क्योंकि पल–भर के लिये भी प्रेम का नाम लेना खतरे से खाली नहीं है। नाम–भर लेने से ही संसार के व्यंग्य–तानों को सहना पड़ता है। प्रेम की भाषा शब्दों से परे है, उसे चर्म की वाणी से न कहकर कर्म की वाणी से कहना पड़ता है। फूंक–फूंककर कदम रखने वाला व्यक्ति ही इस मार्ग पर चल सकता है, क्योंकि इसकी यातनाएं अनन्त हैं। प्रेम–पथिक हमेशा संकटों से घिरा रहता है, प्रीति के बोझ से कुबड़ा हो जाता है, विषम ज्वर की लू से जलता रहता है, उसके नेत्र बरसते रहते हैं, पीड़ा के कारण वह उठ नहीं सकता –

कहि न सकत, ससकत नैन बान बिंधे।
इते हू पै विषम विषाद जुर लू बरै।।
सूरे पन पूरे हेत खेत तें हटै न कहूं।
प्रीति बोझ बापुरे भये हैं दबि कूबरै।।

केवल सहिष्णु व्यक्ति ही प्रेम–मार्ग पर चल सकता है, अपने–आपको भूल–कर चलने वाला व्यक्ति ही कष्ट सहन कर सकता है। जो व्यक्ति अपने–आपको भूल नहीं सकता, वह प्रेम–मार्ग पर भी नहीं चल सकता। अपने–आपको याद रखने वाला व्यक्ति रास्ते में ही थककर बैठ जाता है –

जान घनआनन्द अनोखो यह प्रेम पंथ,
भूले ते चलत रहैं सुधि के थकित हैं।

इसमें देना ही देना पड़ता है, बांटना ही बांटना पड़ता है – कुछ पाने–लेने की आशा वाला व्यक्ति बीच मंझधार डूब जाता है।

घनानन्द के काव्य में वियोग की प्रधानता है, लेकिन संयोग–शृंगार की कमी नहीं है। यह संयोग कम समय के लिए है लेकिन जितने भी मिलन के पल हैं, उन सबका चित्रण घनानन्द ने ईमानदारी से किया है। अभिसार के लिये जाती सुजान का अंग–अंग उमंग उत्साह से भरा हुआ है, उसका रोम–रोम पुलक रहा है, हृदय महक रहा है।

ललित उमंग बेली आलबाल अन्दर तें,
आनन्द के घन सींची रोम–रोम ह्वै चढ़ी।
आगम–उमाह–चाह छायौ सू उछाह रंग,
अंग–अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।।

5.3.1 स्वप्नजन्य संयोग

घनानन्द को स्वप्न में भी संयोग की अनुभूति होती है, लेकिन यह संयोग स्वप्न के समान काल्पनिक है,

क्षणिक है। यह सुख उसके समीप नहीं, बल्कि दूर जाकर निवास करता है। संयोग की यह स्वप्निल भावभूमि उसके पास आने से पहले ही पारे के समान बिखर जाती है जिससे कवि को दुगुना दुःख होता है –

सौधनि ही परियै भरियै अधराधनि बाधनि के गन छावत।
देखैं कहा ? सपनेहू न देखत नैन यौं रैन बिना झर आवत।।
जौ कहूं जान लखैं घनआनन्द तौ तन नैकु न औसर पावत।
कौन वियोग भरे अंसुवा, सु संजोग मैं आ गई देखन धावत।।

स्वप्नजन्य संयोग में जब आँसू भागते हुए चले आते हैं, इतनी पीड़ा होती है, हर समय वियोग की अनुभूति होती है। तब वियोग में कितना कष्ट होता होगा, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। घनानन्द इस बात को भली–भांति जानते हैं कि प्रिय या प्रेमिका कभी पास नहीं रहते, या तो वे दूर चले जाते हैं या छिन जाते हैं। यह जरूरी नहीं कि प्रिय पास रहे। दशरथ को राम प्रिय थे, वे वन को चले गये; राम को सीता प्रिय थी; उसका हरण हो गया; राधा–गोपियों को कृष्ण प्रिय थे; उन्हें अक्रूर ले गया। घनानन्द सुजान को बहुत चाहते थे। प्रेम की अतिशयता के कारण उन्हें यह भय लगा रहता था कि कहीं सुजान उनसे दूर न चली जाये। सुजान तो नहीं गई, लेकिन घनानन्द को देश निकाला मिल गया। सुजान से दूर रहने के कारण उसके प्रति घनानन्द का प्रेम और भी प्रगाढ़ हो गया। संयोग में उसे वियोग की अनुभूति होती रही और वियोग में सुजान के साथ बिताये पल उसका सम्बल बनते रहे।

हौ घनआनन्द ए हौ सुजान तऊ ये दहैं दुखदाई परखैं।
आँखिन आप भी आँखि न देख्यौ कियै अपनो सपनेऊ न देखै।

5.3.2 संयोग में वियोग

घनानन्द के जीवन में संयोग के पल बहुत कम रहे। अतीत के इन विरल पलों को ही पाथेय बना वह अपनी जीवन–यात्रा निर्णीत करता रहा। जीवन–भर इसी स्मृति को हृदय की मंजूषा में संभाले रहा। उसके लिए संयोग क्षणिक और वियोग शाश्वत है। क्षणिक संयोग के पलों में भी उसे वियोग की आशंका बनी रहती है। जीवन के निजी एकान्तिक पलों में भी कवि को यही चिंता सताती रहती है कि कहीं वियोग न आ जाये। मिलन से पूर्व ही विरह की संभावना सताने लगती है। संयोग के नितान्त निजी पलों को जीता हुआ भी घनानन्द वियोग को नहीं भुला पाता। यही उसकी नियति की विचित्र विडम्बना है कि सुजान से दूर जाने पर वह उससे मिलना चाहता है और मिलन का आनन्द–लाभ इसलिये नहीं कर पाता कि कहीं सुजान उससे दूर न चली जाये –

सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निस्यौं करि।
केलि–कला–रस आरस–आसव–पान छके घनआनन्द यौं करि।।

पै मनसा मधि रागत पागत लागत अंकनि जागत ज्यौं करि।

ऐसे सुजान विलास निधान हौं सोएँ जगे कहि ब्यौरियै क्यौं करि।।

तन से निकट होने पर भी उसके संसार में मानसिक दूरी हमेशा बनी रहती है। उसका सुख आलिंगन में आने से पहले ही मुस्कुराकर भाग जाता है –

1. *मिले हूं मिले को सुख पाय न पल एकौ,*
   निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै।
2. *अनोखी–हिलग दैया बिछुरे तौ मिल्यौ चाहै,*
   मिले हूं मैं यारै जारै खरब बिछोह की।

5.3.3 वियोग

विरह घनानन्द के जीवन का और काव्य का प्राण है। सुजान के समीप न रहने पर उसे प्राप्त करने की उसकी तीव्रता बढ़ जाती है। वह उसे याद करके दुखी होता रहता है – उसका मन–प्राण व्याकुल हुआ रहता है। वह अपनी ही पीड़ा में घुटता–तड़पता रहता है। उसकी पीड़ा समुद्र के समान असीम–अनन्त है, उसका न आदि और न अन्त है। उसकी व्याकुलता और तड़प की बराबरी प्रकृति का कोई भी उपकरण नहीं कर पाता – मीन और पतंगा भी नहीं। घनानन्द इन दोनों प्राणियों को कायर कहता है। मीन जल के वियोग में प्राण त्याग देती है और पतंगा दीपक के पास रहकर अपने प्राण त्याग देता है। घनानन्द अपने–आपको साहसी और शूरवीर कहता है, क्योंकि न उसने संयोग में प्राण त्यागे और न वियोग में। ऐसे संयोग में भी प्राण नहीं त्यागे, जब निरन्तर वियोग की आशंका बनी रहती है, ऐसे वियोग में भी प्राण नहीं त्यागे, जब वियोग में वह वियोग की स्मृति के सहारे जीता है। संयोग–वियोग को साहस से सहन कर वह पौरूष का परिचय देता है, जीवित रहकर कष्ट सहन करता है, अपने–आपको समाप्त नहीं करता। वह अग्नि की ज्वाला को सहन भी करता है और मुस्कुराता भी है। वह विरहाग्नि का अनुभव करके बता नहीं पाता कि यह अग्नि कहाँ लगी हुई है। उसका कारण है कि वह अग्नि साधारण की अग्नि की तरह नहीं है। यह विचित्र अग्नि है, आँसुओं से और भी ज्यादा भड़क उठती है जबकि दूसरी अग्नि जल से बुझ जाती है। शरीर जितना ज्यादा जलता है, उतना ही शीतल होता जाता है; क्योंकि वह अपने अतीत के स्नेहिल दिनों में खो जाता है। ऐसी नेह भरी बातों को केवल याद करके जिया जा सकता है, बताकर नहीं –

नेह भीजी बातें रसना पैऊ आंच लागै,

जागैं घनआनन्द ज्यौं पुं जनि मसाल है।

जितना ही वह स्नेहिलशीतल बातों को याद करता है, उसकी वाणी मशाल के समूह की तरह जलने लगती है और इस कष्ट का भी जवाब नहीं। यह कष्ट इसलिए ज्यादा है कि न इसे सहन किया जा सकता है और न दूर

किया जा सकता है। उसकी आंखों में अनोखी पावस छाई रहती है – आंखें हर समय बरसती रहती हैं –

अन्तर–आँच उसास तचैं अति अंग उसीजै उदेग की आवस।

ज्यौं कहलाय मसोसनि अयस क्यौं हूं कहूं सु धरैं सु धरैं नहिं थ्यावस।

नैनउ धारि हियैं बरसैं घनआनन्द छाई अनोखियै आवस।

जीवन मूरति जान को आनन है बिना हेरै सदाई अमावस।।

कवि विचित्र प्रकार के मानसिक द्वन्द्व और उथल–पुथल से गुजर रहा है, वह अपने–आप में ही हर समय खोया–खोया रहता है। एक साथ ही जागता और सोता दिखाई देता है। कभी–कभी उसे ऐसे लगता है कि सुजान से प्रेम करके उसने अपने लिये ही उलझनें बढ़ा ली हैं। उससे न जागते बनता है और न सोते। न पूरी तरह हँस पाता है और न रो पाता है। हँसते–हँसते अचानक रोने लगता है और रोते–रोते हँसने लगता है। उसके नेत्रों में आँसुओं की शीतलता भी है और विरह की जलन भी। बिना मौत ही उसे मृत्यु का अनुभव होता रहता है –

अन्तर उदेग दाह, आँखिन प्रवाह आँसू,

देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।

सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हूँ,

खोय–खोय आह ही मैं चटक लहनि है।

घनानन्द अपने कष्ट को पूरी तरह कह नहीं पाता। वह कई बार नाना रूपों में कहने का प्रयत्न करता है, मगर वह जितना ही कहता है उतना ही अनकहा रह जाता है। यदि रोम–रोम भी वाणी का गुण धारण कर ले – बोलने लगे–तब भी उसकी वेदना को नहीं कहा जा सकता। यदि वह कहने का प्रयत्न भी करता है तब भी वह अपने कष्ट को ज्यों का त्यों नहीं कह पाता – क्योंकि सहन–करने में आकाश पाताल का अन्तर है। जितना कष्ट उसने झेला है, उसका शतांश भी नहीं कहा जा सकता। उसकी जिन्दगी कैसे बीत जाती है, उसे मालूम ही नहीं पड़ता। कष्ट भोगते–भोगते दिन और रात में भी अन्तर मालूम नहीं पड़ता। पल–भर के लिए भी उसे कष्ट से मुक्ति नहीं मिलती। निरन्तर व्यथा की अग्नि में तपकर भी वह जीवित है, यही आश्चर्यजनक है –

फूटि–फूटि टूक–टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो,

बचिबौ अचंभो भीचौ निदरि करै गई।

इसी कथापरक स्थिति में घनानन्द को हर समय हर स्थान पर सुजान दिखाई देती है, फिर भी निरन्तर वियोग बना रहता है। कष्ट वाली ऐसी सुजान को बनाकर विधाता को न जाने क्या मिला, यही समझ में नहीं आता। सुजान के वियोग में घनानन्द का अंग–अंग दुःखी है। 'बेचारी दुखिया आंखों का कहना ही क्या, पीड़ा का झरना उनमें

से झरने लगता है – हृदय का बाँध बांधने पर भी उस झरने का प्रवाह नहीं रुकता' –

पीर की भीर अधीर भईं अखियां दुखिया उमरि झरना लौं।

रोकि रही उर मैंड़ बही इन टेक यही जु गही सु दही लौं।।

सुजान का दर्शन ही घनानन्द के नेत्रों की एकमात्र आकांक्षा है। ये आंखें स्वतन्त्र अस्तित्व लेकर जीती हैं। वे कभी चौंकती हैं, कभी चकित होती हैं, कभी रोती हैं और कभी हंसती हैं। कुल मर्यादा को तोड़ सुजान पर रीझती–मुग्ध होती हैं। विधाता ने भी जाने क्या सोचकर आंखों की रचना की है – वे सुजान के रूप को पीना चाहती हैं – मगर वह मिलता नहीं है। वियोग ही इनकी पूंजी है, उसी को सम्भाले–सम्भाले घूमती रहती हैं। कभी बाट जोहती और कभी भस्मी रोग से व्याकुल होती हैं। जिस प्रकार भस्मी रोग से व्याकुल व्यक्ति दिन–रात खाता रहता है और उसकी भूख नहीं मिटती, उसी प्रकार आंखें भी निरन्तर सुजान को देखती रहती हैं, फिर भी तृप्त नहीं होतीं। प्यासी आंखें सुजान का मुख देखने के लिए तरसती रहती हैं और निरन्तर बरसती रहती हैं –

1. *अतन जतन तें अनखि अरसानी बीर,*

प्यासी पीर–भीर क्यों हूं धीर न धरति हैं।

देखियै दसा असाध अखियाँ निपेटिनि की,

भसमी विथा पै नित लंघन करति हैं।।

घनानन्द की आंखें हमेशा मीठी–मीठी पीड़ा का अनुभव करती रहती हैं, इसी में इनकी स्वाभाविकता है –

चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनन्दघन,

तेई आँखें साखैं और पाँखैं कहा जानहीं।

ये बावरी आँखें निरन्तर सुजान के आने की प्रतीक्षा करती रहती हैं। स्वागत के लिए पलकों के पांवड़े बिछाती हैं। सुजान को देखने पर भी और न देखने पर भी हमेशा दुखी रहती हैं। जब से उन्हें सुजान के आने की अवधि का समाचार मिला है, तब से वे रास्ता नापती रहती हैं –

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रुमाँच ह्वै काँपति हैं।

घनआनन्द जान सुधाधर मूरति चाहनि अंक में चाँपति हैं।।

टग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहिं झाँपति हैं।

जब तें तुम आवनि औधि बढ़ी तबतें अखियाँ मग भापति है।।

वक्त–वक्त की बात है – कभी आंखें सुजान का रूप–रस पीते–पीते तृप्त नहीं होती थीं और कहाँ अब उनका

शरीर चिन्ता से जल रहा है। अनोखी लग्न लगी है – न उनसे सोते बनता है और न जागते। जब से उन्हें रूप की चिंगारी लगी है, तब से उनकी नींद ने भी जागना शुरू कर दिया है –

1. तब तौ छवि पीवत जीवत है अब सोचन लोचन जात जरे।

2. सोएँ न सोयबो, जागै न जाग, अनोखियै लाग सु आँखिन लागी।

3. जिन आँखिन रूप चिन्हारि भई तिन की नित नींद ही जागनि हैं।

4. मुख देखत ही पलकौ न लगै अँखियानि मैं जागनि जोति खिले।।

घनानन्द की आँखें व्यक्ति और व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी भी शारीरिक और मानसिक इच्छाएं हैं। उनका भी राग–वैराग्य, सुख–चैन सब कुछ है। वे प्रत्येक स्थिति का सूक्ष्मता से अनुभव करती हैं, व्यक्ति के समान वे व्यवहार करती हैं। वे हठी हैं, रूपलोभी हैं, भुक्कड़ हैं, पगली हैं, दिन–रात आंसू बहाया करती हैं। अपने विचित्र बेतुके स्वभाव के कारण तरह–तरह की यातनाएं सहती हैं। यदि उनका ऐसा स्वभाव नहीं होता, संभवतः उन्हें कष्ट सहन नहीं करना पड़ता। पानी में डूबी रहती हैं, लेकिन फिर भी प्यासी रहती हैं – जलती रहती हैं। कभी बरसती हैं, कभी जागती हैं, कभी सोती हैं, घनानन्द की होते हुए भी उसके लिए परायी हो जाती हैं। उनके शरीर का एक–एक अंग है। हाथ–पैर, मुँह–गरदन सब कुछ है। प्रत्येक कार्य करने के लिए वे अपने शरीर का एक–एक अंग हिलाती–डुलाती हैं।

घनानन्द का मन हमेशा यह सोचता रहता है कि एक–बार सुजान मिल तो जाये सही, सभी गिले–शिकवों का पिटारा उसके सामने खोल कर बैठ जाएगा। सुजान की बेरूखी–बेपरवाही अपनी रीझ–खीझ, व्यथा–सम्पदा की सब परतें खोलकर उसे दिखाएगा, लेकिन सुजान के सामने आते ही वह सब कुछ भूल जाता है, अपना होश खो बैठता है, उसके रूप–रस का पान करते ही, शिकवा–शिकायत धरा रह जाता है –

भूलैं सुधि सातौ दसा–दिवस भरत गातौ,

रीझि बावरे ह्वै तब औरै कछू भाखियै।

5.3.4 स्मृतिजनित वेदना

घनानन्द केवल रहता वर्तमान में है और जीता अतीत के स्वप्निल संसार में है। अपने वर्तमान के कई टुकड़ों को वह इकट्ठा करके बार–बार अतीत में जाता है, क्योंकि वर्तमान और अतीत में अन्तर है। अतीत सुखदायी है, वर्तमान दुखदायी है। अतीत संयोगजन्य है और वर्तमान वियोगजन्य है। वर्तमान का वियोग–दुख ही उसे अतीत सुख की याद दिलाता है। कवि के लिये प्रकृति भी दुःख का कारण है, क्योंकि सुजान पास नहीं है। पर्व–त्यौहार भी दुःखदायी लगते हैं–फीके लगते हैं, क्योंकि प्रियतमा बहुत दूर है। जिस प्रकार कृष्ण के वियोग में मीरा को फाग फीका लगता है, उसी प्रकार घनानन्द को सुजान के वियोग में पावस–बसन्त, फाग–दीपावली सब कुछ फीकी लगती है। उल्लास–प्रसन्नता

बिखेरने वाले पर्व भी दुःखदायी हो जाते हैं, जब प्रिय पास नहीं होता। पुरवा भी सुख–चैन छीनकर जाने कहां–कहां से दुख बटोरकर उसके पास ले आती है –

महकि महकि मारैं पावस–प्रसून–वास,

गासनि उसास दैया कौ लौं रहियै नचै।।

कोयल भी न जाने कौन से बैर का बदला ले रही है – हर समय कठोर आवाज में बोलती रहती है। मेघ भी घनानन्द की कष्टप्रद स्थिति को देखकर आंसू बहाने लगता है, जुन्हाई भी विचित्र प्रकार की ज्योत्सना फैला रही है, जो नीचे से ऊपर की ओर जाती है। दीपावली उसके दिल को जलाती है बिजली उसके कष्ट देखकर हंस रही है। इस प्रकार के स्मृतिजन्य कई भावपरक चित्र घनानन्द ने खींचे हैं –

1. *त्यों दुख देखि हँसै चपला अरू पौन हूं दूनों निदेह तें दाहक।*
2. *बूंदै न परति मेरे जान जान प्यारी, तेरे*
   विरही कौं हेरि मेघ आँसुनी झरयौ करै।
3. *सोंधे की बास उसासहि रोकति, चन्दन दाहक गाहकजी को।*

आनन्द देने वाली ऋतुएँ और प्रसन्नता देने वाले पर्व–त्यौहार दोनों ही घनानन्द को कष्ट देने वाले हैं, क्योंकि सुजान पास नहीं है। बीते हुए दिनो को याद कर और त्यौंहारों को देखकर उसे और भी कष्ट होता है। यदि पिछली स्मृतियों का वह बखान करने लगे – वह कर नहीं सकता, क्योंकि भोगे–कहे हुए में दिन–रात का अन्तर है। उसके अंग–अंग में कामदेव पीड़ा पहुँचाता है, रोम–रोम में काम की पीड़ा ऐसी व्यापी हुई है कि निकलने का नाम नहीं लेती। चाहकर भी वह अनंग की मार से बच नहीं सकता। उसने आंखों की ऐसी आग को देखा है जो पानी से प्रचंड होती है। जलन के दर्द का बखान करने में कष्ट ही कष्ट है, क्योंकि जो उसने भोगा है, उसे प्रकट करने के लिए शब्द असमर्थ हैं, उसके वर्णन करने में आकाश–पाताल का अन्तर हो जायेगा –

1. *पौन तें जागति आग सुनी ही पै पानी तें लागति आँखिन देखी।*
2. *जानै देई दिन–राति बखाने तें जाय परै दिन राति को अन्तर।*
3. *पीरी परि देह छीनी राजत सनेह भीनी,*
   कीनी है अनंग अंग–अंग रंग–बोरी–सी।
4. *रोम ही रोम परी घनआनन्द काम की रोर न जाति निबेरी।*

5.3.5 प्रेम–वैषम्य

घनानन्द को घोर विरोध–वैषम्य की जिन्दगी जीनी पड़ी, इसलिये उसके काव्य में भी विरोध– वैषम्य की प्रधानता है। उसे अपने जीवन में कई प्रकार की विषमताओं का सामना करना पड़ा, इसलिये उसके काव्य में भी विषमता ही विषमता है। उसका कारण है, सुजान और घनानन्द के व्यक्तित्व में घोर वैषम्य। दोनों के गुण–कर्म और स्वभाव में अन्तर है और यही अन्तर, विरोध का कारण है। घनानन्द अपनी सुजान को तन–मन से प्रेम करता है जबकि सुजान के कई प्रेमी हैं। सुजान के प्रति घनानन्द निष्ठावान है जबकि सुजान उसके प्रति उपेक्षावृत्ति रखती है। सुजान का काम घनानन्द को मात्र अपनी ओर आकर्षित करना है – इसके बाद वह निरन्तर उसकी उपेक्षा करती जाती है। सुजान का घनानन्द के प्रति निष्ठावान होना ऐसे ही असंभव है, जैसे सागर का मछली के पास आना, चन्द्रमा का चकोर को चाहना, स्वाति का पपीहे की ओर आना, कुबेर का किसी रंक पर कृपा–दृष्टि करना या इसी तरह की और भी असंभव घटनाओं का घट जाना–

चन्द चकोर की चाह करै घनआनन्द स्वाति पपीहा कों धावै।
त्यौं जसरैनि के ऐन बसै रति मीन पै दीन है सागर आवै।।
योसो तुम्हें सुनौ जान कृपानिधि ! नेह निबाहिबो यौं छवि पीवै।
ज्यों अपनी रूचि राचि कुबेर सु रंकहि लै निज अंक बसावै।।

दोनों का स्वभाव विपरीत दिशाओं को छूता है – एक निष्काम है और दूसरा सकाम। एक अपने प्रेमी की मंगलकामना करता है, दूसरा उसका सुख–चैन छीन, उसे दुःखी कर मुस्करा कर चला जाता है–

1. *तुम तौ निहकाम सकाय हमैं घनआनन्द काम सो काम परयौ।*
2. *दुःख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित्त के अखें हम चिन्त लही।*

घनानन्द को इसी बात का गम है कि सुजान उसका सुख–चैन छीन दुःख देकर चली जाती है। घनानन्द उसे बार–बार यही कहता है कि यदि उसे प्रेम करके भूल ही जाना था तो उसने प्रेम किया ही क्यों? पहले प्रेम–पगी बातों से सींचा और बाद में वियोग–आंधी से उखाड़ दिया। पहले उसने मीठी–मीठी बातें की और बाद में मुँह फेर कर चली गई। मुस्कराकर देखा और बाद में बीच मंझधार में डूबने के लिए छोड़ गई – यहां सरासर अन्याय है। इस अन्याय को सहन करने के सिवा घनानन्द के पास और कोई चारा नहीं है, क्योंकि उसने सुजान से प्रेम किया है और उसे जी–जान से चाहा है–

1. *पहिले घनाआनन्द सीचि सुजान कही बतियाँ अति प्यार पगी।*
   अब लाय वियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास दगानि दगी।।
2. *क्यौं हँसि हेरि हर्‌यौ हियरा अरु क्यौं हित कै चित्त चाह बढ़ाई।*
   काहे कों बोलि सुधा सने बैननि चैननि मैन–निसैन चढ़ाई।।

3. *पहलें अपनाय सुजान सनेह सों क्यौ फिरि नेह कै तोरियै जू।*

निरधार अधार दै धार मंझार दई गहि बाँह न बोरियै जू।।

सुजान के निष्ठुर–क्रूर स्वाभाव से घनानन्द बहुत दुःखी है। कभी–कभी उसे ऐसा लगता है कि सुजान बधिक से भी ज्यादा क्रूर है। बधिक के हृदय में भी कभी–कभी दया–ममता उपजती है, लेकिन सुजान के हृदय में कहीं भी मोह–माया नहीं है। जिस प्रकार बधिक अपने शिकार को मारते समय जरा भी नहीं सकुचाता उसी प्रकार सुजान भी घनानन्द को अपने पाश में कसकर निर्ममता से उसके हृदय की हत्या कर देती है। घनानन्द ने हृदय–पटल पर बार–बार सुजान का नाम लिखा है, उसे पाती भेजी है, लेकिन निर्मम सुजान उसके टुकड़े–टुकड़े कर फेंक देती है, उसे पढ़ती तक नहीं। इससे बढ़कर घनानन्द की और क्या विडम्बना होगी–

ऐसो हियो हित पत्र–पवित्र जु आन कता न कहूँ अगेख्यौ।

सो घनानन्द जान अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ।।

घनानन्द के प्रेम में वैषम्य का ही साम्राज्य है। दोनों के स्वभाव की तरह कर्म में भी विरोध है। प्रेम करके भूल जाना उसका स्वभाव है – प्रेम की ऊँचाई तक ले जाकर नीचे गिरा देना उसका कार्य है। बीच–मंझधार ले जाकर धोखा देना उसका गुण है। स्वभाव की तरह उसका व्यवहार भी विचित्र है। कई विरोधी प्रवृत्तियाँ सुजान के व्यक्तित्व में दिखाई देती हैं। वह स्नेह का बन्धन मुस्कराकर बाँधती है और झटके से तोड़ भी देती है। वह एक साथ प्रेम भी करती है और घृणा भी करती है। संभवतः प्रसाद ने नारी का विरोधी स्वभाव सुजान के व्यवहार से लिया होगा। आकाशदीप की नायिका भी सुजान की तरह घृणा–प्यार एक साथ करती है, 'दस्यु, मैं तुमसे घृणा करती हूँ, फिर भी तुमसे प्रेम करती हूँ, वह प्रेम–पगी रस–सनी बातें भी करती है, और तेवर भी चढ़ाये रहती है। घनानन्द की सुजान भी निष्ठुर है, कठोर है। घनानन्द की बात नहीं सुनना चाहती। वह उसके लिए बहरी बन जाती है। कवि का सारा सुख–चैन छीन और दुःख दे चैन की नींद सोती है, इत्मीनान से रहती है। पुरानी पहचान भुला देती है। यही नहीं घनानन्द कभी रास्ते में मिल भी जाये तब भी उसे पहचाने बिना मुंह फेर कर निकल जाती है।

सुजान के इस अपरिचित व्यवहार को देखकर घनानन्द कलपता रहता है। उसका रोम–रोम सुजान के व्यवहार को देखकर पीड़ा से भर चुका है। यह पीड़ा कही नहीं जा सकती। यदि उसका रोम–रोम भी वाणी बनकर उसके कष्टों का बखान करने लगे तब भी उसकी करूण–गाथा अनकही रह जाएगी।

रोम–रोम रसना है लहै जो गिरा के गुन,

तन जान प्यारी निबरै न मैन अरतै।

एकबारगी सुजान ने उसे वियोग सौंपा तो दुबारा उसकी ओर देखने की कोशिश नहीं की। देखने की इच्छा भी उसे नहीं हुई। घनानन्द बार–बार यह कहता है उस जैसा प्रेमी सुजान को ढूंढे नहीं मिलेगा, लेकिन सुजान है कि उसकी बात पर कान नहीं देती – उसकी सुध नहीं लेती। जिस प्रकार पानी में से मक्खन नहीं निकाला जा सकता

उसी प्रकार, सुजान की निष्ठुरता को भी सहृदयता में नहीं बदला जा सकता। सुजान को अपने किए पर पछतावा भी नहीं है। दुःख घनानन्द को है और वह इस बात का है कि लोग क्या कहेंगे कि उसकी प्रेमिका कैसी है ? सुजान की निष्ठुरता को देखकर सच्चे प्रेमी प्रेम करना छोड़ देंगे। सुजान के व्यवहार से जो जग–हँसाई होने वाली है उसकी कल्पना से ही घनानन्द शर्म से धरती में गड़ जाता है।

5.3.6 विवशता

घनानन्द अपनी नियति को स्वीकार कर लेता है। यदि सुजान का स्वभाव कठोर है तो वह अपने आप को बदलना भी नहीं चाहती तो घनानन्द इसमें क्या कर सकता है ? इससे उसका कुछ बनने–बिगड़ने वाला नहीं है। यदि सुजान की इच्छा मुंह फेर कर चलने की है तो इसमें वह कर ही क्या सकता है ? जबरदस्ती पहचान करवाना उसके बस की बात नहीं है। उसके समझाने–बुझाने का भी सुजान पर कोई असर नहीं पड़ता। वह अपनी नियति को स्वीकारने में विवश हो गया है। चाहता तो वह भी यही है कि सुजान उसे एक बार निहार ले। यदि वह नहीं निहारती तो वह इसी में प्रसन्न है। सुजान की बेरूखी ने उसके प्रेम में परिपक्वता–प्रगाढ़ता ला दी है। सुजान जितनी ही निष्ठुर होती जाती है, घनानन्द उतना ही उसके प्रति निष्ठावान होता जाता है। उसका विश्वास मजबूत हो जाता है। सुजान उससे चाहे कितनी ही दूर क्यों न चली जाये घनानन्द उसे अपने पास ही समझता है। यह बात नहीं कि सुजान से सुन्दर नारी इस संसार में नहीं है – सौन्दर्य है मगर वह देखना ही नहीं चाहता, केवल सुजान ही उसके नेत्रों में बसी हुई है। इससे बढ़कर निष्ठा और क्या हो सकती है। कभी वह सुजान को पुकारता है और कभी मन को समझाता है कि जब सुजान उसके पास आना ही नहीं चाहती, नाहक ही उससे क्यों मोह पाला जाए। लेकिन फिर भी वह मोह पालता ही जाता है। अपनी दुर्दशा के लिए सुजान को उत्तरदायी मानकर भी उसके प्रति अनुरक्त है। व्यवहार में वैषम्य होने पर भी जी–जान से उस पर फिदा है। सुजान की न बोलने की अदा भी उसे भली लगती है, उनमें बांकापन दिखाई देता है। इस अबोले पर, मौन पर भी वह सरस्वती तक को न्यौछावर करता है और यदि कहीं सुजान बात करने लगे तब न जाने वह क्या न्यौछावर करेगा–

अनबोलनि पै बलि कीजियै बानी सुबोलनि की कहियै धौं कहा।

उसे कपटी और छली सुजान भी भली लगती है, क्योंकि वह उससे प्रेम करता है। उसके जीवन की सार्थकता ही इसी में है कि वह सुजान से प्रेम करता है, उससे अलग रहकर वह और कुछ सोचता ही नहीं है। सुजान कितनी ही बुरी क्यों न हो वह है तो उसकी प्रेमिका ही। वह भरसक उसे समझाने की चेष्टा करता है कि वह अपने निष्ठुर स्वभाव को छोड़ दे। प्रेम को कच्चे धागे की तरह न तोड़े। उसे सहारा देकर बीच–मंझधार जाकर न छोड़े। जब सुजान उसका जीवन है, प्राण है तब वह यह नहीं समझ पाता कि वह उसे इतना कष्ट क्यों देती है। उसका अमृत–सा रूप घनानन्द के लिए विष क्यों उगलता है। घनानन्द के हृदय में निरंतर बसे रहने पर भी वह न उसकी बात सुनती है और न अपनी बात कहती है। ऐसा क्यों ? यदि वही सुनती नहीं, उत्तर नहीं देती, तो उसके सिवाय घनानन्द अपनी बात कहे भी तो किससे ?

1. *अन्तर मैं बासी पै प्रवासी को सो अन्तर है,*

मेरी न सुनत दैया आपनी यौं न कहो।

घनानन्द सुजान के प्रति पूरी तरह समर्पित है। उसका मन सुजान के हाथ की वीणा है, वह जैसा चाहती है वैसा सुर निकालती है। उसकी इच्छा पर ही घनानन्द की मन–वीणा से सुर निकलता है। वह हमेशा बजाती रहती है – भैरवी भी और मल्हार भी। सुजान चाहे उसे कितना ही कष्ट क्यों न दे वह निरन्तर उसी के दरवाजे पर बिछा रहता है – उसका द्वार छोड़कर किसी दूसरे द्वार जाकर अलख नहीं जगाता–

1. *जान प्रबीन के हाथ को बीन है यो चित्त राग भर्‌यौ नित राजै।*
2. *पालौ प्यार की तिहारो तुम ही नीके निहारो,*

हाहा जनि टारौ चाहि द्वार दूसरे न है।

सुजान के व्यवहार को देखकर घनानन्द कभी–कभी खिन्न हो जाता है। वह सोचता है कि सुजान को ऐसा व्यवहार करते हुए जरा भी लाज–शरम नहीं आई। घनानन्द दीन–हीन व्यक्ति पर, वियोग की छुरी चलाते जरा भी दिल नहीं पसीजा समझ में नहीं आता कि सुजान जैसे लोगों को विधाता ने बनाया ही क्यों ? खिन्न होकर भी सुजान से उसे प्रेम है, उसके प्रति वह निष्ठावान है, क्योंकि उसका अंग–अंग सुजान के रंग में रंगा हुआ है। कवि ने मन के सिंहासन पर केवल सुजान को ही प्रतिष्ठित किया हुआ है–

अंग–अंग मेरे उनहीं के संग रंग रंगे,

मन–सिंघासन पर विराजै तिनही को ध्यान।

प्रेम के प्रति आस्था ने ही घनानन्द को कष्ट सहन करने के लिए बल दिया है, हर बात कहने की शक्ति दी है – दैन्य की भी और अधिकार की भी – इसलिए वह ठान लेता है कि चाहे कुछ भी हो जाए वह सुजान के मन में दया उपजा कर ही छोड़ेगा –

ऐसे घनआनन्द गढ़ि है टेक मन मांहि,

एरे निरदई तोहि दया उपजाय हौं।

घनानन्द की केवल एक ही तमन्ना है – वह है सुजान की प्राप्ति। उसकी आँखें सुजान को एक बार देख लेना चाहती हैं। जिस सुजान के लिए उन्होंने लोक–लाज कुल–मान को तिलांजलि दे दी उसे पल भर के लिए पकड़ लेना चाहती हैं –

दरसन लालसा ललक छलकनि पूरी,

पलकनि लागै लगि आवनि अरबरी।

अन्य कवियों की भाँति घनानन्द भी सुजान के पास संदेश भेजना चाहता है, उसे पत्र लिखना चाहता है, लेकिन लिखा नहीं जाता। उसके दो कारण हैं – एक तो हृदय में जितनी पीड़ा है वह पूरी की पूरी पत्र में आ नहीं सकती। दूसरा, जब भी वह पत्र लिखने बैठता है उसकी उंगलियाँ कांपने–पसीजने लगती हैं। वह मित्र द्वारा भी संदेश भेजना चाहता है, लेकिन भेज नहीं पाता। उसके भी दो कारण हैं। घनानन्द की वेदना इतनी अधिक है कि उसका अंशमात्र भी मित्र से कहा नहीं जा सकता। दूसरे, उसे संसार में विश्वासपात्र मित्र नज़र नहीं आता जिससे वह अपनी मन की बात कह सके। और फिर वह मित्र भी उसका सन्देश सुजान को ज्यों का त्यों सुना दे। इसलिए पत्र और मित्र दोनों ही उसकी अन्तर–व्यथा को कहने में असमर्थ हैं।

घनानन्द प्रकृति को भी सन्देश वाहक के रूप में चुनता है। पवन और मेघ–दोनों को संदेशवाहक बनाता है। पवन हर जगह व्याप्त है – और वह सब जगह जाता भी है। प्रियतमा कहीं भी हो वह वहाँ पहुँच सकता है। घनानन्द पवन की मनुहार करता है – उसे कहता है कि तुम थोड़ी–सी भस्मी सुजान के पास ले जाओ ताकि उसे मालूम हो सके कि मैं भी उसके विरह में जलकर राख हो गया हूँ। वह भस्मी का आदान–प्रदान करना चाहता है। वह अपनी भस्मी सुजान के पास भेजता है और सुजान की भस्मी अपने पास मंगाता है। वह पवन को कहता है कि तू सुजान से थोड़ी सी धूल भस्म ले आ ताकि मैं उसे नेत्रों में आँज सकूं , शरीर में लगा सकूं ताकि मेरे शरीर को उसके स्पर्श की अनुभूति हो सके –

ए रे बीर पौन ! तेरौ सबै और गौन, बीरी,
तो सों भौंर कौन मनै ढरकौंही बानि दे।
जगत के प्रान ओछे बड़े सों समान घन,
आनन्द निधान सुखदान दुखियानि दै।।

पवन की तरह घनानन्द ने मेघ को भी संदेशवाहक बनाया है। उसका कारण है कि मेघ दूसरों के हित के लिये शरीर धारण करते हैं, शीतलता बरसाते हैं, जीवनदान देते हैं। घनानन्द की उससे एक ही कामना है कि मेघ उसके वियोग–भरे आँसुओं को ले जाकर सुजान के आँगन में बरसा दे ताकि वह समझ जाये कि नेत्र उसके वियोग में निरन्तर बरसते रहते हैं –

पर काजहिं देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ है दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबही विधि सज्जनता सरसौ।।
घनआनन्द जीवनदायक है कछू मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन भौं अँसुवानि लै बरसौ।।

सुजान कितनी ही निष्ठुर सही, अन्ततः वह है तो घनानन्द की ही। वह कब तक दूसरे प्रेमियों के पास रहेगी। अन्त में उसे पता चल ही जायेगा कि कौन दिल से प्रेम करता है और कौन बहकाता है। इसलिये अन्त में वह घनानन्द के पास ही आयेगी। वह कब तक रूठी रहेगी, रूठकर ज्यादा दिन रह भी नहीं सकती। इसलिये वह सुजान का अहित नहीं चाहता। वह जिस भी हाल में रहे, प्रसन्न रहे यही घनानन्द की कामना है – वह उसका अनिष्ट सोच भी नहीं सकता। जिस प्रकार गोपियाँ कृष्ण का अनिष्ट नहीं चाहतीं उसी प्रकार घनानन्द भी सुजान को बुरा–भला नहीं कहता। सुजान जहाँ भी रहे–घनानन्द सही समझता है कि वह उसके पास है, सुजान उसे सुख दे या दुःख वह उसकी मंगल–कामना करता है – यही चाहता है कि वह निरन्तर प्रसन्न रहे – यही उसकी कामना – यही उसका आशीष है।

1. *जहाँ तब जैसें तहाँ तब तैसें नीकै रहौ,*
   सब विधि प्रान–प्यारे हित आना बाना हौ।
2. *नित नीके रहौ तुम्हैं चाड़ कहा पै असीस हमारियै लीजियै जू।*
3. *घनानन्द प्रान चितौनि हमारी हमैं दुःख बान कसीसति है।*
   नित नीके रहौं हित–मूरति जू मनसा दिन रात असीसति हौं।

घनानन्द स्वयं सुजान को भले ही निष्ठुर कहे, लेकिन वह यह सहन नहीं कर सकता कि कोई दूसरा भला–बुरा कहे। वह यह समझता है कि दोनों के वैषम्य में सुजान का कोई दोष नहीं, दोष है तो घनानन्द के दुर्भाग्य का। यदि उसका भाग्य ही खोटा नहीं होता तो वह सुजान से प्रेम नहीं करता? या सुजान ही प्रेम करके उससे मुख क्यों मोड़ती? यह तो ललाट का लेख है। जिससे उसे कष्ट भोगना पड़ रहा है। यदि दिन–रात का चैन नहीं है तो इसके लिए सुजान उत्तरदायी है – उसे किसी भी प्रकार का दोष नहीं दिया जा सकता। दोष है तो केवल घनानन्द के भाग्य दुर्भाग्य का –

घनआनन्द जान न दोष तुम्हैं गुन भाव तैं जौ गुन गावते जू।
कहियै सु कहा अब मौन भली नहीं खोवते जो हमें पावते जू।।

घनानन्द अपनी सुजान से इतना प्रेम करता है कि अपने प्राणों तक को न्यौछावर कर देता है। उससे प्रेम करता है, उसके लिए कष्ट सहता है, उसकी प्रतीक्षा करता है, स्वागत की तैयारी करता है, पलकों के पाँवड़े बिछाता है, सन्देश भेजता है, सुजान के न आने पर अपने भाग्य को ही दोष देता है। कभी उसी के द्वारे पड़ा रहना चाहता है और कभी अपने प्राणों का दान देना चाहता है। यदि सुजान प्राण–दान चाहती है तो घनानन्द मन–प्राण से स्वीकार कर लेता है और अपने प्राणों की भेंट सुजान को समर्पित कर देता है –

अब घनआनन्द सुजान प्रान दान भेटौं,

विधि बुधि आगर पै जायत वहै धरी।

5.4 कठिन शब्द

1. अनन्यता
2. अभिसार
3. पौरूष
4. शतांश
5. अस्तित्व
6. निष्काम
7. परिपक्वता
8. प्रगाढ़ता

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.5.1 दीर्घ उत्तरापेक्षी

1. घनानन्द की प्रेम व्यंजना पर प्रकाश डालिए ।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. घनानन्द के काव्य में व्यक्त शृंगार की दोनों अवस्थाओं संयोग तथा वियोग का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

5.5.2 लघु उत्तरापेक्षी

1. घनानन्द के काव्य में स्मृतिजनित वेदना का चित्रण हुआ है स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. घनानन्द के वियोग वर्णन की समीक्षा कीजिए ।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3. घनानन्द के संयोग वर्णन की समीक्षा कीजिए ।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. घनानन्द की काव्य कला – विजयपाल सिंह
3. घनानन्द – डॉ. गणेश दत्त सारस्वत
4. घनानन्द काव्यदर्शन – डॉ. सहदेव वर्मा
5. घनानन्द संवेदना और शिल्प – राजबुद्धिराजा

_____

घनानन्द का शृंगार वर्णन

6.0 रुपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 घनानन्द का शृंगार वर्णन

6.3.1 गुण कथन

6.3.2 अभिलाषा

6.3.3 स्मृति

6.3.4 प्रलाप

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्द

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– घनानन्द के काव्य में अभिव्यक्त शृंगार वर्णन को समझ पाएगें।

– घनानन्द के काव्य में व्यक्त शृंगार की दोनों अवस्थाएँ संयोग तथा वियोग को जान पाएंगे।

6.2 प्रस्तावना

समस्त आचार्यों न शृंगार को प्रमुख मान कर इसका रस राजत्व स्वीकार किया है। मानव हृदय की भावना के मूल में प्रेम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेम की यह भावना पशु–पक्षियों में भी पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होती है। अखिल विश्व में प्रेम तत्व की सत्ता भासित हो रही है। इस सृष्टि का विकास इसी तत्त्व का परिणाम है। इसी के मूल रति नामक भाव से शृंगार की उत्पत्ति होती है। पं0 राम दहिन मिश्र ने 'काव्य–दर्पण' में भरत आदि आचार्यों के मत को इस प्रकार उद्धृत किया है – नव रसों में शृंगार रस की प्रधानता है। शृंगार रस ऐसा महत्वपूर्ण रस है जो मानव–जीवन की सम्पूर्ण परिस्थितियों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। जबकि अन्य रसों में यह स्थायित्व नहीं है।

6.3 घनानन्द का शृंगार वर्णन

कालिदास से लेकर अब तक प्रायः सभी कवियों ने शृंगार रस का आधार नारी को ही माना है। वीरगाथा काल तथा भक्तिकाल में भी यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती रही। रीतिकाल में तो यह धारा अपने पूर्ण विकसित रूप में दृष्टिगोचर होती है। इतना अवश्य है कि भक्तिकाल में शृंगार को आध्यात्मिकता के आवरण में आवृत कर दिया गया, किन्तु कृष्ण–काव्य में वह प्रायः पूर्ण रूप से लौकिक पक्ष का समर्थक रहा, बाद में तो अत्यन्त अश्लीलता एवं कामुकतापूर्ण चित्रों पर भी बलात् भक्ति का आरोप करने का असफल प्रयास किया गया, किन्तु यह सब कुछ आश्रयदाताओं की कुत्सित मनोवृत्ति को तृप्त करने के लिए ही किया गया था। किन्तु घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि कुछ स्वतन्त्रचेता कवियों ने अपने–आपको इस असंयत प्रवाह से रोकने का प्रयत्न किया। यह सर्वमान्य है कि घनानन्द वियोगी थे। उन्होंने हिन्दी–साहित्य को अनेक अनूठी रचनाएँ प्रदान कीं। उनकी रचनाओं में शृंगार की धारा स्पष्ट गोचर होती है, किन्तु इन रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है, शृंगार रस की विश्वपरक भावभूमि को अपने हृदय की सच्ची टीस से अभिमण्डित करना। यद्यपि वह टीस सुजान पर अनुरक्ति का कारण है। सुजान के प्रति घनानन्द का प्रारम्भिक मांसल अनुराग भी बाद में वासना रहित हो राधा के प्रति पद्यमय रूप में निखर उठा। उनके इन रूपों में सौम्य तथा भव्य दोनों रूपों को सरलता से देखा जा सकता है। संयोग, वियोग की बाह्य एवं आन्तरिक दशाओं का सूक्ष्म एवं मार्मिक वर्णन उनकी रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है। अस्थिचरममय देह के विकार को विशुद्धता व पावनता शरीरी–धर्म के रूपों में स्थित किया है और जहाँ बन पड़ा है वहां आध्यात्मिक स्तर व भक्तिभावना से भी मण्डित किया है। यही इनके शृंगार की सबसे बड़ी विशेषता है।

शृंगार का स्थायी भाव 'रति' है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से शृंगार जीवन का आधे से भी अधिक पक्ष है। हम पहले ही कह चुके हैं कि प्रेम ही मानव हृदय की मूल भावना है, वही शृंगार रस का मूलाधार है। संस्कृति का विकास इसी प्रेम का प्रतिफलन है। नायक नायिका ही इस रस के अवलम्बन हैं। यह रस मानव के अंग–प्रत्यंग में निहित है। निस्सन्देह प्रेम का साम्राज्य असीम है। सूरदास ने प्रेम के महत्व का प्रतिपादन इन शब्दों में किया है :–

प्रेम प्रेम तें होई प्रेम में पार ही पइए,
प्रेम बंध्यों संसार प्रेम परमारथ लहिये।

एकै निश्चय प्रेम की जीवन मुक्ति रसाल,
सांचो निश्चय प्रेम की जहिरै मिले गोपाल।।

न केवल हिन्दी साहित्य में वरन् विश्व–साहित्य में भी प्रेम का सर्वोत्कृष्ट स्थान है जो शृंगार का मूल है। शृंगार भावना की चरम सीमा प्राकृत एवं अपभ्रंश के मुक्तकों में पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। इसका कारण वाममार्गीय प्रभाव प्रतीत होता है।

हिन्दी में शृंगार वर्णन का प्रवेश जयदेव के गीत–गोविन्द से माना जा सकता है। गीत गोविन्द में स्थान–स्थान पर असंयत तत्त्व भी प्रवेश पा गये हैं। जयदेव से सर्वप्रथम प्रेरणा प्राप्त करने वालों में विद्यापति हैं। उन्होंने अपनी पदावली में राधा व कृष्ण के जीवन को सर्वांगीण रूप में न देखकर उनकी विलासमय लीलाओं को प्रेममय रूप देने का प्रयत्न किया है। यद्यपि विलासता की गन्ध उनमें भी झांकने लगती है किन्तु उस समय की भक्ति का रूप भी अनेक धर्माचार्यों के द्वारा इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया था जहाँ विशुद्ध शृंगार पर भी भक्ति का आरोप कर ही लिया जाता था।

रीतिकालीन काव्य में शृंगार भावना की भक्ति–मण्डित भव्यता के स्थान पर स्पष्ट वासनात्मक रूप दिखाई देता है। प्राकृत की 'गाथा सप्तशती', 'आर्या सप्तशती' आदि से शृंगार की नग्न भावना हिन्दी में आई। विद्यापति पर भी इनका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। रीतिकालीन कृष्ण व राधा मात्र सामान्य नायक–नायिका रह गये। गोपियों का स्थान अनेक नायिकाओं ने ले लिया और वृन्दावन की कुंज गलियाँ महलों में आ बिराजीं, जहाँ कवि स्वयं ही अपनी सत्ता को खो बैठे और राज्याश्रित होने के कारण बालकृष्ण को जगाने के स्थान पर वासना को जगा कर ही यश तथा धन अर्जित करने लगे। इन कवियों में आचार्य बनने का चाव भी उत्तरोत्तर बढ़ रहा था अथवा कहना चाहिये आचार्य ही कवि बनने के विशेष प्रयासी रहे। परिणाम यह हुआ कि रीतिकालीन कविता इतनी अलंकार–युक्त हो गई कि उस भार को न सम्भाल सकी और संस्कृत काव्य–शास्त्र के लक्षण–ग्रन्थ एवं सतसई आदि को आधार मानकर यह काव्य–धारा प्रवाहित होती रही। इस काव्य में अनेक अश्लील चित्र निर्मित किये गये। प्रजा–रक्षक राजा–महाराजा, कमसिन कामिनियों के केशपाशों को सुलझाते हुए स्वयं उनमें उलझे रहे। आन्तरिक मनोवृत्तियों का प्रायः परित्याग कर बाह्य मनोवृत्तियों का ही चित्रण प्रधान हो गया। इस युग की शृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर विलास की रसिकता तथा सूक्ष्म आन्तरिकता की अपेक्षा स्थूल शारीरिकता का प्राधान्य है। इस घोर शृंगारिक वातावरण में भी कतिपय कवियों ने अपने व्यक्तित्व को इस धारा में नहीं बहाया और निराश्रित होकर भी मथुरा वृन्दावन के सुरम्य सुरभित वातावरण में बैठकर आप–बीती आन्तरिक मनोदशा का हृदय–बेधक चित्रण किया है। इस दृष्टि से घनानन्द का स्वर रीतिकाल के कवियों से भिन्न है। प्रेमी कवियों के ये मुकुटमणि हैं।

घनानन्द ने शृंगार के दोनों पक्षों (संयोग तथा वियोग) की बाह्य एवं आन्तरिक मनोवृत्तियों का सूक्ष्म एवं हृदयग्राही वर्णन किया है। कृष्ण–राधा तथा सखियों को घनानन्द ने अपने काव्य का आलम्बन व प्रमुख पात्र बनाया। 'सुजान' शब्द को कहीं कृष्ण तो कहीं राधा के सम्बोधन में प्रयोग किया गया है। यह सकारण है क्योंकि घनानन्द का तन–मन, शरीर–धर्म अस्थि चरममय सुजान के प्रति आसक्त था और जब वे रंगीले के दरबार में अपमानित होकर

इस प्रेम को पाने में असफल हुए तो उसी भौतिक शरीर को जो हृदय में पहले ही समा चुका था काव्य का चोला पहनाकर मूर्त रूप दे दिया, उन सुन्दर सुखद स्मृतियों को जिनकी रूप–लिप्सा में मन स्वयं को विस्मृत कर विकल होकर रोता तड़पता है। उसी हृदयबेधी तड़पन को वृन्दावन की कुंज–गलियों में घूम–घूम कर घनानन्द ने ऊँचे स्वर में गाया। वही उनका संयोगी तथा वियोगी काव्य है। उसी नाम को उन्होंने प्रभु मानकर आह्वन किया।

वियोगी कवि घनानन्द ने पहले संयोग द्वारा अपने काव्य में मिलन व मान का वर्णन करके रंगीले तथा उसके दरबारियों को अपनी ओर आकृष्ट किया। पहले ये रसिक मुंशी थे। अतः उस रसिक ने अपने हृदय–कपाट कृष्ण के मन्दिर में आकर खोल दिये और सारा रस उसी के चरणों में उडेल दिया। यह माना कि ये कृष्ण रीति–युग के कृष्ण हैं। भोगी विलासी और घोर–शृंगारी। यह वर्णन इनका संयोग के अर्न्तगत है। संयोग शृंगार में इन्होंने संयोग को उद्दीप्त करने के लिए प्रकृति को उद्दीपन–रूप में ग्रहण किया है।

घनानन्द के प्रेम में रूप–लिप्सा का योग तो है, परन्तु साहचर्य का उतना व्यापक वर्णन जितना सूरदास के काव्य का है इनमें नहीं मिलता। साथ ही इन्होंने कृष्ण की लीलाओं को उतना स्थान नहीं दिया जितना सूर ने। यौवनकालीन क्रीड़ाओं को भी इन्होंने महत्व नहीं दिया है। हाँ इन्होंने कृष्ण की रूप–माधुरी का वर्णन किया है और उसमें वैसी ही मार्मिकता, तन्मयता तथा तल्लीनता है जैसा अन्य उत्कृष्ट कृष्ण–भक्त कवियों में। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पद्य देखिये :–

मोर चन्द्रिका सिर धरैगो गुंज की माल।

धातु चित्र करि पीतपट मोहन मदन गुपाल।।

इसी प्रकार राधा के रूप–सौन्दर्य का वर्णन किया है। घनानन्द की गोपियाँ कृष्ण की इस रूप–लिप्सा पर मोहित हैं। वे मुरली के पंचम स्वर को सुनते ही फड़क उठती हैं। राधा की चारुतम रूप माधुरी भी कृष्ण को अपनी ओर आकृष्ट करती है और राधा कृष्ण के प्रति नैन–सैन चलाती है। राधा के रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है :–

लाजनि लपेटि चितवनि भेद भाय भरी,

लसलित ललित लोल चख तिरछीन मै।

छवि की सदन गोरो बदन रुचिर भाल,

रस निचुरत मीठी मधु मुस्कयानि में।

दसन दमकि फैलि हिये मोती लाल होति;

पियसों लड़कि प्रेम पगी बतरानि में।

आनन्द की निधि जगमगाती छबीली लाल,

अंग न अनंग–रंग दुरी मुरजानि में।

सूर की भांति घनानन्द भी किसी प्रकार अपने कृष्ण और राधा के मुंह पर ताला नहीं लगाते हैं; वरन् वे भी उन दिनों की बात को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हैं। गोपी कृष्ण से कहती है :–

'छैल नये नित रोकत' गैल–सुफैलत कापै अरैल भये हो।

लै लकुटि हँसि नैन नचावत बैन रचावत मैन–तए हो।

लाल अंचै बिन काज खगो तिनहि सों शैगो जिन रंग रए हो।

ऐंड़ सबै निकसेगी अबै घन–आनन्द आनिकहा अनए हो।

यहाँ सूर की ही भाँति व्यंजनात्मकता व सजीवता है। घनानन्द के कृष्ण भी चुप होने वाले नहीं हैं। वे गोपी से स्पष्ट कहते हैं कि तू हमारी अकड़, चाल आदि का क्या ताना मारती है। तुझे अपने विशाल नेत्रों पर गर्व है, परकृष्ण बिना कर लिये नहीं जाने देगा। जो पहले बचकर निकल गई, सो निकल गई। पर अब अछूती नहीं जा सकती :–

हैं उन्नए सुनए न कछु उघटैकत ऐंड़ अमैंड अयानी।

बैन बड़े–बड़े नैनन के बल बोलती क्यों हो इती इतरानी।

दान दिये बिना जान न पाई है आई जो चलि खोरि बिरानी।

आगे अछूती गई सु गई घन–आनन्द आज भई मनमानी।

घनानन्द के प्रेम में हृदय की आन्तरिक भावना है। उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता या चातुरी का प्रदर्शन नहीं है। उसमें वासनात्मक प्रकृति की झलक शनैः शनैः लुप्त हो जाती है। घनानन्द ने अपने मार्ग की व्याख्या स्वयं ही की है :–

अति सूघो सनेह को मारग है, जहां नेक सयानप बांक नहीं।

तहां सांचे चले तजिं आपुनपों झझकें कपटी जै निसाँक नहीं।

घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहां एक ते दूसरों आंक नहीं।

तुम कौन छौ पाटि पढ़े हाँ कहौ मन लैहू पै देहु छंटाक नहीं।

इस प्रकार की घोषणा रीतिकालीन कवियों के लिये स्पष्ट ही एक चेतावनी है। प्रेम का मार्ग तो सर्वथा सरल है यह तो हृदय का हृदय से सीधा सम्बन्ध है। इसमें किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं।

घनानन्द के श्रृंगार में चाहे वह संयोग हो या वियोग उनका ध्यान विशेष रूप से भाव–गाम्भीर्य की ओर रहा है और यही कवि की सफलता का रहस्य है। श्रृंगार भावना का चित्रण करते हुए घनानन्द ने नायक–नायिका

की मनोदशा का ही विशेष रूप से ध्यान रखा है। संयोग श्रृंगार में भी उसका विवरण उतना प्रस्तुत नहीं किया जितना हार्दिक भावनाओं का।

वस्तुतः वियोग श्रृंगार के बिना न तो संयोग का पूर्ण रूप से आस्वाद प्राप्त होता है और न उनके मूल्यों का अंकन ही किया जा सकता है। रति की आध्यात्मिक परिणति वियोग श्रृंगार द्वारा ही सम्भव है। विरह काव्य की कसौटी है। विरह द्वारा मन शुद्ध हो जाता है। उसमें से शारीरिक वासनात्मक दुर्गन्ध दूर हो जाती है। यह भी कहा जा सकता है कि इससे स्वार्थ भावना निर्मूल हो जाती है। वास्तव में विरह ही जीवन है और विरह ही प्रेम की जागृत अवस्था है। वियोगी कवि की भावना हृदय से प्रकट हो प्रपात की भाँति प्रवाहित होने लगती है और काव्य का रूप धारण कर पाठक के हृदय को मथ डालती है। विरह की कोई एक ही तो दशा नहीं। न जाने कब प्रेमी हृदय प्रेयसी को पुकार उठे। वे बातें जो प्रतिपल हृदय में वास करती हैं जिन्हें प्रकट करने का अवसर दिन में अर्थात् जागृतावस्था में नहीं मिलता वहीं स्वप्न में चल–चित्रवत दृष्टिगत होने लगती हैं और दबी भावनाएँ एक–एक कर साकार हो नाच उठती हैं। सुप्तावस्था में अन्तर्मन की भावना सजीव हो जाती है। मानसिक भावना का एक सरस चित्रण देखिये :–

जगि सोवनि में जगियै रहै चाह वहै वरराय उठै रतियां,

भरि अंक निसंक ह्वै भेंटन की अभिलाष अनेक भरी छतियां।

मनतै मुख लो नित फैर बड़ौ कित ब्यौरि सकों हित की बतियां,

घन–आनन्द जीवन प्राण लखौ सुलिखी किही भाँति परै पतियां।

जब प्रेमी अपने प्रेम में रंग कर सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है तो प्रेमिका (राधा) प्रेमी (कृष्ण) को उपालम्भ देती है कि मुझे क्यों मझधार में डूबाने की ठान ली। अब निष्ठुर क्यों बन गये। मैंने तो विश्वास किया तुम विश्वासघात कर बैठे :–

पहले अपनाय सुजान सनेह सों,

क्यों अब नेह तो तोरिये जू।

संयोग के सुखद क्षणों की स्मृति से वियोगिनी के हृदय में पीड़ा का संचार होता है। अपने प्रियतम की छवि की स्मृति में प्रियतमा व्यथित होती है। वह अपने रूपपिपासु नेत्रों को कृष्ण के दर्शनों से तृप्त करने को व्याकुल है। उसे कृष्ण की मुरली बजाने की मुद्रा, उनकी मन्द–मन्द मुस्कराहट, मीठी–मीठी उक्तियाँ सुनने की अभिलाषा जागृत होती है यह विरह–ताप दर्शन से ही मिट सकता है :–

छवि की सदन सौदमण्डित बदन चन्द,

तृसित चखन लाख कबधौ दिखाय हौ।

चटकीलो भेस करै मटकीली भाँति सौं ही,

मुरली अधर धरै लटकत आये हौ।

लोचन दुराय कछु मृदु मुस्काय नेह,

भीनी बतियानी लड़काय बतराय हौ।

बिरह जरत जिय जानि आनि प्रान प्यारे,

कृपानिधि आनन्द को घन बरसाय हौ।

प्रिय के गुणों का स्मरण वियोगिनी के लिये वियोगावस्था में दृढ़ संबल होता है। उन गुणों के स्मरण से ही वह अपने प्रेम को दृढ़ता देती है। उसके आकर्षण का कारण यही तो था :–

रावरैं रूप की रीति अनूप,

नयो–नयो लागत ज्यों–ज्यों निहारिये।

विरहिणी तड़प रही है अपने प्रिय के लिये। किन्तु इस तड़पन में भी प्रिय के लिये सुख तथा आनन्द की ही कामना रहती है। प्रेम की इसी त्याग–भावना का चित्रण देखिये :–

घन आनन्द जीवन प्रान सुजान, तिहारी पै वातनि लीजियै जू।

निरतनीकै रहौ चाटुकाई, असीस हमारियो लीजियै जू।।

घनानन्द ने वियोगिनी के नेत्रों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। वियोग के कारण वे वैसे ऊबे रहते हैं फिर प्रियतम के दर्शनों की लालसा से उत्कण्ठित, अतः नेत्रों में जलन रहती है। अनेक प्रयत्न करने पर भी सुधार की सम्भावना नहीं। लगता है इन्हें भस्मक रोग ने ग्रस्त कर लिया है। इस कारण प्रिय के वियोग में नेत्र लंघन कर रहे हैं :–

घेर घबरानी उबरानी ही रहति घन,

आनन्द अराति राती साधनि भरति हैं।

जीवन अधार जनरूप के अधार बिन,

व्याकुल विकार भरी खरी सुजरति हैं।

संयोगावस्था में ही ये नेत्र आकर्षक सौन्दर्य को देखने से आह्लादित होते थे, किन्तु अब इनकी अवस्था विपरीत हो गई है। विकसित कमलों को देखने से इनमें उदासी छा जाती है, शीतल मन्द समीर का झोंका इन नेत्रों

के लिए दाहक हो जाता है। प्रिय के रूप के गुण के अभाव में वेदना की गाँठ पड़ जाती है। इस अवस्था को सुलझाने का कोई उपाय ही दृष्टिगोचर नहीं होता :–

विकच नलिन लखैं सकुच मलिन होति,

ऐसी कुछ आंखिन अनौखी उरझनी हैं।

सौरभ समीर आये बहकि बहकि जाये,

राग भरे हिय में विराग मुरझनि हैं।

यों तो रीतिकालीन अन्य अनेक कवियों ने संयोग–वियोग के अनेक चित्रण किये हैं, किन्तु वियोगिनी की विरहाकुल दशा से महाकवि घनानन्द जितने परिचित थे वैसी अनुभूति अन्य किसी कवि में दृष्टिगोचर नहीं होती। वियोग की दुर्दमनीय दशा में निष्प्राण होकर जीना तथा बिना मृत्यु ही मरना पड़ता है। सोते–जागते चैन नहीं पड़ता। रोना भी यहाँ लाभदायक प्रतीत नहीं होता। विरहिणी का यह अगाध विश्वास ही दृढ़ सम्बल है कि उसका प्रियतम उसके हृदय में विद्यमान है। इस दशा का अन्य कोई भी अनुमान नहीं कर सकता :–

अन्तर उदेग दाह आंखिन प्रवाह आँसू,

देखि अटपटी चाह भीजनि दहनि है।

सोइबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोइबो है,

खोए खोए आप ही में चेटकी लहनि है,

जान प्यार प्राननि बसत है आनन्द घन,

विरह विषम दसा मूक लौं कहनि है।

विरही की दशा चेतन–अचेतन का भेद करने में भी असमर्थ हो जाती है क्योंकि उसके सामने इस दशा में केवल येन केन प्रकारेन प्रियतम के पास अपनी दयनीय दशा का भान कराने की ही चाह मन में पड़ी रहती है। प्राचीन काल से ही यह परम्परा चली आई है। कालिदास ने यक्ष को मेघ का सन्देशवाहक बना कर भेजा। जायसी में भी इस भावना के दर्शन होते हैं :–

मकु तेहि मारग उड़ि परे कन्त धरै जेहि पाँय।

नागमती ने अपने विरहोद्‌गारों को भौंरें तथा कौवे के द्वारा ही प्रिय के समीप भेजा है।

पिउ सों कहत सन्देसड़ा है भौंरा ! हे काग !

उहि धनि विरहै जरि मुई तेहिक धुआ हम लागि।।

सूर तथा नन्ददास ने भी इसी प्रकार के साधनों से काम लिया है। इन बातों में चाहे ऐतिहासिक तथ्य भले ही न हों परन्तु यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि विरहिणी अपने प्रेम की भावना को प्रियतम तक पहुंचाने का उपक्रम अवश्य करना चाहती है। घनानन्द की विरहिणी भी इस प्रकार के अनेक संदेशों को अन्य साधनों से प्रेषित करती है। वह बादल को परोपकारी मानती हुई अपने आँसुओं को प्रियतम के आँगन में बरसने को कहती है जिससे उसे विरहिणी के प्रेम का परिचय मिल सके :–

परकाजहि देह को धारे फिरौं वरजन्य जथारथ ह्वै बरसो,
निधि नीर सुधा के समान करौ सबहि विधि सज्जनता सरसो।
घन आनन्द जीवनदायक हो कछु मेरीयौ पीर हिये परसो,
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आंगन मां अँसुवान को ले बरसो।

इसी प्रकार विरहिणी पवन से भी अपना सन्देश कहती है :–

ऐरे बीर पौन तैरो सबै और गौ, बारी,
तो सौ और कौन, मनैं ढरकोहीं बानि दे।
जगत के प्राण औछे बड़े तौं समान धन।
आनन्द निधान सुखदान अखिंयानि दै।
जान उजियारे गुनभारे अति मोहि प्यारे।
अब ह्वै अमोहि बैठे पीठि पहिचानि दै।
विरह बिथा की मूरि आंखिन में राखौ पूरि,
धूरि तिन पायन की हाहा नैकुं आनि दै।

आचार्यों ने विरह की अनेक दशायें मानी हैं। जैसे गुण–कथन, अभिलाषा, स्मृति, मूर्च्छा, उन्माद, प्रलाप, मृत्यु आदि। घनानन्द की विशेषता यह है कि उन्होंने इन सभी दशाओं का चित्रण गम्भीरता एवं भावुकता से किया है और अपनी सच्ची अनुभूति से काव्यों को अलंकृत किया है। इन अवस्थाओं के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं :–

6.3.1 गुण कथन – प्रियतम के गुणों के कथन तथा उनके स्मरण से विरहिणी को एक आधार प्राप्त होता है। प्रथम अवस्था में प्रेम का कारण गुणों का ही आकर्षण होता है :–

छवि को सदन मोद मण्डित बदन–चन्द,
तृसित चलन लाल कब धौं दिखाय हो।

6.3.2 अभिलाषा – वियोगिनी के हृदय से असंख्य अभिलाषाएँ जागृत होती हैं जिनमें प्रियतम के दर्शनों की लालसा सर्वाधिक बलवती है। उसकी वाणी प्रियतम का ही नाम रटती रहती है। इसी कारण प्रिय के दर्शनों की अभिलाषा हृदय में विद्यमान है :–

दृग नीर सों दीठही देहुँ बहाव पै वामुख की अभिलाख रहि।

रसना विष बोरि गिराही गसैं यह नाम सुधा निधि भाखि रही।।

6.3.3 स्मृति – स्मृति की भावना से तो घनानन्द का समस्त काव्य ही ओत–प्रोत है। विरहिणी स्मृति के कारण ही रुदन करती है :–

हित भूलि न आवत है सुधि क्यों हूं,

सु यों हूं हमें सुधि कीजत है।

मूर्च्छा तथा उन्माद – यह दशा वियोग की चरम अवस्था है।

घन आनन्द जान तुम्हें बिनयों गति पंगु भई मति घावति ना,

सुधि देन कहीं सुधि लेन चही, सुधि पाये बिना, सुधि आवति ना।

विरह–वेदना के आधिक्य से ही उन्माद की अवस्था उत्पन्न हो जाती है :–

खोय दई बुधि सोय गई सुधि रोय हँसै उन्माद जग्यौ है।

मौन गहै चकि चाकि रहै, चलि बात कहै, तनदाह दयौ है।

जानि परै नहीं जान तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आनि खग्यो है।

सोचनि ही पचिये घनआनन्द हैत पग्यौ किंधौ प्रेत पग्यौ है।।

6.3.4 प्रलाप –

विरह के कारण अत्यधिक व्याकुलता से विरहिणी प्रलाप करने लगती है :–

अन्तर हौ किंधौं अन्त रहौं दृग फेरि फिरौं कि अभागिन भीरौं।

आगिजरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं, हिय का विधि धीरौं।।

ऐसी निराश दशा में विरहिणी मृत्यु की कामना करती है। किन्तु मृत्यु भी तो उसकी उपेक्षा करती है :–

बनी है कठिन महा मोहि घन आनन्द यौं।

मीचौ मरि गई आसरौ न जिन ढूकिये।।

6.4 सारांश

श्री परशुराम चतुर्वेदी के कथनानुसार– 'घनानन्द ने विरह के महत्व को भली–भाँति समझाया। इसलिये प्रेमी के विरह–दग्ध हृदय तथा उसके सूक्ष्मतिसूक्ष्म एवं अनिवर्चनीय मानसिक व्यापारों का जैसा सुन्दर वर्णन अपनी कविता द्वारा उन्होंने किया है वैसा बहुत कम कवि कर पाये हैं। घनानन्द की यह विशेषता है कि प्रेमी की दशा व उसकी परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते समय वह बहुत से अन्य कवियों की भाँति केवल शब्दाडम्बर का आश्रय नहीं लेते और न अन्योक्तियों का गाढ़ा रस चढ़ाकर किसी कोमल भाव को भद्दा बनाते हैं। उनके विरह–वर्णन में एक आश्रित का अनुरोध एवं मर्यादित आत्मनिवेदन है जो अपनी स्वाभाविकता के कारण सुनने वाले का मन बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। घनानन्द के काव्य में सुजान शब्द मात्र मौलिकता का परिचायक नहीं है।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – घनानन्द ने अपनी कविता में सुजान शब्द का बराबर प्रयोग किया है। इसे श्रृंगार पक्ष में नायक के लिये तथा भाव पक्ष में कृष्ण के लिये मानना चाहिए। कृष्ण और नायक का एकीकरण समय की मांग थी जिसे उन्होंने भली प्रकार पूरा किया। सच तो यह है कि घनानन्द का काव्य उनके हृदय की सच्ची अनुभूति है और अपने भावों को मूर्तरूप प्रदान करके वे समस्त रीतिकालीन कवियों के सिरमौर बन गये हैं।

घनानन्द के इस श्रृंगार रस के प्रतिपादन का रहस्य है अपनी गहन अनुभूति को काव्य–रूप में सरसता से परिणत करना। उनका कवि विरह–अग्नि की ज्वाला में तप कर कुन्दन बन चमक उठा है। कवि के हृदय की टीस में भगवत् प्रेम की निष्ठा भी है और नायक के प्रति शुभकामना भी। रति–भाव में कामुकता का स्थान विरह ने ले लिया है। घनानन्द का श्रृंगार वस्तुतः हिन्दी साहित्य में महान् विरही कवियों में अपना प्रमुख स्थान रखता है – यह निर्विवाद है।

6.5 कठिन शब्द

1.	परिस्थिति	2.	स्वाभाविकता
3.	अनुभूति	4.	व्याकुलता
5.	प्रलाप	6.	स्मृति
7.	अभिलाषा	8.	विरह

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. घनानन्द के श्रृंगार वर्णन पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

2. घनानन्द के काव्य में व्यक्त संयोग वर्णन का आकलन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

3. घनानन्द के काव्य में व्यक्त वियोग वर्णन का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. घनानन्द की काव्य कला – विजयपाल सिंह
3. घनानन्द – डॉ. गणेश दत्त सारस्वत
4. घनानन्द काव्यदर्शन – डॉ. सहदेव वर्मा
5. घनानन्द संवेदना और शिल्प – राजबुद्धिराजा

.....

घनानन्द की काव्य कला

7.0 रुपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 घनानन्द की काव्य कला

7.3.1 भाषा

7.3.2 अर्थ गाम्भीर्य

7.3.3 छन्द विधान

7.4 सारांश

7.5 कठिन शब्द

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– घनानन्द की काव्य कला के बारे में जानेंगे।

– घनानन्द के काव्य में भाषा का सुन्दर प्रत्यक्षीकरण हुआ है, जानेंगे।

– घनानन्द के काव्य में व्यक्त शैली विज्ञान को जानेंगे।

7.2 प्रस्तावना

रीतियुगीन स्वच्छन्द काव्य परम्परा के अग्रण्य कवि घनानन्द के काव्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति–दोनों स्तरों पर लीक से हटकर चलने की परम्परा स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उनकी कविता उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है। उनका कथन – 'लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहि तो मेरे कबित बनावत' उनके सम्पूर्ण काव्य पर घटित होता है। कविता हृदय की स्वाभाविक भावनाओं के उच्छलन की सहजाभिव्यक्ति है। उसे सहजरूप में कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति करने में ही कलाकार की सफलता है। घनानन्द ने जैसा देखा, अनुभव किया – उसे उसी रूप में अभिव्यक्त कर दिया।

7.3 घनानन्द की काव्य कला

7.3.1 भाषा

साहित्य प्रतिभा–विशिष्ट और परिष्कृत आत्मानुभूति का सरस प्रत्यक्षीकरण होता है। भाषा का सुन्दर आवरण ही इस प्रत्यक्षीकरण को रमणीय रूप प्रदान करता है। भाषा का यह आवरण तभी सुन्दर होगा जबकि उसमें भावानुरूप अभिव्यंजना, सरसता, प्रांजलता, स्पष्टता तथा धारावाहिकता आदि साहित्योपयुक्त गुण होंगे। रीतिकाल ब्रजभाषा के परिमार्जन का युग रहा। इस युग की ब्रजभाषा में कलात्मकता अधिक आ गई थी। भाषा की मार्मिकता, लाक्षणिकता तथा भाव–प्रवणता युग की विशेष देन है। घनानन्द से पूर्व ब्रजभाषा का पूर्णतः विकास हो चुका था। उन्हें विरासत में एक विकसित भाषा प्राप्त थी। अतः उन्होंने पूर्ण साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया। घनानन्द की काव्य भाषा में कालिदास की भाषा की–सी मधुरता तथा माघ जैसी नवीनता पाई जाती है। घनानन्द ने तत्कालीन स्वीकृत काव्यभाषा का अत्यन्त साफ–सुथरा और प्रांजल रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। इनकी भाषा के सम्बन्ध में डॉ0 रामफेर त्रिपाठी का अभिमत है – 'वह साहित्यिक, लाक्षणिक, रसानुकूल, व्याकरणिक व्यवस्थानुकूल, संगीतात्मक, ध्वन्यात्मक, मुहावरे एवं लोकोक्तियों से भरी कोमल, सरस तथा सजीव थी।'

घनानन्द की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। उन्होंने ब्रजभाषा को परिष्कृत करके उसे रमणीय बनाया है। ब्रजभाषा में उनके पूर्व अनेक महारथियों ने रचनाएं की थीं किन्तु घनानन्द जैसा लालित्य, उनकी–सी मधुरता पहले नहीं मिलती। घनानन्द के प्रशस्तिकार 'ब्रजनाथ' ने उनके काव्य का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए लिखा है –

नेही महा ब्रजभाषा–प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कों जानै।
जोग–बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना–भेद–स्वरूप को ठानै।
चाह के रंग मैं भोज्यौ हियो, बिछुरें मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा–प्रबीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कबित्त बखानै।।

ब्रजनाथ ने उक्त कथन में घनानन्द के काव्य की सभी विशेषताओं को समेट लिया है। वे ऐसे 'नहीं' थे जो ब्रजभाषा में पारंगत थे। इसी से सरसता उनके काव्य में आद्यन्त मिलती है। उनका भाषा पर असाधारण अधिकार था।

वे ब्रजभाषा की नाड़ी पहचानते थे। उन्होंने बड़ी सुन्दरता से शब्द प्रयोग किया है। उन्होंने एक–एक शब्द चुन–चुनकर रखा है। उनके शब्द प्रयोग अभीष्ट लक्ष्यापूर्ति में सहायक हैं।

घनानन्द के काव्य में ब्रजभाषा का ठेठ रूप प्रयुक्त हुआ है। ब्रजभाषा के साथ–साथ पंजाबी, अरबी, राजस्थानी, खड़ी बोली तथा संस्कृत के शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है। इसका कारण उनका भाषा–प्रवीण होना है। विभिन्न भाषाओं के शब्द–समूह आ जाने पर भी उनकी भाषा दोषमुक्त है। विभिन्न भाषाओं के शब्द प्रयोग द्वारा उनकी भाषा अत्यन्त समृद्ध है।

घनानन्द की भाषा साहित्यिक होते हुए भी उसमें ब्रजभाषा की ठेठ शब्दावली की प्रचुरता है। ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों में ओटपाय (उपद्रव), आवस (भाप), औंड (गहरा), सल (पता), तेंह (क्रोध), दुहेली (दुःखपूर्ण), आवरी (व्याकुल), न्यार (चारा), सौंज (सामग्री), डेल (ढेला), अगिलाई (अग्निदाह) इत्यादि शब्द उल्लेखनीय हैं। इन ठेठ शब्दों के प्रयोग से कवि की भाषा अत्यन्त समृद्ध हुई है।

ब्रजभाषा के ठेठ रूप के साथ घनानन्द ने नवीन और अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे–ऊक (लुक), गादरौ (शिथिल), अंगेटसौनि (कुंदन का लाल वर्ण), बिरचैं (विमुख होना), हटतार (एकटक देखने की वृत्ति), चाड़ (उत्कंठा), उखिल (अपरिचित), बहीर (सेना की सामग्री), सवादिली (स्वादिष्ट), तबै (तपना), निरौंठी (मस्त) इत्यादि।

भाषा–प्रवीण घनानन्द ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। जैसे – मीन, पंकज, प्राण, विष, कुरंग, मलय, विभाकर आदि। संस्कृत के तत्सम शब्दों की संख्या उनके तद्भव शब्दों से कम है।

घनानन्द मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में मीरमुंशी थे। इस कारण उन्हें अरबी–फारसी साहित्य का गम्भीर ज्ञान था। तत्कालीन दरबार का शाही कामकाज इसी भाषा में होता था। इसी से कवि की भाषा में अरबी–फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जो इस प्रकार हैं – यार, हुस्न, चस्का, दिलदार, मजनूं, हुकम, आशिक, इश्क, बेदरद, कमाने–तीर, दिलपसंद, तलब, सरसाँदा, कहर, दुसाला, इश्कमजाजी, दरदबन्द, दिलराज, जरद, चस्मदा, सैन–कटारी, तकदीर, तकसीर, चिमन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

घनानन्द के शब्द भण्डार से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। उन्होंने भाषा की बारीकियों को समझा है और उसका सम्भल कर प्रयोग किया है। मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में रहने के कारण उनका सम्पर्क अरबी–फारसी और उर्दू के शायरों से रहा है। इन भाषाओं में जो लचक और व्यंजना है उसे कवि ब्रजभाषा में उतारने में सफल हुआ है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त अवधि के शब्दों का प्रयोग भी निम्न सवैये में देखा जा सकता है –

हिम सौ दित के कित को नित ही गस बीच वियोगहि पोई चले।
सु अखैबट बीज लौ कैलि परयो बनमाली कहां कूँ समोई चले।।

इसमें 'पोई', 'समोई' आदि अवधी भाषा के शब्द हैं।

घनानन्द ने भाषा का व्यंजनात्मक प्रयोग अधिक किया है। उनकी भाषा में ध्वन्यात्मकता अधिक है। कवि ने अपनी भाषा को लाक्षणिक बनाने की भी चेष्टा की है। रीतिकाल उक्ति–चमत्कार और वाग्वैदग्ध के लिए प्रसिद्ध है। घनानन्द के उक्ति–चमत्कार और वाग्वैदग्ध का ढंग ऐसा है कि उसमें सहजाकर्षण की प्रवृत्ति है। उनकी अनुभूति घनीभूत होकर अभिव्यक्त होती है। घनानन्द के उक्ति–वैचित्रय की सबसे बड़ी विशेषता है – विरोधाभास के माध्यम से प्रस्तुतिकरण। घनानन्द की उक्तियां अत्यन्त मधुर, रसीली एवं अनूठी हैं, क्योंकि ऐसी उक्तियां प्राचीन कविताओं में बहुत कम दिखाई देती हैं। सूरदास के 'भ्रमरगीत' में उक्ति–वैचित्रय के दर्शन होते हैं, किन्तु घनानन्द तो सूर को भी मात कर गये हैं, क्योंकि उन की उक्तियां सूर से भी अधिक मार्मिक, सरस हैं, विलक्षण हैं जैसे –

1. उत ऊपर पायं लगी मिहंगी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै।

2. घनानन्द जीवन मूल सुजान की कौंधनि हूँ न कहूँ दरसै।

उनमें मुहावरे भी मिलते हैं और लाक्षणिकता भी। मुहावरों के प्रयोग में तो घनानन्द बेजोड़ हैं। इनके मुहावरों में उक्ति सौन्दर्य के साथ–साथ अर्थ गाम्भीर्य भी भरा हुआ है –

क) चातक रे घातक है तू हू कान फोरि लै

ख) आनाकानी दैबो दैया घाय कैसो लौन है।

ग) कारी कूर कोकिला, कहाँ कौ बैर काढ़ति री।

घ) तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला।

7.3.2 अर्थ गाम्भीर्य – घनानन्द की भाषा में कोरा शब्द–वैचित्र्य ही नहीं है, अपितु उसमें अर्थ–गाम्भीर्य भी है और कहीं–कहीं वह बड़े ही विलक्षण भावों अर्थों आदि से भरी हुई दिखाई देती है । इसका मूल कारण यह है कि कवि की बात (कथन) रूपी दुल्हन मौन का घूंघट डालकर इनके हृदयरूपी भवन में छिपी बैठी है और केवल समझदार काव्य–मर्मज्ञ ही उसे समझ पाते हैं ।

उर–मौन के मौन को घूंघट दै दुरि बैठि विराजति बात–बनी।
घनआनंद बूझनि अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान धनी।

क्योंकि इनके शब्दों में जो अर्थ गाम्भीर्य है, वह शब्दों द्वारा पूर्णतया व्यक्त नहीं होता, उसे तो कोई सहृदय ही पहचान पाता है और कवि–हृदय ही उसके मर्म तक पहुंच पाता है। जैसे प्रायः संसार में प्रेमियों के विशेष रूप से विरहियों के दो उपमान प्रसिद्ध हैं। – एक मछली और दूसरा पतंग। इन दोनों को उत्कृष्ट प्रेमी कहा गया है किन्तु घनानन्द कहते हैं कि मेरा प्रेमी हृदय वियोग में रात–दिन अपने प्रिय के लिए तड़पता रहता है और मिलन की आशा में असह्य पीड़ा सहता है। दूसरे पतंग अपने प्रिय के रूप पर मुग्ध होकर अपने को सम्भाल नहीं पाता और दीपशिखा में जलकर भस्म हो जाता है किन्तु मेरा हृदय अपने प्रिय के रूप की अग्नि में निरन्तर तपता रहता है। निम्नलिखित पद में घनानन्द का अर्थ–गाम्भीर्य द्रष्टव्य है –

मरिबौ बिसराम गनै वह तो यह वापुरौ मीत–तज्यौ–तरसै।
वह रुप–छटा न सहारि सकै यह तेज तबै चितबै बरसै।
घनआनन्द कौन औखी दसा, मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरे–मिलै मीन–पतंग दसा कहा मो जिय की गति कौ परसै।

घनानन्द का सम्पूर्ण काव्य ब्रजभाषा में निबद्ध है। ब्रजभाषा की प्रमुख विशेषता उसकी मसृणता तथा कोमल–कान्त पदावली है। कवि ने अपनी भाषा को इस गुण से पूर्णतः समृद्ध किया है। कवित्त और सवैयों की मधुरता का कारण उनकी कोमल वर्ण–योजना है। घनानन्द एक बहुत अच्छे संगीतकार थे। इसी संगीत के कारण वे घर से बेघर हुए तथा अपनी जान सुजान से भी हाथ धो बैठे। संगीतज्ञ होने के कारण वे प्रत्येक वर्ण के प्रयोग और उसके वजन को जानते थे। इसी से उनका काव्य स्वर–लालित्य से पूर्ण है। साधारण कवित्त भी इसी स्वरलालित्य के कारण विशिष्ट हो गए हैं। ब्रजभाषा की मधुर पद–संघटना की दृष्टि से निम्न छन्द दृष्टव्य है –

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, बीरी
तो सो और कौन, मन ढरकौंही बानि दै।
जगत के प्राण, ओछे बड़े सो समान, घन–
आनँद–निधान, सुखदान, दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन–भारे अंत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचानि दै।
बिरह–बिथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिनि पायन की हा हा ! नेकु आनि दै।

संगीत तत्व के संकेतक अनेक शब्द इसमें मिलते हैं। यह पद पूर्णरूपेण वर्ण–संगति तथा लय से युक्त हैं। इसमें विरह–वेदना की सफल अभिव्यक्ति हुई है। घनानन्द की भाषाशक्ति से प्रभावित होकर आचार्य शुक्ल ने कहा है – 'इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशाली ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ है। विशुद्धता के साथ–साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व है।'

घनानन्द की काव्य शैली कहीं भाव–प्रधान, कहीं फारसीयत से युक्त, कहीं चमत्कार–युक्त तथा कहीं प्रतीकात्मक है। वियोग मग्नता में कवि का हृदय भावनाओं की गहराई में डूब जाता है। कवि ने अनेक भावों को एक ही पद्य में प्रस्तुत किया है –

बरसै तरसैं सरसैं अरसैं न कहूँ, दरसैं इहि छाक हुईं।
निरखैं परखैं करखैं हरखैं उपजी अभिलाषनि लाख जईं।
घनानन्द की उनए इन मैं बहुभांतिनि ये उन रंग रईं।
रसमूरति स्यामहिं देखत ही सजनी अखियां रसरासिभईं।।

चमत्कार युक्त भाषा से कवि ने विरह को तीव्रता प्रदान की है।

7.3.3 छन्द विधान

काव्य में छन्दों का प्रयोग काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति में प्रेषणीयता का गुण लाने के लिए किया जाता है। कविता का स्वभाव छन्द में लयमान होना है। रीति–काल में वीरगाथा काल और भक्तिकाल में प्रचलित सभी छन्द प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु कवित और सवैया के प्रति विशेष अनुराग है। कवित्त के प्रयोग के साथ–साथ घनानन्द ने जिन विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है उसमें दोहा, चौपाई, दुर्मिल, छप्पय, निसानी, सुमेरु, पद, लिभंगो और शोभन छन्द मुख्य हैं। घनानन्द के सवैया तो हिन्दी जगत् में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं और उन्हें सवैया छन्द का सरताज कहना सर्वथा समीचीन ज्ञात होता है। सवैया के विविध भेदों में से घनानन्द के काव्य में दुर्मिल, मत्तगयंद, किरीट, अरसात और मुक्तहरा भेद अधिक मिलते हैं। दुर्मिल सवैया जिस में आठ सगण और 24 वर्ण होते हैं उसका उन्होंने बड़ा ही सजीव प्रयोग किया है–

पहिलें घनानन्द सींचि सुजान कहीं बतियां अति प्यार पगी।

(पहिलें/घन आ/नँद सीं/चि सुजा/न कहीं/बतियां/अति प्यार/र पगी)

सगण/सगण सगण सगण सगण सगण सगण

मत्तगयंद सवैया जिसमें सात भगण और अन्त में दो गुरू होते हैं और 23 वर्ण होते हैं इस का बहुत ही सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है –

रैन–दिना घुटिबो करैं प्रान, झरै अखियां दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर में कसकै सखिज्यौं पंसुरीनिमें गांसी।
चौचंद–चार चवाइन के चहुं ओर मचैं बिरचै करि हांसी।
यौ मारिये भरियै कहि क्यों सु परौ जिन कोऊ सनेह की कांसी।।

कवित्तों में मनहरण कवित्त का प्रयोग अधिक हुआ है। इसमें 16 और 15 वर्णों के विराम से प्रत्येक चरण में 32 वर्ण होते हैं और अन्त में गुरू आता है जैसे –

लॉजनि लपेटी चितवनि भेद–भाय–भरी, लासतिललित लोल चख तिरछानिमैं।
छवि को सदन गोरो वदन रूचिरभाल, रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानिमैं।

अलंकार योजना – काव्य में भव्यता और चारूता लाने के लिए अलंकारों का प्रयोग होता है। कविकल्पना की ऊँची उड़ान अलंकारों के माध्यम से ही काव्य में स्फुरित होती है। अलंकार काव्य के शोभाकारक धर्म होते हैं। घनानन्द के काव्य का अलंकार की दृष्टि से विवेचन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि उन्होंने लगभग सभी अलंकारों को प्रयोग किया है। उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग भावों में तीव्रता प्रदान करने के लिए किया गया है। कहीं भी प्रदर्शन के लिए अलंकारों का विनियोग नहीं है। उन्होंने कविता–कामिनी को सजाने–सँवारने के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। उनके काव्य में अलंकार उनकी कलात्मक उच्चता तथा

प्रतिभा के परिचारक बनकर आये हैं। काव्यसृजन में वे कलात्मक श्रेष्ठता के प्रति पूर्ण सजग थे। उन्होंने अपने अभिमत को स्पष्ट करते हुए कहा है –

तीछन–ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यासे, भरे अति पानिप मायल घायल चोप बढ़ावत।
यौं घनआनँद छाबत भावत जान–सजोवन–ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत माहिं तौं मेरे कबित्त बनावत।।

उपर्युक्त छन्द से घनानन्द की काव्यदृष्टि स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने जो कुछ कहना चाहा, वह सायास नहीं कहा, अपितु उनके हृदय की सहज भावाभिव्यक्ति सरल और निश्छल रूप में प्रकट हुई है। काव्य में अलंकार भावों का उत्कर्ष दिखाते हैं और दूसरे वस्तुओं के रूप, गुण और क्रियानुभव को तीव्रता प्रदान करते हैं। अलंकारों में रस और भावानुकूल होने पर ही काव्य में सरसता आती है। अलंकारों के माध्यम से काव्यात्मक सरसता घनानन्द के काव्य में चरमसीमा पर दिखाई देती है। घनानन्द ने शब्दालंकार और अर्थालंकार – दोनों को अपनाया है किन्तु उन्होंने विरोधमूलक और साम्यमूलक अलंकारों का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है।

विरोधाभास घनानन्द का सर्वाधिक प्रिय अलंकार है। उनके काव्य में विरोधाभास का आधिक्य है। जीवन में विरोध की प्रधानता होने से उनके काव्य में विरोधी अप्रस्तुतों की योजना अपेक्षाकृत अधिक हुई है। वास्तव में घनानन्द की कविता वैषम्य में ही साँस लेती, कराहती और गुनगुनाती है। वैषम्य के कारण ही घनानन्द की कविता अलग से पहचानी जाती है। उक्ति वैषम्य उनकी प्रकृति की सहज देन है। डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा के शब्दों में, 'स्पष्ट ही उनके काव्य में विरोध ने जिस आलंकारिक सौन्दर्य की सृष्टि की है, उसका मूल उत्स उनका हृदय, उनके विचार, उनका जीवन है, जो विषमता का कोष था। उनका जीवन विषम परिस्थितियों और मनः स्थितियों का केन्द्र हो गया था, इसलिए अपने प्रेम को बिना बाँकपन के, बिना स्थिति वैषम्य के निदर्शन के और कुछ नहीं तो बिना शब्द विरोध के वे व्यक्त ही नहीं कर पाते थे।' यही कारण है कि विरोधाभास ही उनकी आलंकारिक सौन्दर्य चेतना का केन्द्रबिन्दु हो गया है –

घनानंद जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे इन चातक प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तौ इन थ्यावस हो न सु क्यौं करि यौं अब सो परसैं।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि के नित ही अँखियां उघरी बरसैं।।

घनानन्द के काव्य में विरोधमूलक प्रवृत्ति की बहुलता को देखते हुए आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का अभिमत है, 'विरोधाभास के अधिक प्रयोग की सारी रचना भरी पड़ी है। साहसपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में यह प्रवृत्ति दिखाई न दें, उसे (बेखटके) घनानन्द की कृति से पृथक् किया जा सकता है और

जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे, उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है।

7.4 सारांश

घनानन्द की भावुकता निराली तथा शैली अनोखी थी। प्रत्येक छन्द में विरोधाभास का निदर्शन, रूपकों का सौन्दर्य तथा अन्यान्य अलंकारों द्वारा भाव–भंगिमा को सम्प्रेष्य बना देना घनानन्द के काव्यशिल्प की प्रमुख विशेषता है। अलंकारों का प्रयोग करते समय कवि की दृष्टि भाव–व्यंजना पर अधिक रही है। अलंकारों का वैयक्तिक प्रयोग, भाषा की मार्मिकता और नवीनता, घनानन्द को ब्रज भाषा के श्रेष्ठ शिल्पकारों में अग्रणी कर देता है।

7.5 कठिन शब्द

1.	सौन्दर्य	2.	शिल्पकार
3.	मार्मिकता	4.	नवीनता
5.	अग्रणी	6.	छन्द विधान
7.	अर्थ गाम्भीर्य	8.	स्वच्छन्द
9.	अनुभूति	10.	प्रांजलता

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. घनानन्द की काव्य कला पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. घनानन्द की भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3. घनानन्द के काव्य में व्यक्त छन्द विधान का विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. घनानन्द की काव्य कला – विजयपाल सिंह
3. घनानन्द – डॉ. गणेश दत्त सारस्वत
4. घनानन्द काव्यदर्शन – डॉ. सहदेव वर्मा
5. घनानन्द संवेदना और शिल्प – राजबुद्धिराजा

.....

घनानन्द की भक्ति भावना

8.0 रुपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 घनानन्द की भक्ति भावना

8.3.1 कृष्णभक्ति

8.3.2 राधा भक्ति

8.3.3 ब्रजभूमि

8.3.4 यमुना

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्द

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– घनानन्द की भक्ति स्वरूप को जान पाएंगे।

– घनानन्द कृष्ण प्रेम, तथा राधा प्रेम को समझेंगे।

– घनानन्द के आनन्द प्रेम–वैराग्य मार्ग से गुजरता हुआ किस भक्ति में परिणत हुआ समझेंगे।

8.2 प्रस्तावना

भक्ति की उत्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है भजन अथवा उपासना करना। नारदमुनि ने इसे परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा कहा है जिसे प्राप्त कर मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति साधन हैं। भगवान् तक पहुंचने के लिए भक्ति माध्यम है, भक्ति–मार्ग का प्रमुख आधार भागवत धर्म है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसका उदय ईसा के लगभग 1400 वर्ष पूर्व हुआ था। इससे भी पूर्व वैदिक काल में – ऋग्वेद में इसके संकेत मिलते हैं। ब्राह्मणकाल में कर्मकाण्ड की प्रधानता रही और उपनिषद्–काल में शिव, रुद्र और विष्णु की उपासना पर बल दिया गया। इस काल में निर्गुण ब्रह्म की उपासना के लिए मन, आकाश, सूर्य, यज्ञ आदि कई प्रतीक चुने गए। यद्यपि उपनिषद्कारों ने इन प्रतीकों को प्रचलित करने का भरसक प्रयत्न किया तथापि सामान्य जनता को ये ग्राह्य नहीं हो सके। सगुण से सम्बंधित होने पर भी ये प्रतीक अव्यक्त रहे। भागवत धर्म में मानव–देहधारी भगवान की उपासना अस्तित्व में आई।भागवत के अनुसार नर और नारायण नामक ऋषियों ने नारायणी धर्म को मान्यता दी जो कालान्तर में कृष्ण के समय सात्वती धर्म के नाम से अस्तित्व में आया, बाद में यह 'भागवत धर्म' कहलाने लगा।

8.3 घनानन्द की भक्ति भावना

भागवत धर्म के अनुसार केवल परमात्मा ही सृष्टि का उत्पत्तिकर्त्ता है। वह अनन्त, अनश्वर, सर्वान्तर्यामी और सर्वव्यापक है। जीव उसका ही अंश है। जब–जब भक्तों पर संकट पड़ता है तब–तब वह अवतार धारण कर उनके कष्टों को दूर करता है। राम और कृष्ण उसके प्रमुख अवतार हैं। इन अवतारों की भक्ति करने से जीव मोक्ष प्राप्त करता है। जीव चार प्रकार के हैं – बद्ध, मुमुक्षु, केवल और मुक्त। मुक्त जीव पार्थिव देह का त्याग कर लिंग–देह धारण करता है और इस देह में रहकर उसका पूर्णतः भोग करने के बाद वह परम अनुभूति में लीन हो जाता है। तत्पश्चात् वह भगवान् के चार व्यूहों में लीन हो जाता है – अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सकर्षण और वासुदेव।

भागवत धर्म में शंकराचार्य के अद्वैतवाद और मायावाद का खंडन कर ब्रह्म के सर्वगुण रूप की स्थापना की गई है। रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय हो या माध्वाचार्य का ब्रह्म सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी का रुद्र सम्प्रदाय हो या निम्बार्काचार्य का सनकादिक सम्प्रदाय, सभी में भगवान् के सगुण रूप को ही स्वीकारा गया है। श्रीमद् –भगवद्गीता, सात्वत् संहिता, शांडिल्य सूत्र, भागवत पुराण, हरिवंश पुराण तथा नारदीय भक्ति सूत्र, भागवत धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। भागवतकार के अनुसार भक्ति का विकास इस प्रकार हुआ 'मैं द्रविड़ में उत्पन्न हुई, कर्नाटक में बढ़ी, कभी–कभी महाराष्ट्र में पोषण हुआ, गुर्जर में जीर्ण हो गई, घोर कलि के कारण खंडितांग हो गई, दुर्बलता को प्राप्त हो पुत्रों–सहित धीरे–धीरे वृन्दावन में आयी जहां मैं सुन्दर रूप प्राप्त कर युवती हो गई और अब उत्कृष्ट रूप वाली हूं।' (श्रीमद्भागवत् माहात्म्य, अध्याय 1, श्लोक 48, 49, 50)

इधर उत्तर भारत में छठी शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक जब भागवत धर्म लगभग लुप्त–सा हो गया था तब इसी काल में दक्षिण भारत में भागवत धर्म का प्रचार हुआ। आलवार भक्तों ने इस परम्परा को अक्षुण्ण रखा। बारह

आलवार भक्तों के भावपूर्ण गीत 'प्रबन्धम्' में संकलित हैं। इन भक्तों ने विष्णु, वासुदेव, नारायण तथा उनके अवतार राम और कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति–भाव प्रकट किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कृष्ण–गोपियों की लीला–क्रीड़ा का वर्णन किया है और उनके प्रति दास्य, वात्सल्य और माधुर्यभाव की भक्ति प्रकट की है। आचार्य रंगनाथ मुनि (824. 924 ई0) ने तमिलवेद का उद्धार करके श्रीरंगम के प्रसिद्ध मन्दिर में उसके गायन की व्यवस्था की। रंगानाथ मुनि के पौत्र यामुनाचार्य ने 'गीतार्थ–संग्र', 'सिद्धिगम' आदि ग्रन्थों का प्रवचन कर मायावाद का खण्डन किया और विष्णु की श्रेष्ठता प्रतिपादित की।

8.3.1 कृष्ण भक्ति

ब्रजमण्डल में कृष्णभक्ति का प्रचार–प्रसार हुआ। वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय और चैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण के कई रूपों की कल्पना की गई है। आचार्य वल्लभ के अनुसार भगवान् कृष्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं, सत्चित आनन्दस्वरूप हैं। वे सर्वत्र स्वतन्त्र, व्यापक, सर्वशक्तिमान, स्वजातीय, विजातीय–भेद रहित हैं। नानारूपा भगवान् कृष्ण जगत् के निमित्त कारण हैं। वे आनन्ददायिनी लीलाएं करते हैं, उन्हीं के समान उनकी लीलायें भी नित्य हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय में कृष्ण के वामांग में राधा को प्रतिष्ठित कर उनकी उपासना की गई है। जगत् नियामक कृष्ण भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अवतार धारण करते हैं। दैन्यभाव से वन्दना करने से ही, प्रेमपूर्वक स्मरण करने से ही उनकी प्राप्ति होती है। शिव भी कृष्ण की वन्दना करते हैं। राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा उनकी परा प्रकृति है। वह निजशक्तिरूपा है, आल्हाददायिनी है। सम्पूर्ण जगत् रसिक राधा–कृष्ण का प्रतिबिम्ब है। भगवान् कृष्ण ईश्वर के ईश्वर और ब्रह्म के भी आदि कारण हैं। वे प्रेम–माधुर्य की मूर्ति हैं और गोप–गोपियों के साथ विहार करते हैं। वे राधापति हैं, 'राधावल्लभ' उनका उपास्य नाम है। हरिदासी सम्प्रदाय में भी नित्य विहारी कृष्ण की कुंज–लीलाओं का गान किया गया है। वे न सृष्टि की रचना करते हैं और न उसमें लीन रहते हैं। सृष्टि–सम्बन्धी सभी कार्यों को ईश्वर पर छोड़ वे केवल विहार में ही मग्न रहते हैं। कुंजविहारी कृष्ण की उपासना करना ही हरिदासी भक्तों की प्रमुख कामना है। श्रीकृष्ण की अनेक शक्तियों में से आल्हादिनी भक्ति भी एक है जिसका एक रूप राधा है। इस सम्प्रदाय में कृष्ण की किशोरावस्था का वर्णन किया गया है। माधुर्यभाव भगवान–लीला का आधार है।

सुजान के प्रति घनानन्द का आनन्द प्रेम–वैराग्य मार्ग से गुजरता हुआ भक्ति में परिणत हो गया। जिस प्रकार रीतिकाल के अन्य कवियों का राग कालान्तर में वैराग्य में बदल गया, उसी प्रकार घनानन्द का निरन्तर वियोग भक्ति में बदल गया। वस्तुतः सुजान की निरन्तर निष्ठुरता और बेरुखी ने कवि को कृष्णभक्त बना दिया। जीवन के प्रति घोर निराशा ने उसे भगवदोन्मुख बना दिया। पहले उसने अपने–आपको सुजान के प्रति समर्पित किया और बाद में भगवान् कृष्ण के प्रति। जीवन के अन्तिम दिनों में जाकर उसने सुजान से प्रेम छोड़, कृष्ण से प्रेम करना उचित समझा, क्योंकि कृष्ण के चरणों में ही उसकी आस्था को बल मिल सकता था। संसार की कोई भी वस्तु–व्यक्ति उसकी स्नेहिल आस्था को विकसित करने में समर्थ नहीं था, इसलिए वह कृष्ण में केन्द्रित हो गया –

सब ओर तें एंचि कैं कान्ह किसोर मैं राखि भलों थिर आस करैं।

कृष्ण के अतिरिक्त उन्होंने राधा के प्रति भी अनन्त भक्ति प्रकट की है। कृष्ण और राधा दोनों ही घनानन्द

के उपास्यदेव हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं कि निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा को कृष्ण के वामाँग में प्रतिष्ठित कर उसकी उपासना की गई है। ब्रह्मा और शिव भी कृष्ण की वंदना करते हैं, क्योंकि कृष्ण जगत् नियामक हैं, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अवतार धारण करते हैं। दैन्य–भाव से भक्ति करने से भी भगवान् कृष्ण की प्राप्ति होती है। ये भक्ति शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल भाव से की जाती है। घनानन्द ने दैन्यभाव से भगवान् की भक्ति की है। राधा की उपासना की है। राधा–कृष्ण की युगल मूर्ति ही इसके लिए आलम्बन है। दोनों के प्रति उसने अपनी अनन्यता प्रकट की है। वैसे मनः स्थिति के अनुरूप उसने राधा–कृष्ण तथा उनसे सम्बन्धित वस्तु–व्यापार के प्रति भी अपना प्रेम व्यक्त किया है। यहीं घनानन्द की भक्ति की विशेषता है ब्रज, गोवर्धन, यमुना के अनन्त वैभव के प्रति वे तन–मन से अनुरक्त हैं।

सूर, तुलसी और मीरा के समान घनानन्द भगवान् कृष्ण के गुणों का गान बार–बार करते हैं, क्योंकि भगवान् समर्थ हैं और घनानन्द असमर्थ। उन्होंने असमर्थता, समर्थता, सुख–दुःख, हानि–लाभ सब कुछ भगवान् के प्रति समर्पित कर दिया है – क्योंकि वे गुणों का आगार है। यह अनश्वर संसार–प्रवंचनामय है इसलिए वे छल–छद्म से उबरना चाहते हैं। केवल भगवद्कृपा से ही वे सांसारिक तृष्णा से मुक्त हो सकते हैं। ऐसा लगता है कि अन्य भक्त कवियों के समान घनानन्द भी सांसारिक मोह–माया के जंजाल से उबरना चाहते हैं। सांसारिक चक्र में वे अपने–आपको भूल गए। जिस प्रकार सूर बेबस होकर भगवान् से यह कहते हैं कि हे गोपाल ! अब मैं विषय–वासना की माला पहन, संसार में नाच–नाच कर थक चुका, तुम्हीं मुझे उबारो, उसी प्रकार घनानन्द भी भगवान् से यह कहते हैं कि वे उन्हें दुःखों से मुक्त करें।

1. *जग जंजार असार लोभ लगि नाचि थक्यौ बहुत नाचौ।*
   अब आनन्द घन सुरस सींचिये लगै नहीं दुख आँचौ। (घनानन्द)
2. *अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।*
   काम क्रोध कौ पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।
   महामोह के नूपुर बाजत निन्दा सब्द रसाल।
   भ्रम–भौयौ मन भयौ पखावज चलत असंगत चाल।।
   तृष्ना नाद करति घट भीतर नाना विधि दै ताल।
   माया कौ कटि फेंटा बांध्यौ लोभ–तिलक दियौ भाल।
   कोटिक कला काछि दिखराई जल–थल सुधि नहिं काल।
   सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नंदलाल।

घनानन्द अपने पापों का कच्चा चिट्ठा खोलते चले जाते हैं और भगवान् सुनते चले जाते हैं। वे सिर झुकाकर अपने पापों को स्वीकार कर लेते हैं, अपने कर्मों के लिए पश्चाताप करते हैं, भगवान के सामने गिड़गिड़ाते हैं। भगवान को ही सर्वशक्तिमान मानकर सच्चे हृदय से पुकार करते हैं कि उनके पाप–पाश खुल

जायें, सभी विकारों को साथ ले वे भगवान के द्वार जाते हैं, क्योंकि वे ही समर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं –

आयौ सरन विकार भर्‌यौ।

तुम सरबज़ अज्ञ हौं बहु बिधि जु कछु न करिबे सु कछु कर्‌यौ।

अनगिनत पापों को करने के बाद वे भगवान की शरण में जाते हैं, उनकी कृपा–वत्सलता की दुहाई देते हैं। बार–बार आर्त्त हो यह कहते हैं कि हे भगवान, अब मेरे पापों को भूल कर तुम मेरा उद्धार करने के लिए आ ही जाओ। मेरे अवगुणों को न देखकर अपने गुणों को ही ध्यान में रख कर मेरा उद्धार करो। यदि मै पापी हूं तो तुम पापों से उद्धार करने वाले हो। लगता है भगवान और भक्त में होड़–सी लगी है, एक पाप करता है दूसरा क्षमा करता है और भक्त इसी गुण–निधानता को चुनौती देता हुआ कहता है :–

भूल भरे की सुरति करौ।

अपनी गुन निधानता उर धरि मो अनेक औगुन बिसरी।

घनानन्द अपने भगवान की शक्ति के प्रति सजग हैं। यदि भगवान चाहें और घनानन्द बंधनमुक्त न हो, यह असम्भव है। कवि सब कुछ भूल कर भगवान की चरण–शरण में जाना चाहता है। भगवान उसके लिए प्राणों से भी प्रिय है, वह भगवान से कुछ नहीं माँगता, केवल उसका सान्निध्य चाहता है, उसकी गोद में बैठना चाहता है।

गोविन्द गुसाईं त्यौं ही माँगत हौं गोद–गेह,

गिरा अगराई गुन–गरिमा गनन कौं।

घनानन्द का भावुक हृदय अपने आराध्य के सामने सब कुछ खोलता चला जाता है। उसका अच्छा है या बुरा, सब कुछ भगवान के सामने है, वही उसके बारे में जानते हैं फिर भला वह क्या कहे या न कहे। गोपियों के समान वे भी पूरी तरह समर्पित हो जाते हैं। उसे विश्वास है कि कभी–न–कभी उसका आराध्य उसकी सुधि लेगा, कब तक वह उसकी पुकार को अनसुनी करता रहेगा। सूर और तुलसी के समान घनानन्द भगवान की बाट जोहता रहता है, मीरा के समान पलकों के पाँवड़े बिछाता है तब भी भगवान के न आने पर वह उससे शिकायत करता है कि वह कब उसकी सुधि लेगा –

हमारी सुरति कब धौं तुम लैहौं।

अवसर बीत्यौ जात जानमनि बहुरि आय कहा कैहौ।

प्रियतम की बाट जोहते–जोहते वह थक गया है, उससे मिले बगैर चैन नहीं है और प्रतीक्षा भी नहीं की जा सकती। व्याकुलता इतनी बढ़ गई है कि उसे कहा भी नहीं जा सकता। उससे मिलना बहुत आवश्यक है, क्योंकि उसके बगैर रहा नहीं जा सकता। वियोग की विषम–वेदना उसके हृदय को जला रही है। और इस जलन का कष्ट असह्य है। जिस प्रकार मीरा केवल अपने आराध्य की स्तुति करती है, उसी प्रकार घनानन्द भी कृष्ण को छोड़ किसी और का ध्यान नहीं करता। जिस प्रकार अतिथि की प्रतीक्षा की जाती है उसी प्रकार घनानन्द अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करता है, उससे भी पहले उसके सत्कार की सामग्री जुटाता है, पदचाप सुनता है, आँखों के जल से उसके चरण

पखारने की तैयारी करता है, क्योंकि प्रियतम का सान्निधय ही उसका जीवन है, प्राण है।

मोरे मितवा तुम बिन रह्यौ न जाय।

विषम वियोग–जरावै जियरा सह्यौ न जाय।

निपट अधीर पीर बस हियरा गह्यौ न जाय।

आनन्दघन पिय बिछुरन को दुःख कह्यौ न जाय।

वह अपने हृदय–दीप को नेह से भरकर यत्न से सजाता है। रूप के आगार ब्रजमोहन के आने की प्रतीक्षा करता है, आरती उतारता है और भावना से उसकी मूर्ति निहारता है।

नेह सों मोय है संजोय धरी हिय–दीप दसा जु भरी मति आरति।

रूप उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।।

रावरी आरति बावरी लौं घनआनन्द भूलि वियोग निवारति।

भावना धार हुलास के हाथनि यौं हित मूरति हेरि उतारति।।

8.3.2 राधा–भक्ति

घनानन्द ने राधा के प्रति भी भक्ति–निवेदन किया है, क्योंकि वे भक्तों का मनोरथ पूरा करती है। कवि ने सखी–भाव से भी भक्ति की है। ऐसा कहा जाता है कि इनका 'बहुगुनी' नाम प्रसिद्ध हो गया था। ये अपने आप को भी राधा की 'बहुगुनी' नाम की सखी बताते हैं और बरसाने को निवास–स्थान मानकर राधाजी के कई काम करते हैं। वे राधा को वृन्दावन की रानी और अपना स्वामी मानकर उनकी स्तुति–वंदना करते हैं, क्योंकि राधा अतुल–रूप–गुण सम्पन्न है –

राधा अतुल रूप गुन भरी। ब्रज बनिता कदम्ब–मंजरी।

'बहुगुनी' राधा की सिरचढ़ी सखी है, क्योंकि वही उसका सब काम करती है, उसके चेहरे को निहारती रहती है, चेहरे पर लिखे भावों को पढ़कर ही वह राधा के सभी काम करती है, उन्हें कहने तक की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। वह नाना प्रकार से राधा का शृंगार करती है, उबटन मलती है, काजल लगाती है, बाल बनाती है, वेणी बाँधती है, बिंदी लगाती है। यही नहीं, वह झूम–झूम रस–सिक्त तान सुना, कविता सुना उन्हें रिझाती है, कृष्ण की मुरली का अनुसरण करने वाली तानों को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हो जाती हैं और 'बहुगुनी' को 'लाडली लौंडी' कहती हैं। राधा की और भी परमप्रिय दासियाँ हैं – जैसे ललिता, विशाखा जो उसे बहुत प्यार करती हैं। 'बहुगुनी' राधा को गोपनीय रहस्यपूर्ण संकेतों को भी बताती है, गोपनीय हाव–भावों को समझने वाली राधा कृष्ण को प्रिय है, इसलिए वे भी बाँसुरी द्वारा राधा का नाम ही लेते रहते हैं। कृष्ण को प्रिय लगने वाली राधा की स्तुति 'बहुगुनी' कई प्रकार से करती है – वह राधा–कृष्ण की सेज सजाती है, सुखभोग के उपकरण एकत्रित करती है, प्रेम–पगी बातें कह उनका मिलन कराती है तब और भी ढेर सारे काम करती है जिससे दोनों में प्रेम बढ़ता है। राधा–कृष्ण को एक साथ बैठा

उन्हें आँचल करती है। कृष्ण जब राधा का आँचल खींचते हैं तब वह धीरे से मन्द–मन्द मुसकरा छुड़ाने का प्रयत्न करती है। जब कभी कृष्ण उसकी ओर भी रस–भीनी अदा से देखते हैं तब वह सकुचा जाती है –

मोहिं भुज भरै छकनि सों जिय समझि लजाऊँ।

कभी–कभी वह छिपकर भी दोनों की बातें सुनती है – उनकी 'हां' 'नहीं' सुन कर मन–ही–मन प्रसन्न होती रहती है – कभी मंगल–गीत गाती है और कभी वीणा बजाती है। कभी यमुना के तट पर तरु–लता की ओट से देखती है, और कभी राधा के उतारे हुए वस्त्रों को पहन परम सौभाग्य का अनुभव करती है, क्योंकि वह राधा की 'चटकीली चेरी' है, उसकी जूठन खाकर राधा का मंगल मनाती है –

चांपत चरन तनक झुकि जाऊँ। छुवै सीस राधा कै पाऊँ।।
चरन हलाय जगाए जगौं। बहुरि औंधि नित पाँयनि लगौं।।
राधा धर्‌यौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाए जाऊँ।।
राधा की जूठनि ही जियौं। राधा की प्यासनि ही पियौं।।
राधा कौ सुख सदा मनाऊँ सुख दै दै हौं सुख ही पाऊँ।।

इस प्रकार घनानन्द ने 'बहुगुनी' पर राधा के नित्यप्रति के कार्य श्रद्धा भक्ति से किए हैं। प्रातः से लेकर रात्रि तक का कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो इस लाडली दासी ने न किया हो। मीरा की तरह घनानन्द भी चाकर बनने में गौरव का अनुभव करते हैं। उनका उद्देश्य प्रियतम का नैकट्य है, इसलिए वे चाकर बनकर उनका हर कार्य करते हैं ताकि राधा की कृपा से कृष्ण प्रसन्न हो जाएं। राधा मनोरथ पूरा करने वाली है इसलिए घनानन्द उनकी सेवा–टहल करते रहते हैं।

8.3.3 ब्रज भूमि

घनानन्द के हृदय में सम्पूर्ण ब्रज प्रान्त के प्रति श्रद्धा–अनुराग का भाव है। ब्रज कृष्ण–राधा की पावन लीलाभूमि है। यहाँ श्री है, शोभा है। पवित्रता है और गरिमा है जिसमें प्रत्येक भक्त डुबकी लगाकर अपने आप को कृत–कृत्य समझता है। इस भूमि का पावन–स्पर्श केवल अनुभव किया जा सकता है, शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। ब्रज सौन्दर्य–रस अगम–अगोचर है, इसका यश वाणी नहीं गा सकती। इसकी छवि आँखों द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। इसका सौन्दर्य–सुख ही केवल अपने बारे में कह सकता है –

1. *सबतें अगम अगोचर ब्रजरस। रसना कहि न सकति याको जस।*
2. *गोकुल छवि आँखिनि ही भावै। रहि न सकै रसना कछु गावे।*
3. *यह सुख मुख हौ को उच्चरै। सुख ही निज सुख बरनन करै।*

ब्रज राधा–कृष्ण की प्रेमभूमि है। शेष, महेश, गणेश भी इसकी रज की वन्दना करते हैं। इसके दो कारण हैं – एक हैं कृष्ण का आवास और दूसरा प्राकृतिक सौन्दर्य। कृष्ण के निवास करने से यहां के निवासी आपस में आत्मीयता से रहते हैं। घर–घर में मंगलगान होता है, नित्य प्रसन्नता का वातावरण होता है। यहाँ के गैल–गलियारे

लिपे–पुते साफ–सुथरे हैं। चारों तरफ सुन्दर श्यामल ऊँचे–ऊँचे वृक्ष हैं जिनके प्रतिबिम्ब से सरोवर का रंग भी गहरा हो जाता है। वस्तुतः कृष्ण की गन्ध ही यहाँ के वृक्षों – सरोवरों और वायु में विद्यमान रहती है जो प्राणी मात्र को आनन्दमग्न कर देती है। यमुना–किनारे कदम्ब की छांह विहार के लिए उद्दीप्त करती है। यहां निरन्तर मेघ बरसते रहते हैं और सम्पूर्ण ब्रजप्रान्त जलमय–रंगमय हो जाता है। कवि न केवल राधा–कृष्ण का प्रेम देखकर आनन्दित होता है अपितु ब्रजवासियों के वैभव–विलास को देखकर भी तन्मय हो जाता है। ब्रज के दर्शन–मात्र से ही भक्त कवि को माधुर्य और आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। इसका वैभव–अनुपमेय है। केवल ब्रज ही ब्रज की बात कह सकता है। कृष्ण की लीलाभूमि पर कवि सौ–सौ बार न्यौछावर होता है –

1. *या ब्रज सों यह ब्रज ही आहि। ब्रज की पटतर दीजै काहि।*
2. *ब्रज वृन्दावन की बलि जेयै। ब्रज वृन्दावन लीला गैयै।*
3. *ब्रज देखन की कृपामनैयै। याही तें यह ब्रज रग पैयै।*

यूं तो सम्पूर्ण ब्रजप्रान्त कवि के लिए आकर्षण केन्द्र रहा है लेकिन गोकुल और वृन्दावन के प्रति उन्होंनेविशेष आस्था प्रकट की है गोकुल में कृष्ण के रूप में नन्द–यशोदा को अपने पुण्य–कर्मों की फल प्राप्ति हुई है,क्योंकि इसी कान्हा के कारण उनके द्वार पर हमेशा भीड़ लगी रहती है। कृष्ण को केवल नन्द यशोदा ही प्रेम नहीं करते बल्कि सभी प्राणी उसे अपना प्राण समझते हैं। इससे बढ़कर माँ–बाप के लिए और सौभाग्य क्या होगा कि उनका बेटा उनकी प्रेममय–सीमा रेखा लाँघ व्यापक स्नेहिल लोक में पहुंच जाता है। कृष्ण की एक–एक बात गोकुलवासियों को मुग्ध करती है। कृष्ण का घुटने चलना, हँसना, बात करना, वंशी बजाना सब कुछ स्नेह की वृष्टि करता है, उसका रूप और स्वभाव दोनों ही आनन्द–आल्हाद से परिपूर्ण है, इस आनन्द का वर्णन वही कर सकता है जिसने उसके दर्शन किए हैं। गोकुलवासियों के सुख भी अकल्पनीय हैं। क्योंकि उन्हें कृष्ण का साहचर्य प्राप्त है। इस साहचर्य–सुख के सामने तीनों लोकों की सम्पत्ति भी धूल समान है। वृन्दावन की शोभा का कहना ही क्या। यहां यमुना की श्यामल तरंगें प्राणिमात्र को श्याममय कर देती हैं। इसलिए घनानन्द यमुना और वृन्दावन दोनों की एक साथ आरती उतारता है –

जै जमुना जै जै वृन्दावन।

इसी वृन्दावन में राधा–कृष्ण रमण करते हैं। वृन्दावन अलौकिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है जहाँ प्रेमी–युगल प्रेम की लुका–छिपी खेलता है। यमुना के किनारे एकत्रित होकर वृन्दावनवासी राधा–कृष्ण को निहारते रहते हैं, प्रसन्न होते रहते हैं। यमुना–तीरे रजकण चिन्तामणि के समान अमूल्य हैं। ऐसा लगता है कि कवि को वृन्दावन से कोई अलग नहीं कर सकता। वृन्दावन के प्रति घनानन्द का लगाव देखकर ही सम्भवतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा होगा –

धन्य ये मुनि वृन्दावन वासी।

दरसन हेतु विहंगम ह्वै रहे मूरति मधुर उपासी।

8.3.4 यमुना

घनानन्द ने यमुना के प्रति भी अनन्य भक्ति प्रकट की है, क्योंकि यमुना के किनारे जाकर भक्त को ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है। तीनों प्रकार के ताप–दुःख दूर हो जाते हैं, मनोकामना पूर्ण होती है, मंगल–सौभाग्य की वृद्धि होती है। इसका कारण है यमुना का जल जिसमें अपूर्व कान्ति है। कृष्ण के अंग–अंग से यह जल लिपटा है अथवा उसके शरीर के राग–रंग से यह कितनी बार तृप्त हुआ है। यह यमुना राधा को भी प्रिय है क्योंकि यहाँ उसे कृष्ण का संसर्ग प्राप्त होता है। यमुना–स्नान का महात्म्य इसलिए है कि यहाँ राधाकृष्ण ने विहार किया है। कवि यमुना की यशोगाथा बार–बार गाता है, गाते रहना चाहता है, यमुना को छोड़ और कहीं जाना नहीं चाहता –

या जमुना की भाग निकाई। मति अति रीझि विचार बिकाई।
या जमुना की हौं ही गाऊँ। या जमुना को सुदरस पाऊँ।
या जमुना मैं नित ही न्हाऊँ। या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ।

8.4 सारांश

घनानन्द ने राधा और कृष्ण दोनों की समान रूप से वन्दना की है। कृष्ण अवतार हैं, वे भक्तों का कष्ट निवारण करने वाले हैं। लीला–विहार से त्रैलोक्य का सुख देने वाले हैं। राधा कृष्ण की प्रेमिका हैं सभी प्रकार की मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाली हैं। इसलिए दोनों ही घनानन्द के पूज्य हैं, उपास्यदेव हैं। वह दोनों के अनुग्रह का आकाँक्षी है। यदि वह कृष्ण की प्रतीक्षा करता है तो 'बहुगुनी' बनकर राधा के नित्यप्रति के कार्य संभालता है। आराध्य के अतिरिक्त वह आराध्य आवास तथा संबंधित वस्तु–व्यक्तियों से भी प्रेम करता है क्योंकि ये आराध्य देव के लीला एक्ल हैं। वह ग्वाल, गोपी, नन्द बाबा, यशोदा माँ सभी के प्रति भक्तिपरक उद्‌गार प्रकट करता है क्योंकि उन्हें उनसे आराध्य का सान्निध्य प्राप्त है। इस प्रकार घनानन्द ने विभिन्न मनः स्थितियों के अनुरूप अपने आराध्य की वन्दना उपासना की है। वह आराध्य के स्वागत के लिए हृदय–दीप भी जलाता है, पलकों के पाँवड़े भी बिछाता है राधा की चाकरी भी करता है। ब्रज में भी विचरता है। उसका हृदयदीप नाना रूपों में उसके काव्य में जगमगाता दिखाई देता है।

8.5 कठिन शब्द

1.	त्रैलोक्य	2.	बहुगुनी
3.	आवास	4.	आराध्य
5.	यशोगाथा	6.	अनन्य
7.	सौभाग्य	8.	अनुपमेय
9	आनन्दित	10	अनुराग

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. घनानन्द की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए ।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. घनानन्द के काव्य में व्यक्त राधा भक्ति पर लेख लिखिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3. घनानन्द ने अपने काव्य में कृष्ण भक्ति का निरुपण किस प्रकार किया है ? स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
2. घनानन्द की काव्य कला – विजयपाल सिंह
3. घनानन्द – डॉ. गणेश दत्त सारस्वत
4. घनानन्द काव्यदर्शन – डॉ. सहदेव वर्मा
5. घनानन्द संवेदना और शिल्प – राजबुद्धिराजा

.....

कामायनी में दार्शनिकता

9.0 रूपरेखा
9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 कामायनी में दार्शनिकता
9.3.1 आत्मा का स्वरूप
9.3.2 जीव
9.3.3 जगत
9.3.4 संसार
9.3.5 क्षणवाद
9.3.6 दुःखवाद
9.3.7 परमाणुवाद
9.3.8 विकासवाद
9.4 सारांश
9.5 कठिन शब्द
9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
9.7 सन्दर्भग्रन्थ /पुस्तकें

9.1 उद्देश्य :– प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

1) कामायनी की दार्शनिकता को जान सकेंगे।

2) कामायनी के संदर्भ में आनंदवाद की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3) दार्शनिकता के अन्तर्गत जीव, आत्मा, जगत, संसार आदि का अध्ययन करेंगे।

9.2 प्रस्तावना

प्रसाद जी मूलतः आनन्दवादी कवि थे। उनका आनन्दवाद शैवदर्शन के अनुरूप है। उन्होंने 'अयमात्मा परानन्द' कहकर आत्मा को आनन्द–स्वरूप कहा है। आत्मा के इसी आनन्द–स्वरूप का दिग्दर्शन कराने के लिए उन्होंने मानस मन्थन कर अपने प्रसिद्ध महाकाव्य कामायनी की रचना की। प्रसाद जी एक ओर वेदान्त–दर्शन से प्रभावित थे, तो दूसरी और शैवदर्शन से और इन्हीं दोनों का प्रभाव उनकी रचना कामायनी में दृष्टिगत होता है। उनके दार्शनिक आधार के सम्बन्ध में डा॰ स्नातक ने लिखा है, "मनु अर्थात् मनन–शक्ति के साथ श्रद्धा अर्थात् हृदय की भावात्मक सत्ता या विश्वास समन्वित रागात्मिका वृत्ति तथा इड़ा अर्थात् व्यवसायात्मिका बुद्धि के संघर्ष और समन्वय का विवेचन ही कामायनी का दार्शनिक आधार है।"

9.3 कामायनी में दार्शनिकता

कामायनी में दर्शन और मनोविज्ञान का एक साथ सुन्दर परिपाक हुआ है। दार्शनिकता पर बल देने के कारण कवि का ध्यान भौतिक घटनाओं के मूल में सन्निविष्ट उन सिद्धान्तों की ओर रहा है जिनके द्वारा जगत और जीवन की गतिविधि का यथार्थ रूप में आकलन हो सकता है। मनु और श्रद्धा की ऐतिहासिक कथा के साथ–साथ मानव–मन के विकास की मनोवैज्ञानिक कथा भी हैं। अतः इसका दार्शनिक आधार अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और व्यक्त है। कामायनी का मूल प्रतिपाद्य, जीवन की मूल सिद्धि आनन्द है। अतः कामायनी में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा हुई है।

कामायनी का आनन्दवाद श्रद्धामूलक आनन्दवाद है। उन्होंने बाह्य–गोचर विश्व में प्रतीयमान आनन्द से भिन्न आत्मस्थ आनन्द को स्वीकार किया है। 'रामचरित मानस' का आनन्द ब्रह्मांड में व्याप्त है जब कि कामायनी का आनन्द पिण्ड में केन्द्रीभूत है। आनन्द भूमि तक पहुँचने में साधक जब मायावी आकर्षण (सौंदर्यमयी चंचल कृतियाँ) आसुरी वृत्तियाँ एवं तर्कमयी बुद्धि, इन बाधाओं को पारकर जब जीवात्मा को कर्मशील बनाता है, हृदय का शुद्ध प्रेम अपनाता है, बुद्धि और हृदय का सन्तुलित समन्वय करता है तभी आनन्द पाता है। इच्छा, क्रिया और ज्ञान के सामंजस्य से उत्पन्न समरसता की मनः स्थिति इस आनन्द की भूमिका है, उसे सुख–दुःख कुछ नहीं व्यापता। अर्थात् यह आनन्द सामरस्य का पर्याय है। प्रसाद जी के अनुसार इस आनन्द का स्वरूप भिन्न–भिन्न मतमतांतरों के कारण ढका हुआ है। भिन्न–भिन्न साधक इसे अपनी साधना द्वारा हटाना चाहते हैं, लेकिन यह आवरण और भी अधिक रहस्यमय बनता जाता है–

सब कहते हैं खोलो खोलो
छवि देखूँगा जीवन–धन की

आवरण स्वयं बनते जाते
है भीड़ लग रही दर्शन की

इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए प्रसाद जी ने समरसता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। सुख–दुःख के वैषम्य का निराकरण करते हुए वह कहते हैं–

नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता कारण जलधि समान
व्यथा से नीली लहरों बीच बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान।

मानव–सम्बन्धों में आकांक्षा और तृप्ति का वैषम्य भी महत्त्वपूर्ण है। जहाँ भारतीय सन्यासी इच्छाओं के दमन का आदेश देते हैं, वहाँ प्रसाद जी उनके समन्वय पर बल देते हैं।

मैं तृष्णा था विकसित करता, वह तृप्ति दिखाती थी उनको
आनन्द समन्वय होता था, हम ले चलते पथ पर उनको

कामायनी में सभी प्रकार की समरसता पर बल दिया गया है–

समाज की समरसता जिसके अभाव में सारस्वत–प्रदेश की प्रजा दुःख उठाती है और जिसका संदेश श्रद्धा अपने पुत्र मानव को देती है।

व्यक्ति की समरसता जिसके लिए तर्कपूर्ण बुद्धि और भाव–संवलित हृदय का समन्वय आवश्यक है।

शासक और शासित, पुरुष और स्त्री की समरसता जिसकी अवतारणा आनन्द सर्ग में की गई है और जिसके अभाव में मनु कष्ट पाते हैं।

भूल गये तुम पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की

प्रसाद जी के मतानुसार अपने–पराये का भाव और अहम् की भावना दुःख का मूल कारण हैं। जब मनुष्य इनके ऊपर उठ जाता है, उस समय वह लीलामय प्रभु के ऐसे लीलामय लोक में पहुँच जाता हैं जहाँ उसे सुख और दुःख नहीं व्यापता–

बोले देखो कि यहाँ पर कोई भी नहीं पराया।

इस स्थिति में पहुँच कर न दुःख रह जाता है और न निराशा। वह जड़ और चेतन से ऊपर उठ जाता है, ममत्व–परत्व का भेद मिट जाता है–

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था।

प्रश्न उठता है कि यह आनन्द प्राप्त कैसे हो ? इसका उत्तर प्रसाद जी ने मनु और श्रद्धा के माध्यम से दिया है। मनु श्रद्धा से रहित हो आनन्द की खोज में इधर–उधर भटकते हैं। वह बुद्धिपाश में पड़ जाते हैं जिसके फलस्वरूप

संघर्ष, कलह और अशान्ति ही मिलती है। जब तक वह श्रद्धा को प्राप्त नहीं करते, तब तक उन्हें शान्ति नहीं मिलती। उसी के द्वारा इच्छा, कर्म और ज्ञान का सामंजस्य होता है और उन्हें आनन्द प्राप्त होता है। सारांश यह कि आस्तिक बुद्धि या अभेद भावना इसकी साधक है, बुद्धि और भेद–कल्पना बाधक।

कामायनी का आनन्द अद्वैत–जन्य आनन्द है। यह आनन्द वेदान्त का अद्वैत आनन्द नहीं, शैवाद्वैत प्रतिपादित अभेदमय आत्मास्वाद है, जिसमें आत्मा परमात्मा की ही नहीं आत्मा और जगत् की पूर्ण एकता बतायी गई है। इनके अनुसार संसार पूर्णानन्दमय है, संसार में कहीं भी अशिव या निरानन्द नहीं।

सब भेदभाव भुलवा कर दुःख सुख को दृश्य बनाता, मानव कह रे !
यह मैं हूँ यह विश्व नीड़ बन जाता।

कामायनी में प्रतिष्ठित जीव, जगत्, आत्मा के स्वरूप तथा उनके लिए प्रयुक्त आधार भूत शब्दावली से भी ज्ञात होता है कि कामायनी का दर्शन कश्मीर शैव–दर्शन या प्रत्यभिज्ञा दर्शन है। इस दर्शन के अनुसार एक ही अद्वैत परमेश्वर तत्व है जो शिव है। आत्मा चैतन्य रूप है जो स्वयं निर्विकार रूप से जगत् के समस्त पदार्थों में निहित है। इसका नाम परमशिव है।

9.3.1 आत्मा का स्वरूप–कामायनी में आत्मा के लिए चिति, महाचिति, चेतनता आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है और उसे ही संसार–प्रपंच का मूल तत्त्व माना गया है, वह समस्त गोचर विश्व उसी की आनन्दमयी अभिव्यक्ति है–

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम
उसी में सब होते अनुरक्त
'चिति' का विराट वपु मंगल,
यह सत्य, सतत, चिर सुन्दर।

शैव दर्शन की भाँति कामायनी में भी शिव और शक्ति की परिकल्पना आनन्द–सागर और उसकी तरंगावली के रूप में की गई है।

चिरमिलित प्रकृति से पुलकित, वह चेतन पुरुष पुरातन,
निज शक्ति–तरंगायित था, आनन्द–अम्बु–निधि शोभन।

9.3.2 जीव–जीव के प्रतीक मनु हैं। आरम्भ में वह चिन्ताग्रस्त हैं। जब वह जीवन में प्रवेश करते हैं, उनमें जीवन के प्रति भोग–भावना, उसकी अनित्यता, अकर्मण्यता, मिथ्याभिमान, भेद–बुद्धि आदि दोष आ जाते हैं और वह निरानन्द हो जाते हैं। ये चरित–दोष शैवदर्शन की शब्दावली में काल, कला, नियति, राग और विद्या आदि षट्कंचुकों की प्रकल्पना से प्रभावित हैं। मनु विभिन्न स्थितियों–आणव शाक्त, शांभव, तुरीय और तुरीयातीत को पार करते हैं।

उक्त विभिन्न अवस्थाओं की दृष्टि से मनु के जीवन वृत्त का अध्ययन किया जा सकता है। 'चिंता' से 'कर्म' तक वे जाग्रतावस्था में रहते हैं। 'ईर्ष्या'में श्रद्धा के परि–त्याग द्वारा विकल्प भावना का उदय होने से स्वप्नावस्था मानी जा सकती है। स्वप्न, संघर्ष तथा निर्वेद सर्गों तक सुषुप्ति की अवस्था है क्योंकि इस समय तक मनु अपने, मोह माया आदि के कारण संत्रस्त रहते हैं। 'तब चलो जहाँ पर शांति प्राप्त' पंक्ति में श्रद्धा–योग द्वारा वे तुरीयावस्था में प्रवेश करते हैं और 'रहस्य' के अंतिम छंद में वे तुरीयातीत हो जाते हैं। 'आनंद' सर्ग में उनकी इसी अनुत्तरावस्था का चित्रण है।

संज्ञाओं की दृष्टि से मनु का जीवन प्रारंभ से 'ईर्ष्या' तक 'सकल' और वहां से निर्वेद तक 'प्रलय काल' कहा जायेगा। 'दर्शन' के अंत में विज्ञानकाल तथा 'रहस्य' के अंत से उनका जीवन 'शुद्ध' संज्ञा के अंतर्गत आयेगा।

'इड़ा' सर्ग में संकुचित असीम अमोघ शक्ति नामक पद में माया के विभिन्न रूपों अर्थात् कंचुकों का पारिभाषिक रूप में ही उल्लेख किया गया है। वस्तुतः ये कंचुक शिव की मूल शक्तियों को सीमित करने वाले तत्त्व ही हैं।यहाँ शिव–शक्तियों का शुद्ध रूप और कंचुकों को अशुद्ध रूप के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। डॉ॰ नगेन्द्र ने इनकंचुकों को इस तरह वर्णित किया है–

	शुद्ध रूप	लक्षण	कंचुक	अशुद्ध रूप
(1)	शिव	चित (नित्यता)	काल	अनित्यता (समय)
(2)	शक्ति	आनंद (स्वातंत्र्य या व्यापकता)	नियति	परतंत्रता, सीमा
(3)	सदाशिव	इच्छा (महत् शक्ति)	राग	अपूर्ण अहंता
(4)	ईश्वर	ज्ञान (सर्वज्ञ)	विद्या	ज्ञान का शुद्ध अंश (सीमित ज्ञान)
(5)	सद्विद्या	क्रिया (सर्वकर्त्तत्व)	कला	किंचित्कर्तृत्व (नश्वर)

जहाँ पर पाँच ही कंचुकों का उल्लेख है। वस्तुतः माया से उद्भूत ये उसके आवरण हैं। मनु का पूर्व जीवन इन्हीं से आबद्ध रहा है और अंत में इन्हीं से मुक्त हो कर वे आनंदमय होते हैं। कोशों की दृष्टि से मलों और कंचुकों से आवृत्त मनु प्राण तथा मन के कोशों में लिप्त हैं। नर्तित नटेश के दर्शन के साथ वे 'विज्ञान कोश' में प्रवेश करते हैं और त्रिपुरों की समरसता के साथ 'आनंद' में। इस तरह मनु का जीवनवृत्त प्रत्याभिज्ञा दर्शन में वर्णित जीव की विशेषताओं से युक्त है।

9.3.3 जगत्

कामायनी के पूर्वार्द्ध में जगत् की असत्यता, दुःखमयता आदि के विषय में मनु के अनेक उद्गार प्राप्त होते हैंजैसा कि हमने अभी स्पष्ट किया, वे मन की आवृत अवस्था के द्योतक हैं, अतः वे सिद्धान्त–पक्ष के अन्तर्गत नहीं आते।विषादग्रस्त मनु का यह विचार था कि जीवन जड़ता की राशि है – निराशा ही इसका परिणाम है, दीन जीवन का संगीत निरन्तरतिमिर के गर्भ में बढ़ता जा रहा है। किन्तु श्रद्धा इसका निराकरण करती हुई आत्म–विश्वास के साथ उत्तर देती है:

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई–सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।
काम मंगल से मंडित श्रेय,
सर्ग इच्छा का है परिणाम।

कामायनी के वस्तु–विधान से यह स्पष्ट है कि मनु का पक्ष पूर्व–पक्ष है और श्रद्धा का पक्ष आरम्भ से ही उत्तर–पक्ष या सिद्धान्त–पक्ष रहा है – मनु प्रश्न हैं और श्रद्धा उत्तर :

एक था यदि प्रश्न, तो उत्तर द्वितीय उदार।

अतः श्रद्धा के शब्दों में कामायनी के जगत्–सम्बन्धी विचारों की प्रथम प्रामाणिक अभिव्यक्ति है अर्थात् यह संसार महाचिति की लीलामयी अभिव्यक्ति है – अतएव श्रेयस्कर और आनन्दमय है, इसके प्रति अनुराग स्वाभाविक है। आणव स्थिति में होने के कारण मनु इस मंगल रहस्य को नहीं समझ पाते और वे जीवन एवं जगत् को निस्सार मानते हुए निरन्तर भटकते रहते हैं। परन्तु अन्त में श्रद्धा के संसर्ग से स्वस्थ स्थिरचित हो जाने पर – पारिभाषिक शब्दावली में शांभव स्थिति में पहुँच जाने पर, वे भी इस सत्य को प्राप्त कर लेते हैं :–

अपने दुख–सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर,
'चिति' का विराट् वपु मंगल,
यह सत्य, सतत चिर–सुन्दर।

यही स्पष्टतः शैवाद्वैत में प्रतिपादित विश्व का स्वरूप है जहाँ उसे शिव का शरीर मानते हुए आनन्दमय घोषित किया गया है :

त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा।

शैव दर्शन के अनुसार यह विश्व शिव या चिति से अभिन्न है – वही अपनी इच्छा से अभिन्न रूप में इसका उन्मेष करती है :

चेतनो हि स्वात्मदर्पणे भावान् प्रतिबिम्बबद् आभासयति इति सिद्धान्तः । (अभिनवगुप्त)

9.3.4 संसार – संसार विषयक यह मान्यता शुद्ध शैव–सिद्धान्त पर आश्रित है और वेदान्त के अद्वैत से भिन्न है। इसे शैवागमों में आभासवाद, अभेदवाद आदि के नाम से अभिहित किया गया है। इसके अनुसार जगत् का ईश्वर के साथ अभेद सम्बन्ध है, कार्य–कारण सम्बन्ध नहीं है। इस विश्व प्रपंच के विकास के प्रसंग में शिव से लेकर धरणि–पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों की कल्पना की गयी है। इनमें प्रथम पाँच तो परमेश्वर की शक्ति के विकसित रूप हैं,

आगे माया से लेकर नियतिक षट् कचुंक हैं, और अन्त में पुरुष से लेकर पंचभूत तक पच्चीस तत्त्व ही हैं। कामायनी में इन तत्त्वों का अनुसंधान करना कठिन नहीं है – रहस्य–सर्ग में मनु क्रमशः 'नियति' 'काल' आदि से मुक्त होकर शुद्ध रूप की ओर बढ़ते हैं और आनन्द सर्ग में प्रथम पाँच तत्त्वों की ओर भी संकेत मिल जाते हैं इसी प्रकार भाव लोक के वर्णन में पंच ज्ञानेन्द्रियों की और कर्म लोक के वर्णन में पंच कर्मेन्द्रियों का उल्लेख है और आशा सर्ग में सृष्टि के विकास क्रम में पंचभूत का।

शैवदर्शन के अतिरिक्त कामायनी में अन्य दर्शनों के संकेत भी दृष्टिगत होते हैं। उन पर बुद्ध के शून्यवाद, क्षणिकवाद और दुःखवाद के अतिरक्ति नियतिवाद का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है।

मौन, नाश विध्वंस अंधेरा
प्रकट बना जो शून्य अभाव

यदि शून्यवाद का आभास मिलता है, तो–

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घनमाला में
सौदामिनी सन्धि सा सुन्दर,
क्षण भर रहा उजाला में।

9.3.5 क्षणवाद :

इसकी भी व्यंजना मनु के उद्‌गारों द्वारा विशेषकर चिंता भोग–विलासोन्मुख क्षणों में हुई है व्यक्त नील घनमाला में,

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है, व्यक्त नील घनमाला में,
सौदामिनी–संधि–सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।

'कर्म' सर्ग में वे श्रद्धा, से कहते हैं कि श्रद्धे अपने सुख भी तुच्छ नहीं हैं, दिन के जीवन में तो वही सब कुछ है। उनका यह वक्तव्य भी बौद्ध–दर्शन के क्षण वाद की विशेषताओं से युक्त है किन्तु 'कामायनी' में दुःखवद्द की तरह इसका प्रयोग अंशतः है। जो कुछ है, वह जीव की विषमता के प्रति प्रदर्शनार्थ किया गया है। कामायनी में करुणा की अन्तर्धारा आद्यन्त विद्यमान है।

'कर्म' सर्ग में श्रद्धा, अहिंसा, करुणा का ही संदेश देती है। श्रद्धा की यह करुणशीलता उसके चरित्र विकास में सहायक सिद्ध हुई है।

9.3.6 दुःखवाद :

बौद्ध दर्शन का यह एक प्रमुख अंग है जिस के अनुसार संसार के प्रत्येक कार्य–व्यापार में दुःख निहित है।

"व्योम की नीली लहरों बीच बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान"
"उमड़ रहा है देव सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार"

आदि वक्तव्यों में दुःखवाद का ही प्रभाव परिलक्षित है। मनु के आत्म–चिन्ता विषयक पदों में भी दुःखवाद की गहरी छाप दिखाई देती है–

मौन ! नाश ! विध्वंस ! अन्धेरा !
शून्य बना जो प्रगट अभाव।

कामायनी में यह दुःखवाद मनु या जीव द्वारा व्यक्त किया गया है और यह आनन्दवाद की प्राप्ति में परोक्ष रूप से साधक ही सिद्ध हुआ है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार विषमताओं को शिव–शक्ति की नोंक–झोंक कहा जाता हैं।

9.3.7 परमाणुवाद :

प्रसाद के ऊपर परमाणुवाद का भी अच्छा प्रभाव था। उनके मतानुरूप सृष्टि का विकास परमाणुओं के सहयोग एवं संगठन से हुआ है। न्याय–वैशेषिक के अनुसार परमाणुओं के संयोग से स्थूलता एवं स्थूलतम पदार्थों का आविर्भाव होता गया जिससे, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि का आविर्भाव सम्भव हुआ। कामायनी में प्रसाद ने इस विचारधारा का बड़ी चतुरतापूर्वक विश्लेषण किया है। इनके अनुसार प्रारम्भ में रूपाकारहीन विराट् कुहामण्डल था, पुनः क्रमशः विद्युत् कण, परमाणुओं के संश्लेषण द्वारा प्रकृति के अनेक रूपों का आविर्भाव हुआ। प्रसाद ने समस्त ध्वंसित और विश्लेष्ति पदार्थों के एकीकरण का मूल आधार मूल शक्ति को ही माना है जिसके आलस्य त्याग मात्र से अणु–परमाणु एक दूसरे से संयोग करने के लिए व्यग्र हो जाते हैं–

वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई,
अपने आलस का त्याग किये,
परमाणु बाल सब दौड़ पड़े,
जिसका सुन्दर अनुराग लिए।
कुंकुम का चूर्ण उड़ाते–से,
मिलने को गले ललकते से,
अंतरिक्ष के मधु–उत्सव के,
विद्युत कण मिले झलाते से।

9.3.8 विकासवाद :

डार्विन के विकासवाद का प्रसाद जी की कामायनी पर गहरा प्रभाव पड़ा है। विकासवाद के तीन सिद्धान्त हैं–प्रथम परिवर्तन, द्वितीय अनुकूल वर्णन से जीवन के सामर्थ्य तथा गुणों का विकास एवं विपरीत से उनके पास, तीसरा शक्ति स्पर्धावाद। कामायनी में इन तीनों का स्वरूप व्यक्त हुआ है। संघर्ष सर्ग में प्रसाद जी विश्व को बंधनहीन परिवर्तन कहते हैं। अनुकूल परिवर्तन का उदाहरण इड़ा का निम्नांकित कथन है–

ताल–ताल पर चलो नहीं लय छूटे जिसमें
तुम न विवादी स्वर छेड़ो, अनजाने इसमें।

"स्पर्धा में जो उत्तर ठहरें, वे रह जायें," या "है परम्परा लग रही यहाँ ठहरा जितना बल है" आदि पंक्तियों में विकासवाद का शक्ति स्पर्धावाद स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पंत जी के शब्दो में तो यह कृति "केवल आधुनिक युग के संवाद से काल्पनिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रेरणा ग्रहण कर तथा अध्यात्म दृष्टि से वही चिर प्राचीन व्यक्तिवादी विकसित एवं समरस नित्य आनंद चैतन्य आरोहण मूलक आदर्श उपस्थित कर भारतीय पुनर्जागरण के काव्य–युग के अंतिम परिच्छेद की तरह समाप्त हो जाती है।" किन्तु यह आरोपण उचित नहीं, कामायनी में दुःखवाद, क्षणवाद आदि व्यतिरेक द्वारा आनंद–सिद्धि में सहायक हुए हैं।

9.4 सारांश :

कहा जा सकता है कि प्रसाद जी की निजी आस्था शैवदर्शन में अविचल है। दूसरे सिद्धान्तों को तो उन्होंने केवल व्यतिरेक के रूप में अपने मत को पुष्ट करने के लिए ग्रहण किया है। अतः बुद्धिवाद और उसके पोषक विकासवाद को कामायनी के पूर्व–पक्ष के अन्तर्गत ही मानना चाहिए जो व्यतिरेक की पद्धति से शैवाद्वैत पर आधारित आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करता है। शुक्ल जी का मत है कि–

"कामायनी में प्रसाद जी ने अपने प्रिय आनन्दवाद की प्रतिष्ठा दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ कल्पना की मधुमती भूमिका के आधार पर की है।"

कामायनी के दार्शनिक विचारों में व्यावहारिकता की प्रधानता उसके महत्त्व को और भी बढ़ा देती है। उसका 'आनन्दवाद' लोक–भोग के द्वारा ही लोक–मुक्ति उपलब्ध करने का संदेश देता है। वह प्रकृति के त्याग का नहीं, उसके सम्यक् ग्रहण की बात कहता है। उसे भोगवादी और निवृत्तिमूलक विवेकवादी दोनों ही मार्ग आग्रह्य हैं। वह कर्म की महत्ता का प्रतिपादन करता है, दूसरों के आनन्द में आनन्द लेना ही इस कर्म–मार्ग की अपूर्वता है। यह आनन्दवाद निराश एवं अवसाद की भर्त्सना कर ओज़स्विता, आशा और उल्लास का वरण करता है। इसके लिए नियति निरा भाग्य नहीं, विश्व की मांगलिक नियामिका शक्ति है। कामायनी का आनन्दवाद न तो भोगवाद है और न वैराग्य, वह राग–विराग समन्वित काम–प्रेरित कर्म का सन्देश देता है। उसका आनन्दवाद कर्मठ लोगों का आनन्दवाद है जो गीता के निष्काम कर्मयोग से भी बहुत कुछ मिलता–जुलता है। उसका महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि कवि ने दर्शन के नीरस विचारों को भाव और कल्पना का योग देकर उन्हें सरस एवं सुलभ बनाया है।

9.5 कठिन शब्द

1. रागत्मिका	6. आणव	11. निवृत्तिमूलक
2. प्रतीयमान	7. परिलक्षित	12. नियामिका

3. सामरस्य 8. संश्लेषण

4. प्रत्यभिज्ञा 9. ध्वंसित

5. कंचुको 10. व्यतिरेक

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1 कामायनी में व्यक्त दार्शनिकता के स्वरूप पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र2 कामायनी के संदर्भ में आनंदवाद को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

9.7 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1) कामायनी : एक अध्ययन :–डॉ. नगेन्द्र।

2) कामायनी अनुशीलन – रामलाल सिंह।

3) कामायनी, एक पुनर्विचार – मुक्तिबोध।

4) प्रसाद का काव्य – प्रेमशंकर।

5) कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन– इन्द्रनाथ मदान।

.....

कामायनी का महाकाव्यत्व/काव्य रूप

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.3 महाकाव्यत्व के लक्षण

10.4 कामायनी का महाकाव्यत्व

10.4.1 उदात्त विचार

10.4.2 उदात्त कथानक

10.4.3 उदात्त चरित्र

10.4.4 उदात्त भाव या अंगी रस

10.4.5 युग–जीवन तथा प्रकृति के विविध पक्षों का चित्रण

10.4.6 उदात भाषा शैली

10.4.7 छंद और सर्गबद्धता

10.4.8 नामकरण

10.5 सारांश

10.6 कठिन शब्द

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.8 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

10.1 उदेश्य :– प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

1) महाकाव्यत्व के लक्षणों को जान सकेंगे।

2) कामायनी के महाकाव्यत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।

10.2 प्रस्तावना

कामायनी के काव्यत्व पर विचार करने से पूर्व काव्य तत्व के विषय तत्व पर विचार–विमर्श करना आवश्यक हो जाता है। भारतीय भाषाओं का काव्य संस्कृत साहित्य से विशेष प्रभावित है। भामह संस्कृत–साहित्य के पहले आचार्य हैं जिन्होंने 'काव्यालंकार' में महाकाव्य के वस्तुशिल्प पर विशद व्याख्या प्रस्तुत की। परवर्ती आचार्यों में दण्डी, रूद्रट, हेमचन्द्र सूरि, विश्वनाथ आदि ने उनके ही विचारों को आधार बनाकर महाकाव्य के तत्त्वों की व्याख्या, प्रस्तुत की है और कुछ नये तत्त्वों को जोड़कर उसे युगानुरूपता प्रदान कर दी है।

10.3 महाकाव्यत्व के लक्षण

पन्द्रहवीं शताब्दी के महान् काव्याचार्य पं॰ विश्वानाथ ने अपने समस्त पूर्ववर्ती आचार्यों के विचारों का समन्वय कर लिया है। उनके अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु को इतिहास–प्रसिद्ध या सज्जन–चरित्र से सम्बद्ध, सर्गबद्ध तथा नाटकीय संधियों से युक्त होना चाहिए। प्रारंभ में मंगलाचरण, ईश्वर–वंदना, आशीर्वचन या कथावस्तु के निर्देश के बाद सज्जनों की प्रशंसा तथा दुर्जनों की निंदा भी उसमें रहनी चाहिए।

नायक शूरवीर या सद्वंशीय क्षत्रिय हो, उसमें समस्त धीरोदात्त गुण अर्थात्–गंभीरता, क्षमाशीलता, आत्मश्लाघाहीनता, स्थिरता तथा स्वाभिमान होना चाहिए। एक वंश के कई राजाओं में भी ये गुण हो सकते हैं और वे भी नायक बन सकते हैं।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से एक या अधिक फलों की प्राप्ति महाकाव्य का लक्ष्य हो तथा श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस प्रमुख हो शेष गौण हों।

न अति छोटे न अति बड़े कम से कम आठ सर्गों का विधान होना चाहिए। सर्ग के अंत में छंद बदल जाये पर कथा प्रवाह के लिए छंद की एकरूपता आवश्यक है। किसी–किसी सर्ग में अनेक छंद भी हो सकते हैं। सर्ग के अन्त में आने वाली कथा की सूचना पूर्वाभास–रूप में प्रस्तुत होनी चाहिए।

महाकाव्य में यथास्थान तथा सम्यक् अवसर पर प्रकृति के विभिन्न परिदृश्य तथा जीवन के विविध पक्षों का सांगोपांग चित्रण भी होना चाहिए।

ग्रंथ का नाम कवि, कथानक, नायक या अन्य पात्र के आधार पर ही होना चाहिए।

ये लक्षण पन्द्रहवीं शताब्दी तक के महाकाव्यों की परीक्षा के लिए तो सम्यक् हैं पर तब से आज तक काव्य कई सरणियाँ पार कर चुका है। अतएव आधुनिक युगीन स्वछंदतावादी महाकाव्यों का अध्ययन–परीक्षण उपर्युक्त लक्षणो पर नहीं किया जा सकता। नये काव्य–युग के जनक प्रसाद जी ने महाकाव्य के क्षेत्र में परम्परागत समस्त रूढ़ियों का

परित्याग कर उसका एक–निखरा हुआ भावात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है। उन्हीं की दृष्टि से पूर्व–छायावाद हिन्दी के समस्त महाकाव्य बुद्धिवादी हैं। उनमें घटना, वर्णन या चरित्र–तत्व की प्रमुखता है पर छायावाद व्यापक–रूप से भावोन्मेष का युग है अतएव महाकाव्य की वस्तु तथा कलागत शिल्प में परिवर्तन उपस्थित होना अतीव सहज, स्वाभाविक एवं युगानुरूप है। जो परिवर्तन आया है वह शिल्पगत ही है, महाकाव्य की आंतरिक गरिमा, महत्ता और उदात्तता में किसी प्रकार की कमी नहीं आई है। यही कारण है कि आधुनिक युग में जितने भी महाकाव्यों से संबधित शोध प्रबंध लिखे गये हैं, उनमें महाकाव्य के वस्तुगत तत्त्वों की विशदता, व्यापकता तथा उदात्तता पर विशेष बल दिया गया है।डॉ॰ शंभूनाथ सिहं द्वारा निर्देशित महाकाव्य के लक्षणों को समान रूप से सभी के द्वारा न्यूनाधिक रूप में स्वीकार किया गया है वे हैं–

1. महत्उद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य प्रतिभा।
2. गुरूत्व, गांभीर्य और महत्त्व।
3. महत् कार्य और युग–जीवन का समग्र चित्र।
4. सुसंगठित और जीवंत कथानक।
5. महत्त्वपूर्ण नायक।
6. गरिमामयी उदात्त शैली।
7. तीव्र प्रभावान्विति और गंभीर रस–योजना।

डॉ॰ नगेन्द्र ने कामायनी का महाकाव्यत्व जिन मूल तत्त्वों पर विश्लेषित किया है, वे इस प्रकर हैं : (1) उदात्त कथानक, (2) उदात्तकार्य और उद्देश्य, (3) उदात्त चरित्र, (4) उदात्त भाव और (5) उदात्तशैली। कहना नहीं होगा कि डॉ॰ सिंह तथा नगेन्द्र के इन निष्कर्षों में मात्र शाब्दिक अंतर है। 'महत्' को सरलता के साथ 'उदात्त' का पर्यायवाची माना जा सकता है। लोन्जाइनस ने काव्य में उदात्त तत्वों का ही विधान माना है। उनके अनुसार (1) उदात्त काव्य में महान् धारणाओं की क्षमता (2) उदात्त तथा भव्यावेग की तीव्रता (3) समुचित अलंकार–योजना (4) गरिमामय भाषा और (5) उदात्त तथा अर्जित रचना–विधान का होना अतीव आवश्यक है। इस तरह आधुनिक महाकाव्य के जो लक्षण निर्दिष्ट किये गए हैं वे उदात्त काव्य के ही लक्षण हैं। महाकाव्य को आवश्यक रूप से उदात्तकाव्य तो होना ही चाहिए किन्तु वह उदात्त काव्य का पूर्णतः पर्यायवाची नहीं है। खंड काव्य, वृहत्तर प्रगीतात्मक रचनायें या आख्यानक प्रगीतियाँ भी उदात्त काव्य का अंग होती हैं, प्रसाद जी की 'आँसू' एक ऐसी ही रचना है। इस स्थिति में महाकाव्य और उदात्तकाव्य में भेद करना आवश्यक है, क्योंकि औदात्य तो काव्यमात्र का लक्षण है।

पश्चिमी विद्वानों में डब्लू॰ पी॰ केर, डिक्सन, बावरा आदि ने भी महाकाव्य के विषय में जो विचार प्रकट किये हैं, उनमें अंतरंग वस्तु की उदात्तता, जीवन–व्यापी विशदता आदि पर विशेष महत्त्व दिया गया है और शिल्पपक्षीय तत्त्वों की अवहेलना की गई है। इसका कारण कदाचित् यह है बाह्य शिल्प कवि की प्रतिभा तथा कला–कुशलता पर अवलंबित है जबकि अंतरंग पक्ष समस्त मानवीय जीवन की गरिमा से। प्रथम पक्ष कवि तथा युग–सापेक्ष है और दूसरा निरपेक्ष।

बाह्य तत्त्व साधन है, अंतरंग साध्य, महाकाव्य के लिए उदात्तता दोनो ही स्तरों पर आवश्यक है किन्तु वह युग–युग का प्रकाशन–काव्य आंतरिक गरिमा तथा उदात्तता के कारण ही बनता है, कलात्मक उपकरण तत्त्वों को ही अधिक सबल, संप्रभावक तथा रमणीय बनाने में अपना योग प्रदान करते हैं।

10.4 कामायनी का महाकाव्यत्व

आचार्य विश्वनाथ ने जिन लक्षणों का निर्देश किया है, वे अधिक रूपात्मक हैं और लोन्जाइनस के तत्त्व उदात्त काव्य के परिपोषक। इन दोनों के संश्लेषण से एक ऐसी सार्वभौमिक कसौटी बनाई जा सकती है जिसके आधार पर आधुनिक–युगीन महाकाव्यों का सरलतापूर्वक परीक्षण किया जा सकता है। 'कामायनी' के महाकाव्यत्व पर विचार करने के लिए हम इन दोनों के सम्मिलित निष्कर्ष के साथ–साथ आधुनिक युग के काव्य की मूल प्रवृत्तियों को भीआधार बनाकर चल रहे हैं।

10.4.1. उदात्त विचार : औदात्य महान् आत्मा की प्रतिध्वनि होती है। महान् आत्मा से आशय उदात्त, गम्भीर और महत् विचारों या मन की ऊर्जा–शक्ति की उपस्थिति से है। 'कामायनी' में श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास प्रस्तुत किया गया है जो अपने आप में बड़ा ही भावमय तथा श्लाघ्य कार्य है। यह वस्तु मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास रूप में भी प्रस्तुत हुई है। दार्शनिक दृष्टि से प्रत्यभिज्ञा दर्शन का आनंदवाद इसका प्रमुख साध्य है जो समरसता द्वारा सहज लब्ध है। यह दर्शन केवल सैद्धांतिक रूप में प्रस्तुत न होकर मानवीय जीवन के व्यावहारिक धरातल पर प्रस्तुत हुआ है। इस रूप में यह अधिक प्रेरणा–प्रदायक तथा नवजीवन मूल्यों की स्थापना में सहायक सिद्ध हुआ है। यह पक्ष 'कामायनी' की चिरंतनता को उद्घाटित करता है। विषमताओं से मुक्ति और आनंद का अन्वेषण हर युग के जीवन की प्रमुख समस्या रही है, दार्शनिकों ने इसके लिए कर्मकाण्डी, यौगिक, तप, वैराग्यमूलक सैद्धान्तिक समाधान प्रस्तुत किए थे किन्तु 'कामायनी' में यह वस्तु श्रद्धा का अनुकरण करने पर इसी संसार में सहज ही प्राप्त हो जाती है। प्रसाद जी की यह निस्संदेह एक महानतम उपलब्धि है जो इस ग्रंथ को उदात्त काव्य बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

'कामायनी में युगीन समस्याओं का संश्लिष्ट चित्रण है। आधुनिक जीवन की यांत्रिकता, बुद्धिवाद, भौतिकवादी विचारधारायें आदि मनुष्य के व्यक्तित्व को खण्ड–खण्ड करके वर्ग–भेदों में बाँट रही है, मनसा, वाचा और कर्मणा में वैषम्य विडम्बनाओं की सर्जना कर रहा है, और नया मनुष्य अतृप्ति, अहंमन्यता, कुंठा, स्वार्थपरता काम–सुखादि में व्यस्त हो अपना ही दुश्मन बनता जा रहा है, जिसका प्रतिफल हमें हर दिन कहीं–न–कहीं सत्ता–संघर्षों के रूप में देखने को मिल रहा है, प्रत्येक दिन एक–न एक प्रजापति मनु अपने ही द्वारा बनाये गये नियमों का उल्लंघन कर जनता के साथ अतिचार कर रहा है। आधुनिक जीवन के ये गंभीरतम प्रश्न हैं जिनका समय पर समाधान न करने से भी विश्व में विस्फोट हो सकता है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में इनका स्वरूप स्पष्ट किया है और काम की अभिशाप वाणी द्वारा भविष्य निर्दिष्ट कर इन समस्याओं का व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत कर दिया है। वैचारिक दृष्टि से यह कार्य भी उदात्त है। आज के प्रश्न केवल भारत तक सीमित न होकर समग्र विश्व तक व्याप्त हैं। इस तरह 'कामायनी' अपनी वैचारिक सम्पदा में विश्वव्यापी समस्याओं का चित्रण तथा समरसता के माध्यम से उनका समाधान लेकर चली है। इस निष्कर्ष पर उसे विश्व काव्य की कोटि में सरलतापूर्वक रखा जा सकता है। मनु अर्थात् आधुनिक युग के सामान्य मानव का असत् से

सत् की ओर, अज्ञान से प्रकाश की ओर तथा दुःखमय जीवन से अमृत की ओर विकास प्रस्तुत करना इस ग्रंथ का परम लक्ष्य है। काम और अर्थ की युगीन परिधि से मनुष्य किस प्रकार धर्म मोक्ष के परिक्षेत्र में जीते जी पहुँच सकता हैं, 'कामायनी' इसका ही संदेश देने के लिए लिखी गई है।

सांस्कृतिक दृष्टि से इसमें तीन संस्कृतियों का व्यापक चित्रण किया गया है, देव, वन्य और भौतिक, ये क्रमशः काम, धर्म और अर्थ की प्रतीक हैं किन्तु परस्पर असंबंधित होने के कारण ये तीनों ही अपूर्ण, अतृप्ति एवं असंतोष की जनक हैं। मनु इन तीनों की परिधियों से निकल कर एक चतुर्थ मानवीय एवं सर्वश्रेष्ठ समरस संस्कृति का निर्माण करते हैं, जहाँ मूर्तमान रूप में मोक्षावस्था विद्यमान है यही मानवता का चरम विकास है जो हम में से प्रत्येक का लक्ष्य है। इस दृष्टि से भी कामायनी की वैचारिक उदात्तता प्रशंसनीय वस्तु है। इस वैचारिक धरातल पर 'कामायनी' युग–काव्य होते हुए भी युग–युग का काव्य बन जाती है।

डॉ॰ नगेन्द्र ने 'कामायनी' के कार्य को धर्म, राजनीति तथा विज्ञान अर्थात् भाव, क्रिया और ज्ञान की भूमिका पर भी प्रस्तुत किया है, जो बड़ा ही समीचीन है। इन तीनों में परस्पर ऐक्य न होने के कारण ही आज के जीवन में विषमता विद्यमान है मानवता के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हुए तीनों प्रवृत्तियों में एकात्मकता स्थापित करना आज की परमावश्यकता है। धर्म–संस्कृति, राजनीति तथा विज्ञान के समन्वित होते ही आज की सारी समस्याऐं समाप्त हो जायेंगी। इस तरह 'कामायनी' में सामयिक, सार्वकालिक तथा सर्वदेशीय समस्याओं का चिरंतन तथा व्यावहारिक समाधान जिस भव्य और अर्जित रूप में विद्यमान है, वैसा अन्यकाव्य ग्रंथों में देखने को नहीं मिलता है। उसका यह नव आयाम निश्चित रूप से उदात्त तथा महाकाव्यात्मक गरिमा से अभिमंडित है। इन उदात्त विचारों में हम प्रसाद जी की महत्प्रेरणा, महती काव्य प्रतिभा, महदुद्देश्य, गुरुत्व, गांभीर्य महत् कार्य एवं युग–जीवन का संश्लिष्ट चित्र भी देख सकते हैं।

10.4.2 उदात्त कथानक : महान् धारणाओं या उदात्त विचारों की क्षमता के लिए कथानक की उदात्तता भी आवश्यक होती है। लोन्जाइनस के शब्दों में विषय में ज्वालामुखी के समान असाधारण शक्ति तथा वेग और ईश्वर के समान वैभव एवं ऐश्वर्य होना चाहिए। विषय–चयन ऐसा होना चाहिए कि जिससे प्रभावित न होना कठिन ही नहीं लगभग असम्भव हो जाये और जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और विषय का विस्तार अनंत या जीवन–व्यापी हो। भारतीय विद्वानों ने इसे सुसंगठित और जीवंत भी होना आवश्यक निरूपित किया है।

'कामायनी' की कथावस्तु ऐतिहासिक पौराणिक है। यह देव–वर्गीय है। साथ–साथ आदि पुरुष तथा आदि नारी मनु–श्रद्धा के जीवन से सम्बन्धित हैं। 'कामायनी' की समग्र कथा अखिल मानव भावों के सत्य–मानव चेतना के इतिहास को भी प्रस्तुत करती है। मनु किस प्रकार चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्यादि से होते हुए अखण्ड आनंद की प्राप्ति करते हैं, यही इसकी कथा का सार अंश है। यह अंश इतना सार्वदेशिक और जन–जीवन–व्यापी है कि उसके अक्षय एवं उत्कट प्रभाव से बचे रहना पाठकों के लिए असम्भव हो जाता है। मनु का पूर्व–पक्ष पूर्णतः सामान्य मानव का पक्ष है जिस में चिंताये, उद्वेग, राग–विराग, ईर्ष्या, हिंसा, कर्म–वासना, असंतोष, द्वन्द्व, संघर्षादि सब कुछ अत्यंत प्रवेगशाली रूप में वर्तमान हैं। पुनः तीन तीन संस्कृतियों का समावेश हो जाने के कारण मनु के उपर्युक्त जीवन व्यापार और अधिक व्यापक तथा प्रशस्त–स्तर पर हमारे सामने उद्घटित होते हैं। व्यतिरेक के माध्यम से ये तीनों ही पक्ष मनु की आनंद प्राप्ति में सहयोगी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार 'कामायनी' की कथा असधारण

शक्ति, वेग और जीवन के महत् पक्षों से संबंधित है किन्तु उसका संविधान भावात्मक स्तर पर किया गया है जे इस कृति के सर्वथा अनुरूप है। यही कारण है कि इसका कथानक जीवंत तो है पर सुगठित नहीं, सुसंगठन के लिए उसे वर्णनात्मक या घटना प्रधान होना आवश्यक था, इसी स्थिति में उसमें नाटकीय संधियों, कार्यावस्थाओं और अर्थ प्रकृतियों के विधान द्वारा क्रमशः उत्कर्ष प्रदर्शित करना सरल होता है, पर 'कामायनी' में जब कथा ही भिन्न स्तर पर प्रस्तुत है तो वहाँ इनकी सुगठता का प्रश्न ही नहीं उठता, हाँ सर्व विधान में क्रमशः भावात्मक उत्कर्ष का स्वरूप निश्चित ही देखा जा सकता है, जो 'कामायनी' के कथानक की एक नवीन उपलिब्ध है। इस प्रकार कामायनी का कथानक मनोवैज्ञानिक भाव–विकास के स्तर पर अत्यंत सुगठित है।

इसका कथानक बाह्य घटनाओं से कम और मानव के आधिमानसिक जीवन से अत्यधिक सम्बन्धित है। बाह्य–संघर्ष, इसी का विवर्त है। आज मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के मन के भीतर चलने वले संघर्ष ही संसार में विनाश या निर्माणकारी कार्यों के रूप में अवतरित होते हैं। इस दृष्टि से भी 'कामायनी' में मानव–चेतना का घटना–चक्र कथानक का जीवंत रूप प्रस्तुत करता है। महाकवि की सारस्वत प्रज्ञा ने आधुनिक जीवन के मूल रहस्यों और वैज्ञानिक प्रगति से उत्पन्न गंभीर समस्याओं की प्रकृति को समझा तथा उन्हें इस महाकाव्य के कथानक–रूप में गुँथ दिया है। अपने इस रूप में 'कामायनी' की कथावस्तु निश्चित ही महत्त्वपूर्ण, नवीन और उदात्तता के तत्त्वों से युक्त है, उसमें भावात्मक विकास के स्तर पर सर्गों का नामकरण तथा उनका सुगठित संविधान भी विद्यमान है। इसकी कथा किसी एक महापुरुष की जीवन–गाथा या किसी राजवंश के इतिवृत से संबंधित नहीं है, वह एकदेशीय और किसी युग विशेष से भी अनुबंधित नहीं, बल्कि वह तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आदि से अंत तक–सम्पूर्ण मानवता के विकास की कथा है। इस तरह 'कामायनी' का कथा–फलक व्यापक है उसमें अन्य महाकाव्यों के समान सभ्यता और संस्कृति के खण्ड–चित्रों का विधान न होकर अखण्ड मानवीय संस्कृति की संश्लिष्ट योजना है। कथा–स्तर का यह कार्य निश्चित ही उदात्त, महत्तर और असंदिग्ध हो जाता है।

10.4.3 उदात्त चरित्र : उदात्त कथानक और महत्तर धारणाओं को वहन करने वाले नायक के चरित्र को भारतीय आचार्यों से आवश्यक रूप से महासत्त्व, अतिगंभीर, क्षमावान, स्थिर, निगूढ़ अहंकारवान औद दृढ़व्रत गुणों से युक्त माना है। किन्तु 'कामायनी' के महाकाव्यत्व को चारित्रिक दृष्टि से एक शिथिल कृति कहा है किन्तु तथ्य उसके ठीक विपरीत है। धीरोदात्त गुण सभ्यता और संस्कृति की विकसित–अवस्था की उपज है, साथ ही इनका दिव्य रूप वर्णनात्मक, घटनाप्रधान बुद्धिवादी महाकाव्यों मे निखरता है, पर 'कामायनी' में मनु आदि, पुरुष के रूप में अवतरित हैं, और इसमें वस्तु का विन्यास भावात्मक धरातल पर किया गया है। अतएव मनु में धीरोदात्त गुणों के समावेश से मानवता के विकास का लक्ष्य ही खंडित हो जाता, उसका प्रतीकात्मक चमत्कार भी नष्ट हो जाता और वैसी स्थिति में 'कामायनी' सभ्यता या संस्कृति के एकदेशीय, एकयुगीन खण्ड–चित्र को ही प्रस्तुत करने में असमर्थ रहती, अतएव नायक का एक समान मानव के रूप में चित्रण करना 'कामायनी' की कथावस्तु और उदात्त लक्ष्यों की प्राकृतिक माँग है और कवि ने उसका महाकाव्यीय रुढ़ लक्षणों को तोड़कर निर्वाह किया है। प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त, चाणक्य, स्कंदगुप्त आदि धीरोदात्त चरित्र नायकों की संरचना की है अतएव यह संभव नहीं था कि 'कामायनी' की सर्जना के समय उसके नायक के विराट् व्यक्तित्व की कल्पना का प्रश्न ही उनके सामने न उठा हो, किन्तु चरित्र का विधान अन्तर्मुख कथानक और कार्य के

विपरीत तो नहीं किया जा सकता इसलिए उन्होंने मनु का चरित्र विकासशील रूप में ही प्रस्तुत किया, मानवता के विकास की कथा को प्रस्तुत करने के लिए यह वांछनीय भी था। 'कामायनी' में चरित्र का समस्त उत्कर्ष श्रद्धा के व्यक्तित्व में देखा जा सकता है और इस प्रकार नायक के गुणों की क्षतिपूर्ति नायिका के महिमा–मंडित चरित्र द्वारा हो जाती है। नायक के धीरोदात्त लक्षणों का स्थानान्तरण नायिका में करके प्रसाद जी ने महाकाव्य की गरिमा को अखण्ड रखा है। श्रद्धा विश्व की करूणा मूर्ति है, वह मानवीय चेतना की समस्त उदात्त वृत्तियों–दया, माया, ममता, सेवा, सहानुभूति, त्याग, समर्पण, निष्कामता आदि की सजीव प्रतिमा है अतएव उसके चरित्र में विकास का प्रश्न ही नहीं उठता। वह स्वयं मनु अर्थात् मानव को समरसता तथा आनंद के पथ पर ले जाने वाली महत्तम शक्ति है, श्रद्धा के चरित्र–चित्रण में अखण्ड आनंद का वरण करने में समर्थ होते हैं। इस तरह श्रद्धा के ही माध्यम से मनु अखण्ड आनंद का वरण करने में समर्थ होते हैं। इस तरह श्रद्धा के चरित्र–चित्रण में 'कामायनी' की वस्तु–योजना तथा उद्देश्य सम्बन्धी कोई बाधा नहींथी अतएव प्रसाद जी ने उसका चरित्र उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत किया है। यही बात इड़ा के सम्बन्ध में भी रही है। उसका चरित्र भी ऐश्वर्य मंडित है। ऐतिहासिकता के साथ–साथ प्रतीकात्मकता के निर्वाह के प्रश्न भी सम्बद्ध रहने के कारण प्रसाद जी सीमा में बँधे रहे हैं, जो सीमा मनु के साथ है, वही श्रद्धा और इड़ा के साथ भी। अपने वर्तमान रूप मे भी 'कामायनी' में इनकी जो चारित्रिक गरिमा है, वह भव्य, उदात्त तथा महाकाव्यीय गुणों से सर्वथा सम्पन्न है।

10.4.4 उदात्त भाव या अंगी रस : भारतीय आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में श्रृंगार, वीर या शांत में से किसी एक रस की प्रमुखता होनी चाहिए। 'कामायनी' में शान्त रस प्रमुख है और श्रृंगार, वीर, वात्सल्य, भयानक, वीभत्सादि अंगी–रस हैं। शांत रस, निर्वेद न होकर हृदय की उदात्त या आनंदावस्था को लेकर चला है। इसीलिए उसे 'आनंद रस' की संज्ञा प्रदान की गई है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर इस रस का स्वरूप निर्मित किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि रसानुभूति तो एक विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है अतः उसकी दार्शनिक धरातल पर निष्पत्ति मानना कहाँ तक युक्तियुक्त है ? साधारणीकरण की स्थिति में सभी रस उदात्तता से युक्त होते हैं, ऐसी स्थिति में 'आनंद रस' या 'उदात्त शांत रस' अथवा मौलिक अर्थ में शान्त रस ये अभिधायें व्यर्थ हो जाती हैं। 'कामायनी' में समरसतापूर्ण या अभेदमय शांत रस की सत्ता भ्रांतिपूर्ण नहीं है। यदि प्रसाद जी के शब्दों में काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति माना जा सकता है तो 'कामायनी' में संकल्पात्मक शान्त रस की स्थिति को सहजता के साथ स्वीकार किया जा सकता है। यह स्थिति एकांकी, शांत या श्रृंगार की न होकर अखण्ड–रूपेण आत्म रस की है। इस तरह कामायनी की रस या भाव–योजना में भी सर्वथा नवीनता, उदात्तता तथा संश्लिष्टता वर्तमान है।

10.4.5 युग–जीवन तथा प्रकृति के विविध पक्षों का चित्रण : 'कामायनी' में आधुनिक मानवीय जीवन की गंभीरतम समस्याओं का चित्रण किया गया है। आज आत्मवाद, अनात्मवाद, बुद्धिवाद, यंत्रवाद, भौतिकवाद आदि संघातक विचार– धाराओं से विश्व–जीवन कितना आक्रांत है, और वह किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है, इसका सम्यक् चित्रण 'कामायनी' में उपलब्ध है। युग–जीवन को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने के कारण ही यह महाकाव्य युग–प्रतिनिधि ग्रंथ बन गया है। सार्वदेशिक युग–जीवन का इतना समीचीन प्रतिनिधत्व करने वाला 'कामायनी' की समकक्षता का अन्य कोई ग्रंथ आधुनिक काल में नहीं लिखा गया। उसकी यह विशेषता निश्चित ही महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त है।

प्राकृतिक–चित्रण की दृष्टि से भी यह ग्रंथ युग की प्रतिनिधि रचना सिद्ध होता है। इसके लगभग सारे क्रिया–कलाप प्रकृति की गोद में ही सम्पन्न होते हैं अतएव इसका समग्र कलेवर प्राकृतिक सुषमा से संयुत है। आलम्बन उद्दीपन, भावावृत्त रहस्य, दर्शन, उपदेश, भूमिका, सूचिका, प्रतीक, अलंकार, अन्योक्ति, समासोक्ति, मानवीकरण आदि जितने भी रूपों में काव्य में प्रकृति के वर्णन संभव हो सकते हैं, वे सभी 'कामायनी' में अंकित हुए हैं इस प्रकार प्रकृति भी कथावस्तु का एक अभिन्न अंग बनकर उपस्थित हुई है। प्रसाद जी प्राकृतिक क्षेत्र में उषा और मधु के कवि है जिसका प्रकाश और माधुर्य उनकी कला–योजना पर भी अक्षय रूप में आदि से अन्त तक पड़ा है।

10.4.6 उदात्त भाषा शैली : उदात्त काव्य के लिए उदात्त भाषा–शैली का प्रयोग सर्वथा आवश्यक होता है। भाषा की गरिमा का मूलाधार है–उपयुक्त तथा प्रभावक पद–विन्यास। लोन्जाइनस के मतानुसार सुंदर, सामंजस्यपूर्ण शब्द येजना ही उदात्त विचारों को आलोक प्रदान करती है। लालित्यपूर्ण भाषा से ही किसी रचना में सुंदर मूर्तियों कीभाँति भव्यता, सौन्दर्य, गरिमा, ओज, शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठगुणों का आविर्भाव होता है, जिनसे मृतप्राय वस्तुएं भी जीवंत हो उठती हैं। कामायनी की भाषा का सौष्ठव भी ठीक इसी प्रकार का है। सम्यक् शब्द–योजना तथा भाषा की मूर्ति–विधायिनी शक्ति में प्रसाद जी अप्रतिम हैं। शब्द की लक्षणा तथा व्यंजना शक्तियों का प्रयोग करने के कारण 'कामायनी' की गणना ध्वनि काव्य में होती है, जिसे भारतीय आचार्यों ने एक स्वर में श्रेष्ठ काव्य कहा है। कवि–कर्म–जन्य वक्रोक्तियों की भी 'कामायनी' में अतिशयता है। अप्रस्तुत–योजनाओं का रूप, गुण, धर्म, प्रकृत्ति, रंग, प्रभाव आदि की दृष्टि से समीचीन प्रयोग भी इस ग्रंथ की अन्यतम उपलब्धियाँ हैं जो उसे उदात्त और महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त कर देती हैं।इसमें छायावादी काव्य के समस्त कलापक्षीय लक्षणों का चरम स्वरूप देखा जा सकता है। छायावाद वस्तु की दृष्टि से लाक्षणिकता, व्यंजनात्मकता, ध्वन्यर्थता, प्रतीकात्मकता आदि उसके प्रमुख अवयव रहे हैं। 'कामायनी' की वस्तु–योजना युगप्रभाव के अनुकूल भावात्मक ही रही है, और अपनी वस्तु के अनुरूप उसकी कलात्मक संरचना उसे छायावाद युग की प्रतिनिधि एवं अन्यतम कृति बना देती है।

भाषा–शैली की उदात्तता तथा असाधारणता ने 'कामायनी' को युगानुरूप प्रगीतात्मक उन्मेष प्रदान किया है जिसके कारण इसमें वर्णनात्मक तथा इतिवृत्तात्मक अंशों का सर्वथा अभाव हो गया है। संपूर्ण कथा का विकास आत्म–चिंतन, संवाद, स्वगतकथन, स्वप्न या प्राकृतिक दृश्य–विधानों के माध्यम से किया गया है, इस प्रक्रिया से 'कामायनी' में नाटकीय और अभिनेय तत्त्वों का भी आधिक्य हो गया है और यह एक सर्वथा कलात्मक कृति बन गई है।

महाकाव्य की शैली में नाना वर्णन क्षमा, विस्तार–गर्भा, अतीव प्रवाहमयता आदि विशेषताओं का होना भी आवश्यक माना गया है। 'कामायनी' में सूक्ष्म और व्यापक, मूर्त और अमूर्त, मानसिक और भौतिक सभी तत्त्वों का समान रूप से चित्रात्मक वर्णन किया गया है किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है, 'कामायनी' का वस्तु विधान अन्तर्मुखी है अतएव इसमें विविध भावों, अनुभावों और संचारियों के ही सजीव चित्र सर्वाधिक रूप से मिलते हैं, वस्तुगत वर्णन तथा विस्तारगर्भत्त्व की विशेषतायें वर्णनात्मक महाकाव्यों में ही पायी जाती हैं। भावोन्मेषों अंतसंघर्षों, या आत्मोद्‌गरों की अतिशयता के कारण प्रवाह में सर्वत्र तीव्रता, उत्कटता, और संवेदनशीलता भी विद्यमान है। समग्रतः 'कामायनी' की भाषा–शैली, निश्चित ही उदात्त तत्त्वों से युक्त है और उसमें महाकाव्य की पूर्ण गरिमा समाहित है।

10.4.7 छंद और सर्गबद्धता : भारतीय महाकाव्य के निर्धारित लक्षणों के अनुसार 'कामायनी' के प्रत्येक सर्ग में आद्यंत एक ही छंद का प्रयोग भी किया गया है।

'कामायनी' में कुल 15 सर्गों का विधान है। सर्गों का नामकरण उनमें निहित मूल भावना–व्यापारों के आधार पर ही किया गया है। कुछ सर्गों के अंत में अगले सर्ग की कथा का पूर्वाभास भी व्यंजनात्मक रूप से प्रस्तुत कर दिया गया है, यथा चिंता, काम, स्वप्नादि सर्गों में। इस प्रकार छंद–विधान तथा सर्गबद्धता भी 'कामायनी' में महाकाव्य की गरिमा से रहित नहीं हैं।

10.4.8 नामकरण : कृति का नामकरण नायिका के नाम के आधार पर किया गया है। काम की पुत्री होने के कारण श्रद्धा का दूसरा नाम कामायनी है। कामायनी में श्रद्धा आद्याशक्ति की इच्छा का ही संदेश सुनाने के लिए अवतरित हुई है। 'काम गोत्रजा' से भी यही ध्वनि निकलती है–काम के गुणों से युक्त भावना। सृष्टि–विकास के मूल में काम तत्त्व ही विद्यमान रहता है, 'कामायनी' में श्रद्धा ही मनु को काम–पथ पर अग्रसर करती है और वही उन्हें पूर्ण काम–पस पुरुषार्थमय भी बनाती है। इस दृष्टि से ग्रंथ का नामकरण अतीव सार्थक है।

नायक मनु काम–मार्ग पर अग्रसर होने वाला एक सामान्य पथिक मात्र है, वे काम या इच्छा–लोक में निराधार भटकते रहते हैं, उनका चरित्र भी उदात्त तथा महाकाव्यी गरिमा से युक्त नहीं है, वस्तुतः उनके द्वारा मानव से मानवता के आनंद तक की यात्रा प्रस्तुत करना इस ग्रंथ का प्रमुख साध्य रहा है, श्रद्धा जिसकी मूल प्रेरणा का केन्द्र है :

'भाव चक्र यह चला रही है, इच्छा की रथ नाभि घूमती
नव रस–भरी अराँए अविरल, चक्रवाल को चकित चूमती।'

अतः 'मनु' अर्थात् नायक का नाम भी उसके क्रिया–व्यापारों के आधार पर नामकरण करने से महाकाव्य की समष्टिगत वक्रोक्ति विघटित हो जाती है। जबकि नायिका के नाम के आधार पर इसका मूल संदेश तथा नायक के क्रिया –व्यापरों का प्रतिनिधित्व हो जाता है। श्रद्धा नाम रखने से नायक की विशेषतायें ध्वनित न हो पातीं अतः यह नाम समग्र कृति के संप्रभाव और वैशिष्ट्य का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता। कामायनी को स्वयं प्रसाद जी ने जगत् की अकेली मंगलकामना तथा मानस तट की ज्योतिमयी प्रफुल्लित वन–वेलि कहा है। व्यंजनात्मक रूप से यही वस्तु 'कामायनी' की समरसता और आनंदवाद का स्वरूप भी प्रस्तुत करती है। अतएव समग्र दृष्टियों से यह नाम गरिमामंडित है। नायिका के आधार पर नामकरण की यह परंपरा भी सर्वथा नवीन और युगान्तरकारी है।

10.5 सारांश

इस तरह उदात्त काव्य के सारे तत्त्व 'कामायनी' में अपने चरम रूप में विद्यमान हैं। भारतीय आचार्यों के महाकाव्य के लक्षणों एवं नायक की धीरोदात्तता को छोड़कर शेष समस्त तत्त्व भी कामायनी में अपनी परिपूर्ण गरिमा के साथ उपस्थित हुए हैं। इसकी कथानक–योजना पर आधुनिक स्वच्छंतावादी काव्य–प्रवृत्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा है और वह बुद्धिवादी या वर्णनात्मक न होकर भावात्मक–रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु मानव चेतना की अखिलता से संबद्ध

होने के कारण ये पक्ष भी इस महाकाव्य में उदात्तता, विद्यमानता से यह ग्रन्थ और भी अधिक महत्त्वपूर्ण गरिम को लेकर प्रस्तुत हुआ है। तथा हिन्दी की एक अद्‌भुत उपलब्धि बन गया है। अन्य आधुनिक महाकाव्य इसकी उदात्तता, गुरूता, गंभीरता, महत्ता, सार्वदेशिकता आदि की तुलना नहीं कर सकते।

10.6. कठिन शब्द

1)	धीरोदात्त	5)	प्रत्यभिज्ञा	9)	उन्मेष
2)	सांगोपांग	6)	श्लाघ्य	10)	संबद्ध
3.	भावोन्मेष	7)	अतिचार		
4)	संप्रभावक	8)	संश्लिष्ट		

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. कामायनी के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डालिए?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र2 कामायनी की कथावस्तु का विवचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

10.8 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

1) कामायनी : एक अध्ययन : डॉ नगेन्द्र।

2) कामायनी अनुशीलन – रामलाल सिंह।

3) कामायनी एक पुनर्विचार – मुक्तिबोध।

4) प्रसाद का काव्य–प्रेमशंकर।

5) कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन– इन्द्रनाथ मदान।

.....

कामायनी में इतिहास और कल्पना

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 कामायनी में इतिहास और कल्पना

11.3 सारांश

11.4 कठिन शब्द

11.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.6 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

11.1 उद्देश्य : प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

1) कामायनी में इतिहास एवं कल्पना के सुंदर सम्मिश्रण से अवगत हो सकेंगे।

2) प्रसाद जी द्वारा दार्शनिक सिद्वान्तों के आधार पर कथा को नवीन मोड़ दिया गया है उसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3) कामायनी में जो मौलिक नवीन उद्भावनाएँ की गई हैं उसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

4) कामायनी के माध्यम से आधुनिक युग को दिये गए संदेश से अवगत हो सकेंगे।

11.2 कामायनी में इतिहास और कल्पना

कामायनी का प्रारम्भ महाकवि प्रकृत्ति के उग्र वातावरण के माध्यम से करता है। प्रकृत्ति का झंझावावत एवं महाजलप्लावन की विकराल लहरें विलासिता की नदी में थिरकती हुई देवजाति को सदा के लिए अपने में समा देने के लिए उद्यत हैं। समुद्र मर्यादाहीन हो गया है, पृथ्वी कांप रही है, दिशाओं का अस्तित्व छिप गया है। पृथ्वी कोलाहल से काँप रही थी और सृष्टि धीरे–धीरे जलासीन होती जा रही थी। प्रकृति एवं देवजाति के विषम संघर्ष मे देवजाति का

अस्तित्व समाप्त हो गया है और जल का अथाह सागर अपने आप में हर्षानुभव कर रहा था। ऐसी विकट परिस्थिति में एक पुरुष मर्मवेदना को लिए हुए प्रकृति का भीषण उपद्रव अपने भीगे नेत्रों से देख रहा था। उसके ऊपरहिम प्रदेश की गगनचुम्बी शिखाएं शान्ति एवं शोक की सूचना दे रही थीं तो नीचे प्रलय का प्रवाह देवजाति के अस्तित्व को समाप्त कर मुस्करा रहा था–

हिम गिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था एक सधन
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।
दूर–दूर तक विस्मृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान,
नीरवता सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान।
तरूणा तपस्वी–सा वह बैठा
साधन करता सुर–श्मशान
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का,
होता था सकरूण अवसान।

जलप्लावन की मर्यादा टूटने लगी, जल के उतार में भी अंतर आ गया। चिन्ता में निमग्न मनु के हृदय में आशाओ का सेतु बनने बिगड़ने लगा। इसी परिस्थिति में मनु को अपने प्राचीन वैभव एवं अतीत का स्मरण हो उठता है।जिससे उनके युगल नेत्र चित्रपट की तरह अपने आप में अनेक चित्र समेटने लगते हैं।

इसी बीच उन्हें जलप्लावन के विकासक्रम का स्मरण होता है जिससे उनके मानस पटल पर प्रकृति के विकराल रूप का चित्र अंकित हो जाता है। प्रलयकालीन भयंकर परिस्थितियों के चित्रण में निश्चय ही प्रसाद जी का कोई सनी नहीं। 'कामायनी' का आरम्भ ही अत्यन्त भयानक एवं करूणा विगलित दशाओं से किया गया है जो स्वतः पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है।

जलप्लावन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का ही कथानक नहीं है, अपितु विश्व संस्कृति का एक भयानक एवं मार्मिक प्रसंग है। जलप्लावन भारतीय संस्कृति में एक महत्वपूर्ण घटना है। इस कथा का पोषण सदियों तक धार्मिक ग्रन्थों में ही होता रहा है और आज भी विश्व की अनेक संस्कृतियों में हो रहा है। कुछ विकसित भाषाओं के साहित्य में इसे अवश्य स्थान

प्राप्त हुआ है। परन्तु इसकी मूल कथा का रूप विश्व की अनेक संस्कृतियों में अलग–अलग ढंग से वर्णित है। कथा के अनेकरूपता के भी अनेक कारण माने जा सकते हैं जिसमें कथानक की मौलिकता प्रधान है। होमर ने कहा है–'सूर्य सागर के प्रवाह की ओर भागा जा रहा है। सागर, निर्झर सरोवर सभी महासागर से निकले हैं, जो पृथ्वी को घेरे हुए हैं। सूर्य स्वर्ण नौका में पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहा है।' यूनानी संस्कृति में जलप्लावन की कथा का विकास दो रूपों में हुआ है। Dgygian Deluge के अनुसार अटिका जलमय हो गया था। अन्य कथा Deukalion Flood की है। इसका वर्णन 140 ई॰ पूर्व (Appollodorus) अपालोडोरस ने अपनी पुस्तक Billiliotheca 1–7–2 में किया है। Zeus ने अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए ताम्रयुग के व्यक्ति Deukalion का विनाश करना चाहा। अपनी रक्षा के लिए अपने एक कवच का निर्माण किया। उसी में वह अपनी पत्नी Pyrrha के साथ बैठ गया। Zeus ने भीषण जलवृष्टि से समस्त पृथ्वी को डुबा दिया। सभी कुछ विनष्ट हो गया। वे दोनों पति पत्नी नो दिन के पश्चात् पैरासस स्थान पर पहुँचे। उसी समय जलप्लावन कम हुआ। यहीं उन्होंने देवताओं के लिए अपने अंग रक्षक की बलि दे दी। प्रसन्न होकर Zeus ने उनकी इच्छा जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने सन्तान की कामना प्रकट की। इस पर पत्थर फेंके गये। जो Deukalion ने फेंके वे पुरुष और जो Pyrrha ने फेंके वे नारी हो गये। इसी प्रकार बाइबिल के देवता नूह को किसी प्रकार जलप्लावन की घटना की जानकारी हो जाती है और वह अपने तथा अपने दोस्तों के साथ एक नाव में बैठ जाता है और अपनी रक्षा करता है। नौका जल वेग के साथ प्रवाहित होती अराकान पर्वत पर रुक गई। दसवें मास के प्रथम दिन जब जलप्लावन का वेग उतर गया तो नूह प्रसन्नतापूर्वक नीचे उतरा तथा भावी सृष्टि की रचना की। विश्व संस्कृतियों में वर्णित जलप्लावन की कथा से नाव एवं पर्वत विशेष सम्बन्धित हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है कि मनु की नौका उत्तर गिरि के पास एक वृक्ष के सहारे रुकी थी।

इसी प्रकार बेबीलोनिया के साहित्य में जलप्लावन की घटना का उल्लेख प्राप्त होता है। भारतीय साहित्य में जलप्लावन की घटना का विकास अनेक–रूपों में हुआ है। एक ही संस्कृति में इसी कथानक के अनेक रूप प्राप्त हो जाते हैं परन्तु कथानक का मूल रूप शतपथ ब्राह्मण में ही सुरक्षित है। शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय में कहा गया है–एक दिन प्रातः काल जब मनु ने आचमन के लिए हाथ में जल लिया तो उसमें एक छोटी मछली दिखाई पड़ी। उसने मनु से कहा कि मेरा पालन करो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। मनु के यह पूछने पर कि तुम कैसे मेरी रक्षा करोगी, मछली ने बताया कि जलप्लावन होने वाला है। जिसमें सभी प्रजा नष्ट हो जायेगी, मैं उसी से तुम्हारी रक्षा करुँगी। मनु ने उसे पहले कुम्भ में, फिर गड्ढे में रखा और अन्त में छोड़ दिया। महामत्स्य बन कर उसने मनु से कहा कि अमुक वर्ष में अमुक तिथि को जल–प्लव होगा, तुम एक नाव तैयार करके उसमें बैठ जाना। मनु ने ऐसा ही किया। जलप्लावन प्रारम्भ होने पर वह महामत्स्य मनु की नाव के पास आई, मनु ने एक रस्सी से नाव को मत्स्य के सींग में बाँध दिया। मत्स्य उसे खींचकर उत्तर गिरि के पास ले गया और मनु से कहा कि अब मैंने तुम्हारी रक्षा कर दी, अपनी नाव वृक्ष से बाँध दो। ज्यों–ज्यों जल नीचे उतरता है त्यों–त्यों नाव द्वारा तुम भी नीचे उतरते जाना। मनु ने ऐसा ही किया और इसीलिए उस स्थान या अवतरण–पथ को 'मनोरवसर्पण' कहा जाता है। ओद के समाप्त होने तक सभी प्रजा नष्ट हो चुकी थी, अकेले मनु बचे रह गए। इसी कथा से मिलती–जुलती कथा का विकास महाभारत में भी हुआ है। परन्तु इस कथा में मनु के साथ सप्तऋषियों के बचने का भी उल्लेख मिलता है। भारतीय संस्कृति जलप्लावन की घटना से विशेष प्रभावित है। तभी तो इस घटना का वर्णन आग्नेय पुराण, विष्णु पुराण,

भागवत् पुराण, पद्म पुराण, स्कन्द पुराण, कालिका पुराण, भाविष्य पुराण आदि में हुआ है।

विश्व इतिहास के पृष्ठों में बिखरी जलप्लावन की कथा को देखने के पश्चात् हमें जलप्लावन की वैज्ञानिकता के विषय में भी समझ लेना चाहिए। यदि इस कथा की वैज्ञानिकता सिद्ध हो जाती है तो निश्चय ही ऐतिहासिकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। भूगर्भ शास्त्रियों की धारणा है कि समयानुसार पृथ्वी के विशेष खंड समुद्र में डूब जाते हैं। भूमि पर जल ही जल हो जाता है। बहुत समय तक सागर ही सागर दिखाई पड़ता है। धीरे–धीरे पृथ्वी का ऊँचा भाग जल में गलने लगता है और सागर की तलहटी में तमाम तलछल जमा होती रहती है। तभी क्रमशः स्थिति में परिवर्तन होता है और पर्वत खड़े हो जोते हैं। डॉ॰ वाडिया का विचार है कि प्राचीन काल से ही हिमालय और तिब्बत के निकट समुद्र का मल इकट्ठा होता रहा। क्रमशः वह ऊपर उठने से ऊँचा होने लगा। अन्त में सागर विलीन हो गया और उसके स्थान पर संसार का महान हिमालय पर्वत दृष्टिगोचर होने लगा।

भारतीय संस्कृति एवं विश्व–संस्कृति के प्रसिद्ध कथानक की वैज्ञानिकता समझने के पश्चात् अब हमें कामायनी की कथा की पृष्ठभूमि समझ लेनी अत्यावश्यक है जिस से कामायनी की ऐतिहासिकता समझने में किसी प्रकार की परेशानी नहीं उपस्थित हो सकती है। प्रसाद जी ने स्वयं कामायनी की कथा की ऐतिहासिकता स्वीकार की है–'आर्य–साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराण और इतिहास में बिखरा मिलता है। श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण, चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रत्यन हुआ जो जैसा कि सभी वैदिक इतिहासों के साथ निरूक्त के द्वारा किया गया, किन्तु मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्त्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुभूति में दृढ़ता से मानी गई है। इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है। जलप्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी ही प्राचीन घटना है, जिसने मनु को देवों से विलक्षण मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। वह इतिहास ही है। इस घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय में मिलता है। देवगण के उच्छृङ्खल स्वभाव, निर्बाध आत्मतुष्टि में अन्तिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नये युग की सूचना मिली। इस मन्वन्तर के प्रवर्त्तक मनु हुए। मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं। राम, कृष्ण और बुद्ध इन्हीं के वंशज हैं। शतपथ ब्राह्मण में उन्हें श्रद्धा देव कहा गया है, "श्रद्धा देवों वै मनु" भागवत् में इन्हीं वैवस्वत मनु और श्रद्ध से मानवीय सृष्टि का प्रारम्भ माना गया है।

प्रसाद जी की कामायनी का मूल आधार शतपथ ब्राह्मण ही है परन्तु प्रसाद जी ने शतपथ की कथा को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया है। इस कथा को अपने युग एवं विचार के अनुकूल प्रसाद जी ने ढाल लिया है। आधुनिक युग की मान्यताओं एवं विचारधारा के अनुसार कामायनी का मूल्यांकन किया जाये तो यह कहना पड़ेगा कि कामायनी की कथा ऐतिहासिक नहीं है क्योंकि इस कथा का सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल से है। भारतीय अतीत के खण्डहरों में पुराणों एवं वेदों का खोजपूर्वक अध्ययन किया जाये तो पता चलेगा कि ये काव्य मूलतः प्राचीन इतिहास हीहैं। पाश्चात्य विद्वान पार्जिटर ने इस मत को स्वीकार किया है कि वास्तव में पुराण भारतीय इतिहास की धरोहर हैं। पुराणो में वर्णित राजाओं एवं उनके परिवारों की कथा का क्रम नहीं है, इसका मूल कारण पुराण जनों द्वारा उनका चरित्रांकन है। पुरा वेत्ताओं की पीढ़ी युगों तक पुराण की कथा को मौखिक याद रखे हुए थी। अस्तु इसकी घटना में काफी उलट फेर दिख

पड़ता है। हमारे पुराणों के अनुसार आदि क्षत्रिय वंश मुख्यतया तीन थे–

1. सूर्य वंश
2. चन्द्र वंश
3. यदु वंश

इन तीनों वंशों के पूर्वज मनु ही हैं। पुराणों के अनुसार मनु के सात पुत्र थे। परन्तु कामायनी में प्रसाद जी ने मनु का एक ही पुत्र (शयोति या मानव) माना है। इक्ष्वाकु वंश से सूर्य वंश की उत्पत्ति हुई जिसमें दिलीप, रघु, अज और बाद में चलकर राम जैसे महामानव का आविर्भाव हुआ। *वशिष्ट* के शाप से इला (इड़ा) के रमणी हो जाने पर बुद्ध उससे मोहित हो गया, जिससे पुरूरवा की उत्पत्ति हुई। यदु वंश में सबसे प्रतापी कृष्ण और चन्द्र वंश में प्रातः स्मरणीय महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ। काव्य इतिहास के पृष्ठों से मनोरम एवं भावपूर्ण कथानक लेता है और उसे अपनीकल्पना के रंगों से अलंकृत करता है। अतीत के गर्त में छिपी घटनाओं को यथार्थ रूपेण वर्णन कर देना इतिहास हैऔर उसमें भावुकता एवं तर्क का समावेश कर देना काव्य है। काव्य इतिहास से केवल कथानक का आधार ग्रहण करता है और युग एवं कल्पना से सहसम्बन्ध स्थापित कर अपने वास्तविक रूप का विज्ञापन देता है। ऐतिहासिक काव्यकार के लिए ऐतिहासिक वातावरण बनाना पड़ता है और उसी के अनुरूप अपने कथानक का विकास करता है। यदि वह अपने कथानक के वातावरण का निर्वाह अच्छी तरह नहीं कर पाता है तो निश्चित ही उसका काव्य निम्नकोटि का हो जाता है। कामायनी के कवि ने अपने काव्य के कथानक को उचित वातावरण में ढालने का प्रयास किया है और उसे सफलता भी मिली है।

कवि को कथानक की कड़ियों को जुटाने में कल्पना का काफी सहारा लेना पड़ा है। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं अपने आमुख में कर दिया है। कामायनी का पूर्वार्द्ध भाग पूर्णतया इतिहास के पृष्ठों पर आधारित है। जिसकासम्बन्ध किसी न किसी रूप से शतपथ ब्राह्मण से है। जहाँ पर कामायनी के कथानक पर शतपथ का विशेष प्रभाव है वहीं पर मूल कथा में कवि ने काफी परिवर्तन भी किया है। शतपथ के अनुसार मनु की नाव मत्स्य के सींग में बँधी थी परन्तु कामायनी में मनु की नाव मत्स्य की चपेट से उत्तुंग शिखर पर पहुँचती है। परिवर्तन का मूल कारण इतिहास की सुरक्षा है। आदि पुरुष जो प्रलय के झंझावत से लड़ते हुए जीवन की मंजिल पर पहुँचता है उसका उल्लेख करते हुए कवि लिखता है–

अवयव की दृढ़ मांस–पेशियाँ,
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का,
होता था जिसमें संचार।
चिंता–कातर वदन हो रहा,
पौरूष जिसमें ओतप्रोत
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत।
बँधी महावट से नौका थी,

सूखे में अब पड़ी रही,
उतर चला था वह जल–प्लावन
और निकलने लगी मही।
निकल रही थी मर्म वेदना।
करूणा विकल कहानी सी,
वहां अकेली प्रकृत्ति सुन रही,
हंसती सी पहचानी सी।

शतपथ के अनुसार प्रलयकालीन स्थिति के समाप्त होने पर मनु यज्ञ करते हैं और अवशिष्ट अन्न को देखकर उनके पास श्रद्धा का आगमन होता है। परन्तु कामायनी में अवशिष्ट अन्न को देखकर श्रद्धा किसी जीवित प्राणी की तलाश मेंआती है और उसकी भेंट मनु से होती है। इस परिवर्तन का मूल कारण कवि की अपनी कल्पना है, जिसका आधार कथानक को आगे बढ़ाना है। प्रसाद का कवि श्रद्धा मिलन के साथ का दृश्य प्रस्तुत करते हुए श्रद्धा सर्ग में लिखता है–

कौन तुम? संसृति–जलनिधि तीर
तंरगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक?
मधुर विश्रांत और एकान्त–
जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करूणामय सुन्दर मौन,
और चंचल मन का आलस्य।

जीवन से हार माने हुए मनु को श्रद्धा के द्वारा प्रेरणा प्राप्त होती है। श्रद्धा इसी प्रसंग में मनु को शैवागम दर्शन के कुछ सिद्धान्त बताती है। मनु का इड़ा के प्रति आकर्षित होना, इड़ा को मनु की दुहिता बताना, इड़ा से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना आदि घटनाएं शतपथ के अनुकूल हैं और कामायनी के सौन्दर्य को उद्दीप्त करने में विशेष सहायक होती हैं। जँहा पर कवि ने कामायनी के पूर्वार्द्ध की घटनाओं को इतिहास के पृष्ठों से जोड़ने का प्रयास किया है वहीं पर कामायनी के उत्तर्रार्द्ध की घटनाएं प्रायः अधिकांश कल्पित हैं। कवि का लक्ष्य सदैव अपने कथानक की पूर्णता की ओर रहता हैअस्तु कथानक को निर्बाध गति से गतिशील करने के लिए अपनी कल्पना का विशेष सहारा लेना पड़ता है। यही कारण हैकि कामायनी के उत्तरार्द्ध की घटनाएं जैसे श्रद्धा का स्वप्न, श्रद्धा का मनु से युद्ध भूमि में मिलन, मनु, इड़ा एवं श्रद्धा का वार्तालाप मनु का दुःखित होना और भाग जाना इत्यादि घटनाएँ केवल कथानक के विकास में ही सहायक होती हैं।

कामायनी के कथानक में प्राचीनता होने के कारण पात्रों के साथ रूपक तत्व भी काम करते हैं। कामायनी की घटनाओं का सम्बन्ध मनुष्य के दैनिक जीवन से मेल खाता है। इस के कथानक का विकास भी मनुष्य के हृदय मेंउत्पन्न होने वाली भावनाओं के साथ सम्बन्धित है। यदि प्रलयकालीन स्थिति से मनु भयभीत हैं तो स्वतः उनके हृदय में अपने चिंत जीवन

के ढहते हुए खंडहरों के प्रति मोह है। प्रलय का अवसान होते होते उनके हृदय में आशा का संचार होता है और क्रमशः श्रद्धा काम आदि तत्वों के विकास से मनु की मानसिक स्थिति का ज्ञापन पाठकों को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार कामायनी के रूपक तत्व भी बड़े ही उत्कृष्ट हैं। प्रसाद जी ने स्वतः कामायनी की ऐतिहासिकता के साथ इसके रूपक तत्व को भी स्वीकार किया है–'यह उपाख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक आस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है–श्रद्धा, हृदय माकूत्या श्रद्धया विन्दतेवसुः। (ऋग्वेद 10–151–4) इन्हीं सब के आधार पर कामायनी की कथा सृष्टि हुई है।

इस संक्षिप्त विवेचन से हमें प्रसाद जी के व्यापक एवं गहन अध्ययन की जानकारी हो जाती है। सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय का मंथन कर प्रसाद जी ने उसके तत्व को भारतीय संस्कृति के खंडहरों से ढूँढ निकालकर अपने चिन्तन युग के अन्तिम चरण में जो 'कामायनी नाम का रत्न' अपने पाठकों को दिया उसकी तुलना हिन्दी में लिखे गए अब तक के काव्यों से सम्भव नहीं है। कामायनी अपने आप में भारतीय अतीत का इतिहास प्रकट करते हुए भी अपने उत्कृष्ट रूपकों के द्वारा हिन्दी जगत् के पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है।

जलप्लावन की विकरालता के समक्ष, सम्पूर्ण जड़ चेतन जीवन एवं भौतिक जीवन के उपादानों का अन्त हो गया है। एक तरफ हिम प्रदेश का उत्तुंग शिखर शान्ति एवं शालीनता को प्रकट कर रहा था तो दूसरी तरफ अथाह् जलसागर लहरों के कोड़ों से जड़ चेतन जगत् को थपेड़े दे रहा था। कवि हृदय की वेदना का विकास इतनी द्रुतगति से होता है कि उसकी काल्पनिक वेदना का सम्बन्ध मनु की करूणा–जन्य व्यथा से हो जाता है। समाज एवं संस्कृति के अस्तित्व के समाप्त हो जाने पर महाकवि को अपने नायक मनु के परितोष के लिए श्रद्धा को शीघ्र मिलाने की आवश्यकता थी। इसलिएवहां श्रद्धा का मिलन निश्चय ही काफी समय पश्चात् हुआ होगा। परन्तु प्रसाद जी अपने कथानक को अबाधगति से आगे बढ़ाने के लिए इनका मिलन शीघ्रतिशीघ्र कराते हैं। ऐतिहासिक प्रबन्धकार के लिए घटनाओं के संयोजन के लिए कीमछूट होती है अतः प्रसाद जी ने भी छूट का लाभ यथास्थान उठाया है। प्रोफेसर भारत भूषण सरोज का कहना है–'कवि का साध्य है मनु तथा श्रद्धा के संयोग से मानव सृष्टि का विकास। मानव सृष्टि की उत्पत्ति, जल प्लावन द्वारा देव–सृष्टि के विध्वंस के पश्चात् ही होती है। अतः कवि श्रद्धा तथा मनु के पूर्व ऐतिहासिक वृत्त को नहीं लेता। इसी प्रकार श्रद्धा और मनु का वृत्तान्त उनकी मृत्यु पर्यन्त चलता रहा होगा। किन्तु कवि उसका अन्त अपने साध्य की प्राप्ति पर ही कर देता है। काव्यकार इतिहास की भाँति घटनाओं अथवा पात्रों का यथासाध्य चित्रण नहीं करता। वह अपने लक्ष्य के अनुसार उसमें काट–छाँट करता चलता है। कवि का दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक होता है, बाह्य घटनाओं का लेखा जोखा करना उसका उद्देश्य नहीं। कविकी धारणा है कि बिना इच्छा, ज्ञान और क्रिया के समन्वय के आनन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं। इन तीनों के मिलन के लिए हृदय तत्व अपेक्षित है। इसी दृष्टि से उसने श्रद्धा (हृदय) के बहाने से इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीनों का समन्वय दिखाया है।

इतिहास व्यक्ति की अभिव्यक्ति करता है तो काव्य व्यक्ति द्वारा जाति की। इतिहास में श्रद्धा व्यक्ति ही है किन्तु काव्य में वह नारी जाती का प्रतिनिधित्व कर रही है। पुराणों में श्रद्धा के नारीत्व का विकास नहीं मिलता। वह एक साधारण स्त्री के रूप में ही हमारे समक्ष आती है। श्रद्धा के व्यक्तित्व का विकास दिखाने के उद्देश्य से कवि को घटनाओं का क्रम बदलना पड़ा है। यहाँ कवि की अपनी ऐतिहासिक कल्पना भी कार्य करती दृष्टिगत होती है। श्रद्धा का मनु को आत्मसमर्पणकवि

की अपनी कल्पना है। यहां–श्रद्धा नारीत्व के सभी गुणों सेवा, दया, माया, ममता, त्याग, करूणा आदि से परिर्पूणहै। वह भारतीय साहित्य की एक अनुपम नारी है। इस प्रकार के भव्य नारीत्व की सृष्टि कवि की ऐतिहासिक कल्पना द्वारा ही सम्भव हो सकी है।

भारतीय साहित्य में मनु के दो रूप चित्रित हैं–(1) स्मृतिकारका रूप (2) प्रजापति रूप। प्रजापति मनु एक हैं या दो इसके विषय में काफी मतभेद हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा का विचार है कि हमारे यहां भी मन्वन्तर के प्रवर्त्तक मनु और मानव धर्मशास्त्र के प्रणेता मनु के एक या भिन्न अस्तित्व के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। परन्तु वेद में मनु की स्थिति की परीक्षा के उपरान्त यह मान लेने के लिए बहुत अवकाश रह जाता है कि मनुस्मृति के प्रणेता और मन्वन्तर प्रवर्त्तक भिन्न हो सकते हैं परन्तु प्रसाद जी ने प्रजापति मनु और नियामक मनु को एक ही माना है। सारस्वत प्रदेश में कवि ने मनु को नियामक बनाकर उनको स्मृतिकार के रूप को व्यक्त किया है। ऋग्वेद, शतपथ तथा पुराणों में श्रद्धाएक भव्य तथा विश्वसनीय नारी के रूप में चित्रित की गई हैं। त्रिपुर रहस्य तथा छान्दोग्योपनिषद् में श्रद्धा की भावमूलक व्याख्या ही अधिक पाई जाती है। प्रसाद जी ने कामायनी में श्रद्धा के इस व्यक्तित्व को विशद रूप में अंकित किया है। स्त्री जाति की सेवा, दया, माया, करूणा, ममता आदि की सभी विशेषताओं की मानो वह प्रतीक है। ऋग्वेद में इड़ा को मनु की पथप्रदर्शिका कहा गया है। शतपथ में भी इड़ा द्वारा मनु को यज्ञ में अतुल सम्पत्ति मिलती है। कामयनी में भी कवि ने उसके व्यकितत्व की रक्षा के लिए ही उसे सारस्वत प्रदेश में मनु की पथ–प्रदर्शिका बनाया है। मनुको सारस्वत–प्रदेश का शासक बना देने से उन्हें अतुल सम्पत्ति की भी प्राप्ति होती है। पशु यज्ञ में किलाताकुलि कोपुरोहित बनाना शतपथ के आधार पर है। कामायनी में श्रद्धा, मनु, इड़ा किलाताकुलि तथा मानव ये छः ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। कवि को यद्यपि विश्रृड्खल घटनाओं को कथात्मक रूप देने के लिए इनसे सम्बन्धित कथाओं में थोड़ा उलट–फेर करना पड़ा है। किन्तु इससे किसी भी ऐतिहासिक व्यक्ति के व्यक्तित्व पर कोई आघात नहीं पहुँचने पाया है।

सारस्वत–प्रदेश को जिस सरस्वती नदी के तट पर स्थित माना गया है, वह पंजाब में न होकर गांधार प्रदेश में था। यह प्रसाद जी ने अपनी खोज के आधार पर सिद्ध किया था। अतः कामायनी के 'सारस्वत' प्रदेश को गांधार का समीपवर्ती स्थान मानना चाहिये। यहां के ध्वंसावशेषों पर ही मनु ने सभ्यता का प्रसार किया। इसका चित्रण पुराणों में वर्णित इड़ा–वृत्त के आधार पर किया गया है और ऋग्वेद में इड़ा के लिये प्रयुक्त सभी विशेषणों की सहायता से उसके चरित्र का विकास किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में इड़ा की उत्पत्ति मनु के मैत्रावरूण यज्ञ से मानी गई है। प्रसाद जी ने नायक की गौरव–रक्षा के लिए इस कथांश को छोड़ दिया है। (इड़ा को मनु की पुत्री नहीं बताया है), केवल 'आत्मजा प्रजा' कहकर इसका संकेत–मात्र कर दिया है। सारस्वत–प्रदेश में मनु के अनैतिक आचरण पर देव–शक्तियाँ क्षुब्ध हो जाती हैं अैर रूद्र अपने बाण से मनु को मूर्च्छित कर देते हैं कामायनी में प्रसाद जी ने इस ऐतिहाससिक कथा में (जिसका आधार शतपथ ब्रह्मण, मत्स्य पुराण है) इतना और जोड़ दिया है कि सारस्वत प्रदेश की जनता भी मनु के विरूद्ध क्रान्ति मचाती है और उसका नेतृत्व आकुलि तथा किलात करते हैं। उनमें घमासान युद्ध होता है और मनु धराशायी हो जाते हैं। इस कथा द्वारा प्रसाद जी ने आधुनिक शासन और शासितों के वर्ग–संघर्ष को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है तथा जनता की विजय दिखाकर जनता को शासकों का नियंता बताया है।

कामायनी की कथा के अन्तिम भाग में प्रसाद जी ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर कथा को एक नया मोड़ दिया है जिससे ऐतिहासिक तत्वों का सर्वथा अभाव हो गया है। इस कथा में तीन बाते मुख्य हैं–ताण्डव नृत्य करते हुए शिव का मनु द्वारा दर्शन, त्रिपुर के रहस्य का ज्ञान और कैलाश शिखर पर पहुँच कर सबको समरसता तथा अखण्ड आनन्दकी प्राप्ति। ताण्डव नृत्य का आधार 'लिंग पुराण', 'शिव ताण्डव स्तोत्र' तथा 'शिव महम्नि स्तोत्र' है। त्रिपुर का प्रसंग भी भारतीय धर्म ग्रन्थों में मिलता है। ऋग्वेद में अग्नि को त्रिधातु कहा गया है, शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि असुरों ने प्रजापति की तपस्या कर पृथ्वी पर लोहपुर, अन्तरिक्ष में रजतपुर, द्युलोक में स्वर्णपुर का निर्माण किया तथा देवताओं ने अग्नि की उपासना कर तीनों लोकों को भस्म कर दिया। शैवागमों में त्रिपुर कथा को आध्यात्मिक रूप प्रदान किया गया है। तन्त्रालोक में इच्छा, ज्ञान और क्रिया का त्रिकोण ही त्रिलोक है, जिनके पार्थक्य के कारण उपाधियुक्त संसार बनता है एवं सामरस्य से अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है। त्रिपुर रहस्य में श्रद्धा को त्रिपुरा–देवी कहा गया है जो त्रिपुरों का एकीकरण करती है। कामायनी में कथा का यह अंश स्पष्ट है कि शैवागमों से लिया गया है यद्यपि त्रिपुर के रंगों की कल्पना वैदिक साहित्य से ली गई है और भावलोक को रागारूण, ज्ञानलोक को श्वेत तथा कर्मलोग को श्याम वर्ण का बताया गया है कैलाश शैवागमों में वर्णित आनन्दमय कोष का प्रतीक है जहां श्रद्धा द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। पर उसका तथा मानसरोवर की सीमा का वर्णन पुराणों के अनुरूप है। निष्कर्ष यह है कि प्रसाद जी ने वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य, तान्त्रिक ग्रन्थों आदि में बिखरी हुई कथा–सामग्री को लेकर अपनी उर्वर कल्पना द्वारा कामायनी की कथा–वस्तु का निर्माण किया है। इतना स्पष्ट है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि को ऐतिहासिक सामग्री की अपेक्षा कल्पना–तत्व का सहारा अधिक लेना पड़ा है।

भारतीय काव्य–शास्त्र कवि को दो प्रकार की मौलिक उद्भावनाएँ करने की अनुमति देता है–विद्यमान का संशोधन एवं अविद्यमान की कल्पना। कामायनी में विद्यमान का संशोधन मुख्यतः दो प्रसंगों में दृष्टिगत होता है। प्रख्यात कथा में मनु और इड़ा को पिता–पुत्री कहा गया है। प्रसाद जी ने नायक की गौरव–रक्षा के लिये इसका संशोधन किया है और इड़ा को उनकी पुत्री न बताकर सारस्वत प्रदेश की रानी कहा है। इस से रूपक के निर्वाह में भी सहायता मिली है। दूसरे सारस्वत प्रदेश में प्रजाजन का विद्रोह मनोवैज्ञानिकता लाने तथा शासक–शासित का संघर्ष दिखाने के लिए किया गया है। इन गौण संशोधित प्रसंगों में मनु की नाव का हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर मनु के चपेटे से पहुँचना, पाक–यज्ञ करने के बाद मैत्रावरूण यज्ञ करना, दस पुत्रों की जगह मनु के एक पुत्र का होना आदि आते हैं।

नवीन उद्भावनाओं के अन्तर्गत देवों के निर्बाध विलास से जल–प्लावन, मनु और श्रद्धा के प्रथम साक्षात्कार से लेकर उनके प्रणय तक की गाथा आती है। प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य जिससे मनु के हृदय में शृंगार भाव–उद्दीप्त होता है, हताश निराश मनु को कर्मण्य बनाने के लिए श्रद्धा का ओजस्वी भाषण, काम का सन्देश श्रद्धा के हृदय मे स्त्रियोचित लज्जा का उदय, श्रद्धा के पशु–प्रेम एवं मातृत्व पर मनु की ईर्ष्या, सारस्वत–प्रदेश में जन–क्रान्ति, यन्त्रवाद और भौतिक उन्नति की विफलता का चित्र, इड़ा तथा कुमार का मिलन, त्रिपुर–दर्शन, कैलाश–यात्रा, आदि भी मौलिक उद्भावनाओं के अन्तर्गत आते हैं। यद्यपि ये घटनाएँ प्रसाद की कल्पना से प्रस्तुत हैं, तथापि वे इतिहास से मेल खाती हैं। प्रसाद ने स्वयं आमुख में कहा है–"यह कल्पना सहज ही की जा सकती है कि इड़ा के साथ ही मनु ने सभ्यता का विकास किया था। श्रद्धा का मानव को इड़ा को सौंप देना भी मनोविज्ञान–सम्मत है, क्योंकि बुद्धि और भावना का समन्वय मानव विकास के लिये अपेक्षित है।"

कामायानी में प्रसाद जी ने जो मौलिक नीवन उद्‌भावनाएँ की हैं, उसके चार कारण हैं। कामायनी की आधारभूत घटनाएं विशृंखलित थीं। इन कथासूत्रों का संयोजन करने के लिए कवि को अनेक उद्‌भावनाएँ करनी पड़ी हैं। स्वयं कवि ने लिखा है, "कामायनी की कथा–शृंखला मिलाने के लिये कहीं–कहीं थोड़ी–बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।" रस–सृष्टि के लिए पूर्वराग, संयोग, विरह आदि सरस प्रसंगों की अवतारणा की गई है। नायक की गौरव–रक्षा के लिये कुछ संशोधन कथा में किये गये हैं जैसे इड़ा को मनु की पुत्री न मानना। अति–प्राकृत तत्त्वों का निराकरण करने और कथा में स्वाभाविकता तथा मनोवैज्ञानिकता की रक्षा तथा फलागम की सिद्धि के लिए भी प्रख्यात कथानक में अनेक परिवर्तन और परिवर्धन करने पड़े हैं। कवि का प्रकृति–प्रेम, सौन्दर्य–प्रेम एवं दार्शनिक सिद्धान्त भी इसके लिये उत्तरदायी हैं।

11.3 सारांश

कामायनीकार का लक्ष्य ऐतिहासिक कथा कहने के साथ–साथ मानव मन का विकास दिखाना और आधुनिक युग को संदेश देना भी था, "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है।' डॉ॰ नगेन्द्र के अनुसार इस परिवर्तन का एक कारण यह भी है कि प्रसाद जी भौतिक जगत के विराट घटना–चक्र को मानव–चेतना के अतल गह्‌वर में होने वाले घटना–चक्र की छाया मात्र दिखाना चाहते हैं। शैव–दर्शन के समरसता सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिये भी उन्होंने कथा में परिर्वतन किये हैं। सारांश यह है कि मानव–मंगल की रक्षा के लिए कवि ने ऐतिहासिक पात्रों का सहारा लेकर अपनी मौलिक कल्पना द्वारा एक अद्‌भुत कृति की सृष्टि की है। डॉ॰ शिवकुमार मिश्र के शब्दों में, "कल्पना का योग होने पर भी कामायनी पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है, कारण कि प्रसाद कल्पना के उचित प्रयोग को भली–भाँति जानते थे। उनकी कल्पना ने शुष्क और नीरस इतिहास को अत्यन्त रमणीय और हृदयग्राही बना दिया है।

11.4 कठिन शब्द

1)	जलप्लावन	5)	अवशिष्ट
2)	निर्बाध	6)	विगत
3)	वैवस्वत	7)	द्रुतगति
4)	झंझावत	8)	कर्मण्य

11.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1 कामायनी में अभिव्यक्त इतिहास और कल्पना पर विचार व्यक्त करें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र2 कामायनी में प्रसाद द्वारा प्रयुक्त नवीन मौलिक उद्‌भावनाओं पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

11.6 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1) कामायनी : एक अध्ययन – डॉ नगेन्द्र।

2) कामायनी अनुशीलन – रामलाल सिंह।

3) कामायनी, एक पुनर्विचार–मुक्तिबोध।

4) प्रसाद का काव्य – प्रेमशंकर।

5) कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन – इन्द्रनाथ मदान।

.....

कामायनी में रूपक तत्व

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 रूपक शब्द की व्याख्या

12.4 कामायनी में रूपक तत्व

12.5. सारांश

12.6 कठिन–शब्द

12.7 अभ्यासार्थ–प्रश्न

12.8 सन्दर्भग्रन्थ/ पुस्तकें

12.1 उद्देश्यः प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

1) रूपक शब्द के अर्थ से परिचित हो सकेंगे।

2) कामायनी में रूपक तत्व से अवगत हो सकेंगे।

3) कामायनी के रूपक तत्व पर किए गए आक्षेपों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

12.2 प्रस्तावना

अनेक आलोचक कामायनी के रूपक तत्व को स्वीकार करते हैं। यह सही भी है। स्वयं 'कामायनी' के कवि प्रसाद ने भी इस मान्यता को स्वीकार करते हुए कामायनी के आमुख में इसकी चर्चा करते हुए कहा है – यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मानव के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है, यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है। ..... यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक

अर्थ की भी अभिवृद्धि करें तो मुझे कोई अपत्ति नहीं है। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है। 'श्रद्धाम् हृद्यमाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु'। (ऋग्वेद) इन्हीं सबके आधार पर कामायनी की कथा सृष्टि हुई है।' प्रसाद जी के इस कथन से कामायनी में भावात्मक अभिव्यक्ति का भी संकेत मिलता है। 'कामायनी' की रचना एवं काव्य कौशल पाठकों को आकर्षित किए बिना नहीं रह सकता। सम्पूर्ण कामायनी में आद्यन्त दो अर्थ प्रवाहित होते नज़र आते हैं। प्रथम में श्रद्धा एवं मनु की कहानीका विकास होता है और दूसरे में मन के भीतर निवास करने वाली मनोवृत्तियों का संकेत मिलता है।

12.3 रूपक शब्द की व्याख्या

कामायनी के रूपक तत्व पर विचार करने के पूर्व हमें रूपक शब्द की व्याख्या कर लेनी चाहिए। भारतीय समीक्षा साहित्य में 'रूपक' शब्द अपने दो अर्थों को लिए हुए सदियों से चला आ रहा है। भारतीय काव्य–शास्त्र के अनुसार 'रूपक' शब्द का वृहद् अर्थ सम्पूर्ण दृश्य काव्य से सम्बन्धित है जिसमें सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। 'रूपक' का एक संकुचित अर्थ भी प्रचलित है जो रूपकालंकार से सम्बन्धित है जिसमें अप्रस्तुत का प्रस्तुत पर अभेद आरोप रहता हैं। इन दोनों से भिन्न रूपक शब्द का आधुनिक युग में तीसरा अर्थ भी लोकप्रियता को प्राप्त हुआ है, जिसे अंग्रेजी के 'एलिगरी' का पर्याय माना जाता है। 'एलिगरी' का विकास कथा–रूपक के साथ होता है जिसमें सम्पूर्ण कथा के दो अर्थ ध्वनित होते हैं प्रथम में तो सम्पूर्ण कहानी की व्याख्या होती है और द्वितीय में गूढ़ अर्थ निहित हेता है। कुछ आलोचक हिन्दी में ऐसी रचना को अन्योक्ति नाम से भी पुकारते हैं।

'रूपक' शब्द की व्याख्या जो अंग्रेजी के 'एलिगरी' से लगायी जाती है उससे हमारे साहित्य को विशेष लाभ हुआ है। इसमें जहाँ एक ओर साधारण अर्थ के अतिरिक्त एक अन्य–गूढ़ार्थ रहता है, वहाँ अप्रस्तुत अर्थ का प्रस्तुत अर्थ पर श्लेष, साम्य आदि के आधार पर अभेद आरोप भी रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूपक अलंकार में जहाँ प्रायः एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर अभेद आरोप होता है, वहाँ कथा–रूपक में एक कथा का दूसरी पर अभेद आरोप होता है। वहाँ भी एक कथा प्रस्तुत और दूसरी अप्रस्तुत रहती है। प्रस्तुत कथा स्थूल, भौतिक घटनामयी होती है और अप्रस्तुत कथा सूक्ष्म सैद्धान्तिक होती है। यह सैद्धान्तिक कथा दार्शनिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि किसी भी प्रकार की हो सकती है, परन्तु इसका अस्तित्व मूर्त नहीं होता। वह प्रायः प्रस्तुत कथा का अन्य अर्थ ही होता है जो उससे ध्वनित होता है, किसी प्रबन्ध–काव्य की प्रासंगिक कथा की भाँति जुड़ा हुआ नहीं होता।

12.4 कामायनी में रूपक तत्व

अब हमें कामायनी के रूपक तत्व पर विचार करना चाहिए। कामायनी में सर्गों का जो नामकरण किया गया है वह मानसिक वृत्तियों के आधार पर है जिससे प्रसाद के मनोवैज्ञानिक लक्ष्य का पता चलता है। कामायनी का प्रारम्भ महाकवि ने प्रकृति के भयंकर वातावरण से किया है, जिसमें केवल अकेला व्यक्ति किसी प्रकार मत्स्य की सहायता से हिमालय की ऊँची चोटी पर पहुँचता है और जल का प्रवाह सविस्मय देखने लगता हैं–

हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह।

एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।

ऐसी स्थिति में चिन्ता के अतिरिक्त मन की किसी अन्य भावना का विकास असम्भव है। प्रसाद का कवि कामायनी के प्रथम सर्ग को 'चिन्ता' के नाम से ही सम्बोधित करता है। प्रलय पश्चात् मनु को नवीन सृष्टि की संरचना करनी है। उनके इस कार्य में महान शक्ति एवं साहस की आवश्यकता है। उन्हें इसी चिन्तनशील समय में भूतकालीन ऐश्वर्य एंव भविष्य के कार्य आदि पर विचार एवं मनन करने का मौका मिलता है। चिन्ता मनुष्य के लिए यदि कुछ कारणों से बाधक या शोषक है, वहीं पर चिन्तनशील रहने के लिए इसका होना भी आवश्यक माना गया है। आत्म चेतना या चिंता आदि लक्षणों के कारण ही मनुष्य प्राणी जगत् से भिन्न और श्रेष्ठ माना गया है। इसी चिन्तनशील या चिन्ताकुल दशा के पश्चात् मनुष्य के जीवन में मोड़ भी आता है, जो कामायनी के मनु के ऊपर सत्य प्रतीत होता है। जहाँ कामायनी का मनु चिन्ता को, उसकी निष्ठुरता पर कोसता है, वहीं पर चिन्ता की अग्रिम सीढ़ी पर उसे आशा का आभास होता है और कामायनी के दूसरे सर्ग का नाम आशा रखा गया है। आशा विकासोन्मुख प्रवृत्ति है जिससे मनुष्य का जीवन सदैव प्रगति पथ पर कार्यरत रहता है। आशा के द्वारा जीवन जीने की प्रेरणा प्राप्त होती है। यदि आशा का संचार मनुष्य के हृदय में न होता हो तो निश्चय ही मनुष्य की सभी मानसिक वृत्तियों के कार्यकलाप में काफी रुकावट हो जायेगी। आशा ही मानसिक वृत्तियों की प्रेरक है, यद्यपि जीवन–विकास का आधार श्रद्धा है, परन्तु अपनी प्रेरणात्मक प्रवृत्ति के कारण आशा का अपना अलग महत्व है। श्रद्धा मनुष्य जीवन के लिए मूल तत्व स्वरूप है। कामायनीकार ने श्रद्धा को कामायनी में नारी के रूप में उपस्थित किया है। इसका आधार श्रद्धा की व्यापकता एवं जीवन के अरण्य में अनिवार्यता है। श्रद्धा मनु को कर्म के क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए बाध्य करती है, यद्यपि मनु जीवन से हार मान चुके हैं। निवृत्ति पथ से प्रवृत्ति मार्ग की ओर बढ़ने के लिए कामायनी की श्रद्धा मनु को शैवागम दर्शन की शिक्षा देती है। मन का कातर स्वभाव किसी भी अटल सत्य को जल्दी स्वीकार नहीं करना चाहता। अंततः श्रद्धा के निम्न सिद्धान्त के सामने मनु का हठीला व्यक्तित्व हार मान ही जाता है–

कर रही लीलामय आनन्द
महा चिति सजग हुयी सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।।
काम मंगल से मण्डित श्रेय
सर्ग इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल,
बनाते हो असफल भवधाम।।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप
जगत् की ज्वालाओं का मूल।
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल।।

अन्ततोगत्वा निराश्रित मनु के हृदय में पुनः प्रवृत्ति मार्ग का विकास हो जाता है और उसकी मानसिक वृत्ति जीवन की समस्याओं से जूझने को तैयार हो जाती है। श्रद्धा के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करने के लिए प्रसाद को कामायनी के चतुर्थ सर्ग का नामकरण 'काम' करना पड़ा। काम के द्वारा ही श्रद्धा का विकास माना जाता है, अस्तु इसे कुछ लोग श्रद्धा का जनकी भी मानते हैं। प्रसाद जी के अनुसार सृष्टि विकास के लिए काम सर्वश्रेष्ठ है। भारतीय वैदिक साहित्य से लेकर अन्य ग्रंथों तक काम अपने इसी रूप में चित्रित है। कामायनी का काम अपनी दुहिता को मनु के लिए इस दृष्टि से समर्पित करता है कि इसके साथ रहकर तुम भावी सृष्टि की संरचना कर सकते हो। काम ने अपने दार्शनिक पक्ष का समर्थन करते हुए बताया है–

यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म–रंगस्थल है।
है परम्परा लग रही यहाँ,
ठहरा जिसमें जितना बल है।।

वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष और निर्वेद तक प्रसाद जीवन–रहस्य के उद्‌घाटन में उलझे रह जाते हैं। लज्जा नामक वृत्ति नारी समाज को संयम, त्याग एवं समर्पण की भावना की ओर आकर्षित करती है। श्रद्धा के वास्तविक रूप को पहचानने में मनु को काफी समय लग जाता है। नारी समाज अपने आपको जब समर्पित कर देता है तो स्वतः उसका अस्तित्व अंधकार में पड़ जाता है। परन्तु जब उसे अपने स्व का पता चलता है तब तक उसका सर्वस्व लुट चुका होता हैं। 'वासना' के उपरान्त मनु में कर्म की प्रवृत्ति बढ़ती है। यहाँ कर्म से प्रसाद जी का अभिप्राय याज्ञिक यहिंसात्मक कर्म से है। वासना के उदय के पश्चात मानव की अतृप्ति उसे अबाध कर्म की ओर प्रेरित करती है। व्यक्ति सब छोड़कर उसी में लग जाता है। कर्म के अबाध प्रवाह में विघ्न डालने वाली प्रवृत्ति वासना जन्य अतृप्ति ही है।किलात और आकुलि नामक असुर पुरोहित मनु को हिंसात्मक कर्मों में प्रवृत्त करते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अतृप्ति ही हिंसात्मक कार्यों में परिणत होती है। कर्म का ही अतिवादी रूप है सत्ता को अधिकृत करने की चेष्टा, आत्मविस्तार या अपने को अधिकारी बनाने का उद्योग। ज्यों–ज्यों मनु में हिंसात्मक कर्मों की प्रवृत्ति बढ़ती है, वह अनेक मानसिक दुर्वृत्तियों से आक्रान्त होते हैं। उनकी अन्तिम दुर्वृत्ति ईर्ष्या है। ईर्ष्या में दूसरे की सुख–सुविधा के प्रति अनुदार संकीर्णता और विरोध का भाव रहता है। मनुष्य अहंकेन्द्रित हो जाता है। यह कर्म का संकीर्णतक स्वरूप है। ईर्ष्या की उत्तेजना में मनु घर, पत्नी सब कुछ छोड़कर अज्ञात दिशा में निकल पड़ते हैं। वहां से मनु बुद्धिवादी बनकर सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं और इड़ा से मिलते हैं।हिंसाप्रिय और ईर्ष्यालु मनुष्य बुद्धिवादी बन जाता है। आज का वैज्ञानिक भी अपने को बुद्धिवादी ही कहता है। सारस्वत प्रदेश के नव निर्माण का जो चित्रण प्रसाद ने किया (कामायनी दशम सर्ग) वह आज के विज्ञानवादी संसार से मिलता–जुलता है। प्रसाद की दृष्टि में यह बुद्धिवाद, विज्ञानवाद या भौतिकवाद मनुष्य के स्वस्थ और स्वाभाविक विकास में बाधक है।

बुद्धिवाद की दुर्वृत्तियों में लीन हो जाने पर मनु अपने आप को भूल जाते हैं एवं भय रहित होकर बुद्धि के कौशल का विकास करते हैं। परन्तु उनका बुद्धिवादी दृष्टिकोण ही उन्हें पतन के कगार पर आरूढ़ कर देता है। मनोवैज्ञानिकों का भी विचार है कि दुर्वृत्तियों की अन्तिम परिणति बुद्धिवादी है। बुद्धि पक्ष सदैव स्वहित चिन्तन में तल्लीन रहता है। जहाँ पर स्व का विकास होता है वहीं पर अशान्ति है। इसलिए बुद्धिवाद के प्रभाव में पड़ने से शान्ति समाप्त हो जाती है। मनुष्य जीवन में सन्तोष की आवश्यकता नहीं। उसे तो शान्ति की आवश्यकता है। शान्ति हृदय, बुद्धि एवं मन के समाहार पर ही आधारित है। कामायनी का आनन्द सर्ग इसी समाहार की शान्ति का विवेचन करता है। "इस प्रकार हम देखते हैं 'कामायनी' मनु और श्रद्धा की कथा तो है ही मनुष्य के क्रियात्मक, बौद्धिक और भावात्मक विकास से सामंजस्य स्थापित करने का अपूर्व काव्यात्मक प्रयास भी है। यही नहीं, यदि हम और गहरे पैठें, तो मानव–प्रकृति के शाश्वत स्वरूप की झलक भी इसमें मिलेगी। आध्यात्मिक और व्यावहारिक तथ्यों के बीच संतुलन स्थापित करने की सर्वप्रथम चेष्टा इस काव्य में की गयी है। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए मानवीय वस्तुस्थिति से परिचय रखने वाली जिस मर्मभेदिनी प्रकृति की आवश्यकता है, वह प्रसाद जी को प्राप्त थी। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से शरीर, मन और आत्मा कर्म, भावना और बुद्धि, क्षर, अक्षर और उत्तम तत्त्वों को सुसंगठित कर दिया हैं। यही नहीं, उन्होंने इन तीनों के भेद को मिटाकर इन्हें पर्यायवाची भी बना दिया है। जो मनु और कामायनी हैं, वही आधुनिक पुरुष एवं नारी भी हैं। यही नहीं, शाश्वत पुरुषत्व और नारीत्व भी वही हैं। एक की साधना सब की साधना बन जाती है। मनोविज्ञान में काव्य और काव्य में मनोविज्ञान यहाँ एक साथ दिखाई देते हैं। मानस (मन) का ऐसा विश्लेषण और काव्यात्मक निरूपण हिन्दी में शायद शताब्दियों के बाद हुआ है।"

कामायनी के शीर्षक की मनोवैज्ञानिकता समझने के पश्चात् अब हमें कामायनी के पात्रों पर विचार कर लेना चाहिए। कामायनी के प्रधान पात्रों में मनु श्रद्धा और इड़ा हैं। इनके अतिरिक्त तीन गौण पात्र भी हैं– मनु का पुत्र मानव तथा असुर पुरोहित किलात और आकुलि। इन पात्रों के अतिरिक्त काम और लज्जा नामक दो अशरीरी पात्र हैं जो अपने सांकेतिक अर्थ का प्रतिपादन करते हैं। 'कामायनी' में मनु का प्रतीक अर्थ मन से सम्बन्धित है। किन्तु दार्शनिक एंव मनोवैज्ञानिक अर्थ में वे मनोमय कोश में स्थित जीव के प्रतीक हैं। मन की रागात्मक वृति अंहकार है जो मनन करने के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है। कामायनी में मन अर्थात् चेतना (Consciousness) के प्रतीक रूप में मनु का चित्रण किया गया है–

मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्यों।
लगा गूँजने कानों में।
मैं भी कहने लगा, मैं रहूँ,
शाश्वत नभ के गानों में।

× × ×

यह जलन नहीं सह सकता मैं,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व,
इस पंचभूत की रचना में,
मैं रमण करूँ बन एक तत्व।

× × ×

यह जीवन का वरदान मुझे,
दे दो रानी अपना दुलार।
केवल मेरी ही चिन्ता का,
तब चित्त वहन कर सके भार।

कामायनी के दूसरे प्रमुख एवं प्रभावशाली पात्रों में श्रद्धा का विशेष महत्त्व है। श्रद्धा का उल्लेख हमारे वेदों से लेकर उपनिषदों तक प्राप्त होता है। इसकी व्यापकता एवं नारीसुलभ गुणों की व्याख्या में इन शास्त्रों के द्वारा विशेष बल मिलता है। ऋग्वेद में श्रद्धा एवं मनु दोनों का नाम ऋषियों की पंक्तियों में आबद्ध है। कामगोत्र की बालिका होने के कारण श्रद्धा को कामायनी से भी सम्बोधित किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् तथा त्रिपुर रहस्य में श्रद्धा की भूमिका भावमूलक अर्थ में की गई है। प्रसाद जी ने श्रद्धा के इसी रूप को स्वीकार किया है। श्रद्धा को हृदय का प्रतीक, कामायनीकार ने माना है–उस के रूप का चित्रण करते हुए प्रसाद ने लिखा है–

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार,
एक लम्बी काया उन्मुक्त।
मधु–पवन–क्रीड़ित ज्यों शिशु शाल,
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

श्रद्धा नारी सुलभ सभी उदात्त गुणों एंव भावनाओं की प्रतिमूर्ति है। वह गन्धर्वों के देश से विचरण करती हुई मनु के प्रान्तर भाग में आती है। उसके लावण्य में जो आकर्षण है वही उसके व्यक्तित्व में भी समाहित हुआ है, उसमें करुणा, दया, ममता के साथ हृदय के कोमल तत्वों का समाहार है। श्रद्धा के इन्हीं गुणों के प्रति मुग्ध होकर प्रबल समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उसे 'विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति' कहा है। परन्तु विश्वास एवं राग–वृत्ति का सम्बन्ध भी हृदय से होने के कारण वह हृदय की ही प्रतीक सिद्ध होती है। अगाध विश्वास एवं ममता से युक्त होने के कारण उसका संसर्ग शान्तिदायक है। नारी सुलभ प्रेरणा की रानी होने से श्रद्धा अपने आत्मबल द्वारा संसृति के झंझावातों से दुःखी मनु को कर्म के पथ पर लगा देती है।

श्रद्धा का आविर्भाव इन्हीं उद्देश्यों को लेकर हुआ है जो प्रेम के विराट सौन्दर्य को सर्वसाधरण जनों के हृदय तक पहुँचा सके–

यह लीला जिसकी विकास चली,
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।
उसका संदेश सुनाने को,
संसृति में आई वह अमला।

श्रद्धा के भावुक चरित्रांकन के पश्चात् कामायनी के प्रमुख पात्रों में इड़ा का विशिष्ट स्थान है। लौकिक संस्कृत में इड़ा के पर्यायवाची शब्दों में पृथ्वी, वाणी, बुद्धि का प्रयोग हुआ है। प्रसाद जी ने कामायनी में इड़ा को बुद्धि के अर्थ

में स्वीकार किया है जिससे कामायनी में रूपक तत्व पर कोई आँच नहीं आने पाई है। प्रसाद ने स्वयं इड़ा के प्रतीकात्मक व्यक्तित्व का चित्रांकन करते हुए लिखा है–

बिखरी अलकें ज्यों तर्क–जाल,
वह विश्व मुकट–सा उज्जवलतम शशिखण्ड–सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म–पलाश–चषक–से दृग देते अनुराग–विराग ढाल।
गुंजरित मधुप से मुकुल–सदृश वह आनन जिसमें भरा गान,
वक्षस्थल पर एकत्र घरे संसृति के सब विज्ञान–ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म कलश–वसुधा–जीवन–रस सार लिए,
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिये।
त्रिबली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक–वसन लिपटा अराल–
चरणों में थी गति भरी ताल।

ऋग्वेद में इड़ा को मनु की पथ–प्रदर्शिका के रूप में और मनुष्य जाति पर शासन करने वाली के रूप में स्वीकार किया गया है–'इड़ामकृण्वन्मनुषस्य शासनीम्।' परन्तु कामायनी में वह मनु का पथ–प्रदर्शन करती है। इड़ा हृदय की उदात्त वृत्तियों से वंचित व्यवसायात्मिक बुद्धि है। इड़ा के चरित्र में वैज्ञानिक युग की मान्यताओं का विशेषविकास हुआ है। घोर बुद्धिवाद के दुष्परिणाम का फल मानव संस्कृति एवं समाज दोनों के लिए अहितकर है। जब मनु का इड़ा से समागम होता है तो मनु बुद्धिवाद के प्रबल समर्थक हो जाते हैं और इड़ा के संकेतों पर नाचने लगतेहैं। जहाँ मनु श्रद्धा के सम्पर्क में समरसता के लिए चिन्तित रहते हैं वहीं इड़ा के संसर्ग से मनु में स्वार्थलिप्सा और एकाधिकार की भावना और अधिक विस्तार को प्राप्त करती है, जिसके कारण संघर्ष का बीजारोपण होता है। इड़ा वर्ग विभजन, संघर्ष आदि तत्वों पर विश्वास करती है जो वैज्ञानिक युग की मान्यताओं का सम्बल है। इन प्रमुख पात्रों की मनोवैज्ञानिकता समझने के पश्चात् अब हमें कामायनी के गौणपात्रों पर भी विचार कर लेना चाहिए। इन गौणपात्रों में मनु–पुत्र मानव के चरित्र का विकास कामायनी में अधिक नहीं हो पाया है। परन्तु वास्तविकता के धरातल पर मानवता के विकास का प्रचार एवं प्रसार वही करता है। मनु के मननशील व्यक्तित्व, श्रद्धा की उदात्त–भावना तथा इड़ा के बुद्धिवादी तत्वों की प्रेरणा से उसके चरित्र में जो विकास हो पाया है उसका महत्व थोड़ा नहीं है। गौणपात्रों में आकुलि किलात आसुरी वृत्तियों के प्रतीकार्थ में प्रयुक्त हैं। "मनु द्वारा हिंसा यज्ञ की ओर आकृष्ट होते ही ये दोनों (आसुरी वृत्तियाँ) उसके सामने उपस्थित हो जाती हैं जिसकी दुष्प्रेरणाओं के परिणमस्वरूप मनु में तामसी प्रवृत्तियों का बाहुल्य हो जाता है। अन्त में जब मनु इड़ा पर अपना अधिकार करना चाहते हैं, तो ये भी मनु को छोड़कर विद्रोही प्रजा के साथ जाकर मिल जाते हैं और विद्रोहियों के नेता बनकर सामने आते हैं। इसका सांकेतिक अर्थ यह है कि आसुरी वृत्तियाँ पहले तो मन को नाना प्रकार के दुष्कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं और जब उसे अपने इन कर्मों के फलस्वरूप कष्ट भोगना पड़ता है तो ये आसुरी वृत्तियाँ उलटे उसके कष्ट में और अधिक वृद्धि करती हैं।" गौणपात्रों के अतिरिक्त श्रद्धा का पशु, देव, वृषभ और सोमलता आदि अपने सांकेतिक अर्थ के लिए निश्चित स्थान रखते हैं। इनका लक्ष्यार्थ इन्द्रियों से है। श्रद्धा का पशु भी अपने प्रतीक अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। तभी तो उसकी जाति, वर्ण आदि के विषय में केई उल्लेख

नहीं हुआ है। इसी श्रद्धा के पशु का वध असुर पुरोहितों द्वारा कराया गया है। इस पर गान्धीवादी अहिंसा का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है–

एक माया। आ रहा था पशु अतिथि के साथ
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ।

भारतीय दर्शन शास्त्र वृषभ को अनादिकाल से ही धर्म का प्रतीक मानता है। इसके ऐतिहासिक आधार भी अनेकशः प्राप्त होते हैं। प्रसाद जी ने भारतीय दर्शन के इस तत्व को अक्षरशः स्वीकार किया है। इस प्रकार कामायनी की कतिपय पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाएँ भी अपना सांकेतिक अर्थ रखती हैं। कामायनी की प्रमुख घटना 'जलप्लावन' भारत के सांस्कृतिक इतिहास के पृष्ठों के अतिरिक्त विश्वसाहित्य एवं संस्कृति से भी सम्बधित है। प्रत्येक देश का साहित्य इसे आदिकाल से ही अपने आप में सँजोये हुए है। यद्यपि इसके कथानक की मौलिकता में काफी अन्तर है, परन्तु कथाओं का साम्य भी कम नहीं हैं। इस घटना का उल्लेख भारतीय दर्शन प्रतीकार्थ में भी करते हैं। जब मानव–मन काम–वासना आदि मनोभावों से अप्लावित होकर इन्द्रियों के सुखों में ही तल्लीन हो जाता है अर्थात् सीमा की मर्यादा तोड़कर निम्नतम अन्नमय कोश में ही अत्यधिक रम जाता है तब उसकी चेतना पूर्णतः माया से आच्छादित हो जाती है। इसी प्रकार त्रिलोक की प्रेरणा कवि को अति प्रसिद्ध आख्यान त्रिपुरदाह से प्राप्त हुई है। इस कथा का प्रतीक भाव–लोक, कर्म–लोक और ज्ञान–लोक से है। इन्हीं तीनों लोकों का सम्बन्ध मनुष्य की तीनों वृत्तियों (भाववृत्ति, कर्म–वृत्ति और ज्ञान वृत्ति) से है। तीनों वृत्तियों के समन्वय से ही वास्तविक एव असीम अखण्ड आनन्द की प्राप्ति सम्भव है। इन तीनों वृत्तियों के विलग रहने से मन में शान्ति असम्भव है और चिन्ता का क्रमशः विकास होता रहता है–

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें,
यह विडम्बना है जीवन की।

जब इन तीनों वृत्तियों (भाव–वृत्ति, कर्म–वृत्ति और ज्ञान–वृत्ति) का समन्वय हो जाता है तो हृदय की प्रतीक, विश्वासमयी रागात्मिका–वृत्ति श्रद्धा का विकास होता है और समरसता की अवस्था आ जाती है–

स्वप्न, स्वाप, जागरण भरस हो,
इच्छा क्रिया, ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में,
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

सारस्वत नगर का भी कामायनी के लिए महत्त्व है। यह प्राणम्य कोश का प्रतीक है। सारस्वत प्रदेश के निवासी जो मनु के प्रबल सहयोगी होते हुए भी समय पर मनु के विरुद्ध युद्ध अभियान तक कर देते हैं। वे मन की सहगामिनी

अन्य इन्द्रियों के प्रतीक हैं। इसी प्रकार कैलाश पर्वत भी आनन्दमय कोश का रूपक है जहाँ जीवन के झंझावात से क्षुब्ध मनु को शान्ति प्राप्त होती है। कामायनी का मानस शब्द जिसकी स्थिति कैलाश पर्वत पर बताई गई है,वह मानसरोवर के लिए प्रयुक्त हुआ है। शतपथ में इसी मानस या मानसरोवर को 'मानोरवसर्पण' कहा गया है। कामायनी में यहसमरसता की अवस्था के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हैं। इस प्रकार कामायनी के पात्रों एवं घटनाओं के प्रतीकों को समझने कपश्चात् अब हमें समझना है कि कामायनीकार इसका निर्वाह आद्यन्त कर पाया है या नहीं। कामायनी का आरम्भ भयंकर प्रलयोपरान्त होता है। देवताओं के सम्पूर्ण वैभव के अस्तित्व का अन्त हो जाता है और उनके प्रतिनिधि मनु किसी प्रकार आत्मरक्षा कर हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर जा बैठते हैं। चिन्ता की सरिता में नीरव अवगाहन करने के पश्चात् मनु को श्रद्धाका सान्निध्य प्राप्त होता है ओर उसकी प्रेरणा से अपने अशांत जीवन में शान्ति की कुछ छाया प्राप्त करते हैं। श्रद्धा के भावव में आने से उनके मन की दुर्वृत्तियों का परिष्कार होता है। परन्तु जब उनमें वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष आदिवृत्तियों का विकास होता है तो श्रद्धा तत्व का क्रमशः लोप होने लगता है और मनु उसे अकेले छोड़कर सारस्वत नगर में पहुँच जाते हैंजहाँ पर उनका परिचय इड़ा से होता है। इड़ा के निर्देशन में रहकर मनु अपनी तर्कात्मक बुद्धि से कार्य करते हैं। स्व कीभावना का जब मनु में विकास होता है तो इड़ा को वशीभूत–करना चाहते हैं। परन्तु वहां की प्रजा को यह अच्छा नंहीलगता है। वह विद्रोह कर देती है जिसमें मनु की हार होती है। इसी स्थिति में उनमें निर्वेद का संचार होता है औपुनः कामायनी की इस कथा के साथ मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक कथा का भी विकास होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में आनन्दमय इ पाँच कोशों की कल्पना की गई है। अन्नमय कोश स्थित जीवन अनेक प्रेरणाओं एवं प्रयास के माध्यम से उन्नति करते हुए आनन्दमय कोश तक पहुँचता है। इसी अप्रस्तुत कथा का विकास कामायनी में हुआ है। अन्नमय कोश की स्थिति नीचे बताई गई है। इसी में जीव का निवास भी है जो अनेक कारणों से अत्यन्त क्षुब्ध रहता है। उनकी इस स्थिति का मूल कारण उसका अहंकार है। अहं की स्थिति में मनुष्य की चेतना शक्ति का प्रायः लोप हो जाता है। परन्तु जब उसका सम्बन्ध किसी प्रकार हृदय की विश्वासमयी रागात्मिक–वृत्ति की श्रद्धा से होता है तब उसके अहं का क्रमशः लोप होने लगता है। ऐसी स्थिति में वह स्व की सीमा से परे होकर पर के विषय में सोचने–समझने लगता है। इस प्रकार वह अपनी चेतन अवस्था को प्राप्त कर लेता है। चेतन जीव की दो शक्तियाँ मानी गई हैं–हृदय और बुद्धि। हृदय–तत्व उसे कर्म प्रेरणा द्वाराक्रमशः उन्नति के पथ पर बढ़ाता रहता है। परन्तु ऐसी स्थिति में सोमलता आदि अनेक भोग एवं विलास के तत्वों की ओर आकर्षित हो जाने से जीव आसुरी वृत्तियों के प्रभाव में आ जाता है और वासना, हिंसा आदि कार्यों के करने में अनन्दानुभूति करने लगता है। श्रद्धा अपनी महत् प्रेरणा के द्वारा जीव को इस विकार पथ से दूर करने का प्रयत्न करती है, अस्तु जीवन श्रद्धा के वचन–विन्यास से क्षुब्ध हो जाता है और क्रमशः ईर्ष्या के पंथ का राही बनने लगता है–

यह जीवन का वरदान, मुझे
दे दो रानी अपना दुलार।
केवल मेरी ही चिन्ता का,
तब चित्त वहन कर रहे भार।

ईर्ष्या भावना के विकास से मनुष्य (जीवन) अपने अहं की तुष्टि के लिए श्रद्धा का परित्याग भी कर देता

है और नीचे प्राणम्य कोश में पहुँचकर घोर बुद्धिवाद का समर्थक हो जाता है। बुद्धि उसे भौतिक जीवन के उपादानों की ओर आकर्षित करती है–

जो बुद्धि कहे उसको न मानकर,
फिर किसकी नर शरण जाय ?
जितने विचार संस्कार रहे,
उनका न दूसरा है उपाय।।
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल,
ऐश्वर्य–भरी शोधक–विहीन।
तुम उसका पटल खोलने में,
परिकर कसकर बन कर्मलीन।।
सबका नियमन शासन करते बस,
बढ़ा चलो अपनी क्षमता।
तुम ही इसके निर्णायक हो,
हो कहीं विषमता या समता।।

बुद्धि का प्रभाव अशान्तिमय होता है। बुद्धि से सदैव वैमनस्य आदि भावनाओं का विकास होता रहता है जो मनुष्य को दुःख देती है, सुख नहीं। मन के अहंकार का विकास बुद्धि से ही प्रभावित होता है। अहंकार की स्थिति मे मनुष्य की चेतना शक्ति पूर्णतया कार्य नहीं कर सकती है। अस्तु इसे नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। अहं की भावना ही बुद्धि को आक्रान्त करना चाहती है जिससे स्वयं अहं का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। श्रद्धा से सम्बन्ध ऐसी स्थिति में ही हो जाने से उसकी रागात्मिका वृत्ति का संचार होता है और उसे जीवन की तीनोंवृत्तियों का विज्ञापन प्राप्त हो जाता है। भाव–वृत्ति, कर्म–वृत्ति और ज्ञान–वृत्ति में सामंजस्य का अभाव ही उसके पराभाव का मूल कारण है। श्रद्धा के प्रयत्न से जब इन तीनों में सामंजस्य होता है तब मन समरसता की स्थिति को प्राप्त होता है।

प्रसाद जी ने अपने युग से प्रभावित होकर अपने समय की समसामयिक विभीषिकाओं के समाधान की ओर भी संकेत किया है। मनु की विडम्बना वास्तव में आज के मानव की विडम्बना है, जिसका कारण यह है कि आज हमारी भाव–वृत्ति ज्ञान–वृत्ति (दर्शन–विज्ञान) और कर्म–वृत्ति (राजनीति) तीनों पृथक्–पृथक् हैं उनमें सामंजस्य न्हीं है–

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न हैं
इच्छा क्यों पूरी हो मन की

इस विडम्बना का अन्त श्रद्धा अर्थात् गाँधी जी के अहिंसा तथा पाश्चात्य दर्शन के मानवतावाद द्वारा ही हो सकता है। मानव–भावना द्वारा ही संस्कृति, विज्ञान और राजनीति में सामंजस्य स्थापित हो सकता है, पूंजीवाद और विज्ञान से पीड़ित समाज की विडम्बनाओं का समाधान हो सकता है। अतः प्रसाद जी का यह संदेश युग के अनुरूप ही है।

कुछ विद्वानों ने कामायनी के रूपक–तत्त्व पर आक्षेप किया है। वस्तुतः इन आक्षेपों का कारण यह है कि पहले तो समीक्षकों ने स्वतः ही 'कामायनी' को रूपक–काव्य (Allegory) मान लिया है और फिर जब उसमें जगह–जगह दोष एवं असंगतियाँ दिखी हैं, तो उन्होंने उसके लिए कवि को दोषी ठहराया है। अपने दोष को दूसरेके मत्थे मढ़ना कहाँ तक न्यायसंगत है ? लेखक ने कहीं यह नहीं कहा कि वह रूपक–काव्य लिखने जा रहा है, या उसने रूपक–काव्य लिखा है, वह तो बार–बार बल दे रहा है कि उसने ऐतिहासिक काव्य लिखा है। कामायनी का काव्य–विन्यास ऐतिहासिक धरातल पर ही हुआ है। हां, इसमें रूपक की संभावना अवश्य है और वह भी इसलिए कि आख्यान अत्यन्त प्राचीन है जिसके कारण उसमें पहले से ही रूपक खप चुका है। सारांश यह है कि कामायनी की कथा को कवि ने तो इतिहास की भूमि पर ही विन्यस्त किया है, पर उसमें रूपकात्मकता भी कुछ अंश तक आ गयी है वह सम्पूर्णतः रूपक–काव्य है ही नहीं। डॉ॰ नगेन्द्र का कथन है कि कामायनी में प्रयुक्त मनु और मानव दोनों मन के प्रतीक हैं, "पितापुत्र में लगभग एक ही प्रतीकार्थ की पुनरावृत्ति हो जाती है।" अतः कामायनी का एक पात्र अनावश्यक है। उनका दूसरा आक्षेप यह है कि सारस्वत नगरवासियों के साथ इड़ा और कुमार का चिदानन्दलीन मनु के पास सोमलता मण्डित वृषभ का बलिदान करने के लिये जाना भी अप्रस्तुतार्थ में एक थिगली–सा लगता है। इन आक्षेपों के उत्तर में हमारा कथन यह है कि मानव के दो लक्ष्य हैं–निःश्रेयस की प्राप्ति और अभ्युदय की प्राप्ति। इनमें से एक का अभाव अपूर्णता का द्योतक है। कामायनी में मनु यदि निःश्रेयस की प्राप्ति करते हैं, तो कुमार अभ्युदय की। श्रद्धा–मनु का मार्ग वैयक्तिक साधना मार्ग की ओर संकेत करता हैं, तो इड़ा–कुमार का मार्ग निष्काम कर्म–मार्ग की ओर और ये दोनों मार्ग अन्ततोगत्वा एक में मिलकर आनन्द की भूमि पर अवस्थित होते हैं। अतः इन दोनों पात्रों का होना आवश्यक नहीं है। जहाँ तक इस प्रसंग के थिगली जैसा लगने का सम्बन्ध है स्वयं डॉ॰ नगेन्द्र ने कहा है "प्रस्तुत कथा को थोड़ा सा स्वतन्त्र अवकाश तो मिलना ही चाहिए उसे पूरी तरह अप्रस्तुतार्थ से जकड़ देना ठीक नहीं।" वस्तुतः उनका यह कथन इस बात की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि कामायनी पूर्णतः रूपक–काव्य नहीं। उसमें अनेक स्थल ऐसे हैं जिनका अप्रस्तुतार्थ नहीं लग सकता।

कामायनी के रूपक–तत्व में शुक्ल जी ने भी दो गम्भीर तात्विक असंगतियों की ओर संकेत किया है। उनका पहला आक्षेप यह है कि जब इड़ा की प्ररेणा से ही मनु कर्मलीन होते हैं, अर्थात् बुद्धि द्वारा ही मनुष्य कर्म में प्रवृत्त होता है, तो फिर ज्ञान–लोक और कर्म–लोक अलग–अलग क्यों माना गया है। उनका यह आक्षेप असंगत है, क्योंकि मनोविज्ञान और दर्शन में अनन्त काल से ही इच्छा, क्रिया और ज्ञान का भेद किया गया है और भारतीय साधना–पद्धति मे भी भक्ति, ज्ञान और क्रिया को अलग–अलग निरूपित किया गया है। यह ठीक है कि कर्म के पीछे बुद्धि की प्रेरणा होती है, परन्तु तात्विक दृष्टि से इन दोनों में भेद है ही।

शुक्ल जी का दूसरा आक्षेप है कि श्रद्धा की स्थिति शुद्ध–भाव की स्थिति है, अतः उसकी स्थिति भाव–लोक से ही नहीं, भाव, ज्ञान, कर्म तीनों से परे कैसे हो सकती है। भाव से भिन्न उसका अस्तित्व समझ में नहीं आता। परन्तु प्रसाद जी ने कामायनी की कथा का मूल आधार श्रद्धा को बनाया है। श्रद्धा का अर्थ है आस्तिकता, लोक–जीवन की रसानुभूति, आत्मा का विमल प्रकाश जिसके द्वारा जीवन का संचालन होता है। प्रसाद जी ने

उसे इसी रूप में ग्रहण किया है। सारांश यह है कि कामायनी की श्रद्धा कोरी भावुकता नहीं है, वह तो जीवन की प्रेरणा की प्रतीक है जबकि भावलोक कोरी, भावुकता, रागवृत्ति (Libido) या इच्छा की रंगीन क्रीड़ाओं का प्रतीक है, वहाँ श्रद्धा जीवन के अस्तित्त्व में आस्था का, यूँ कहिए कि विश्वासयुक्त जीवनेच्छा का प्रतीक है। कामायनी की कथा का उद्देश्य है इच्छा, क्रिया और ज्ञान का सामंजस्य और इसके अनन्तर आनन्द की प्राप्ति। महाकाव्य में उद्देश्य की प्राप्ति मुख्य पात्र द्वारा की जाती है। कामायनी की मुख्य पात्र श्रद्धा है। सारांश यह है कि यद्यपि रूपक–काव्य लिखना कामायनीकार का मुख्य उद्देश्य न था, तो भी रुपक के कारण कामायनी का मूल्य बढ़ा है।

कामायनी के रूपक–तत्व पर डा॰ द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने भी आक्षेप किया है। उनका पहला आक्षेप यह है कि रूपक–काव्य के पात्र काल्पनिक होते हैं, जबकि कामायनी के पात्र ऐतिहासिक हैं।

उनका दूसरा आक्षेप यह है कि कामायनी का चित्रण काल्पनिक जगत् का न हो कर ठोस यथार्थ पर आधारित है।

उनका तीसरा आक्षेप है कि कामायनी में मनोमय कोश और विज्ञानमय कोश के प्रतीक नहीं है, जिसके फलस्वरूप इसके रूपक में छिद्र आ गये हैं। लेकिन उनका यह आक्षेप भी अत्यन्त दुर्बल है। हिमगिरि यदि मनोमय कोश का प्रतीक है, तो वह स्थल जहाँ पहुँचकर मनु की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएँ नष्ट हो जाती हैं, विज्ञानमय कोश का प्रतीक है–

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो, इच्छा, क्रिया ज्ञान मिल लय थे

उनका चौथा आक्षेप है कि रूपक–तत्त्व वाले काव्य में व्यक्तिगत विशेषताओं का उल्लेख होता है, जबकि कामायनी के पात्रों में समष्टिगत विशेषताओं का उल्लेख है। परन्तु यह बात लेखक के उद्देश्य पर आधारित है कि उसके पात्र व्यक्तिगत विशेषताओं के प्रतिनिधि हों अथवा समष्टिगत विशेषताओं के।

सर्वप्रथम हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि कामायनी रूपक–काव्य नहीं है, हाँ उसमें रूपक की सम्भावना है और स्थान–स्थान पर उसमें दूसरा अर्थ प्रतिध्वनित भी होता है। पर कामायनी के पात्र ऐतिहासिक होते हुएभी प्रतीकार्थ रखते हैं और स्वयं कवि ने आमुख में इसे स्वीकार किया है। कामायनी का अधिकांश चित्रण भले ही ठोस यथार्थ पर आधारित हो, तथापि प्रसाद जी ने इतिहास में अपनी कल्पना का मधु पर्याप्त अंश में जोड़ा है, कथा में अनेक मौलिक उद्भावनाएं की हैं, वर्तमान युग की विभीषिकाओं एवं परिस्थितियों की भी उनके मन पर छाप थी, अतः ठोस यथार्थ या इतिहास पर पल्लवित होते हुए भी इसमें रूपकात्मकता का अवकाश था और कवि ने जगह–जगह उसमें दूसरा अर्थ जाने–अनजाने भरा है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

12.5 सारांश

सारांश यह है कि कामायनी रूपक–काव्य (Allegory) तो नहीं है, पर उसमें रूपकात्मकता विद्यमान अवश्य है।

12.6 कठिन–शब्द

1) श्लाघ्य
2) आद्यंत
3) निवृत्ति
4) दुहिता
5) दुर्वृत्तियों
6) क्षुब्ध
7) विन्यस्त
8) आक्षेप

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1 कामायनी के रूपक तत्व पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र2 कामायनी के प्रधान पात्रों पर विचार व्यक्त करें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

12.8 सन्दर्भग्रन्थ/ पुस्तकें

1) कामायनी : एक अध्ययन – डॉ नगेन्द्र।

2) कामायनी अनुशीलन–रामलाल सिंह।

3) कामायनी, एक पुनर्विचार–मुक्तिबोध।

4) प्रसाद का काव्य–प्रेमशंकर।

5) कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन–इन्द्रनाथ मदान।

.....

प्रगतिवादी कविता एवं नागार्जुन

13.0 रूपरेखा
13.1 उद्देश्य
13.2 प्रस्तावना
13.3 प्रगतिवादी कविता एवं नागर्जुन
13.4 सारांश
13.5 कठिन शब्द
13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
13.7 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

13.1 उद्देश्य:–

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– प्रगतिवादी कविता के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
– प्रगतिवादी कविता में नागार्जुन के योगदान को जान सकेंगे।
– नागार्जुन मनुष्य के शोषण के सभी रूपों का विरोध अपनी कविता के माध्यम से करते हैं इससे अवगत हो सकेंगे।
– नागार्जुन जनचेतना के कवि है इससे अवगत होंगे।

13.2 प्रस्तावना

हिन्दी में प्रगतिवादी काव्य का आविर्भाव 1930 के आसपास हुआ। उस समय देश अंग्रेज़ों का गुलाम था। भारतीय जनता अनेक स्तरों पर अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ रही थी। राजनीतिक स्तर पर उसकी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का सम्बन्ध मार्क्सवादी विचारधारा और गैरमार्क्सवादी–राष्ट्रीय जनवादी–प्रवृत्तियों से था। प्रगतिवादी साहित्य जनता की इस साम्राज्यवाद–विरोधी भावना का साहित्य है। साहित्यिक स्तर पर इस भावधारा का सम्बन्ध भारतेन्दु–युग से लेकर छायावाद तक की पुष्ट साम्राज्यवाद–विरोधी परम्पराओं से है।

आधुनिक कथा–साहित्य के जनक प्रेमचन्द तथा छायावाद के दृढ़ स्तम्भ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और पंत ने अपने रचनात्मक और व्यक्तिगत सहयोग से प्रगतिशील साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी मार्क्सवादी विचारों को विषय बनाकर 'जयिनी' आदि कविताओं की रचना की। इसमें उन्होंने सिद्ध किया कि जिसे पूंजी कहते हैं वह दूसरों को ठग कर जोड़ी जाती है। वह जिन श्रमिकों की मेहनत की कमाई होती हैं उन्हीं के साथ पूंजीपति दासों जैसा बर्ताव करते हैं। छायावाद और प्रगतिवाद की युगसंधि पर दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल आदि की जो रोमांटिक धारा उत्पन्न हुई थी, वह भी कमोबेश प्रगतिशील साहित्य की मुख्यधारा से जुड़ गयी। प्रगतिवाद का यह प्रभाव कैसा था, इसका अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि आगे चलकर प्रयोगवाद, नयी कविता आदि व्यक्तिवादी–कलावादी साहित्य का उत्थान करने वाले लेखक भी खुद को उसके प्रवाह में बहने से रोक नहीं सके थे।

13.3 प्रगतिवादी कविता एवं नागार्जुन

प्रगतिवादी साहित्य जनता के हित की तरफदारी करता है। देश की अवस्था से उसके तटस्थ रहने की कल्पना नहीं की जा सकती। उसमें स्वाधीनता का जो सपना देखा गया वह देश की जनता में बढ़ते हुए समाजवादी विचारों से दृढ़–सम्बन्ध रखता है। डॉ. रामविलास शर्मा ने स्वाधीनता संग्राम की असंगतियों पर तीव्र व्यंग्य के स्वर से लिखा –

"देशभक्ति के काम में रूपये दिये हजार –

चमक उठा इस पुण्य से फिर खोया व्यापार।

न इसको लूट बताओ जी।"

इसी तरह 1946 में अंग्रेज़ी झंडे के नीचे अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई और कांग्रेस नेता गद्दी पर बैठ गये तो गिरिजाकुमार माथुर ने लिखा –

"मेरी मानवता पर रक्खा गिरि का–सा सत्ता सिंहासन,

मेरी आत्मा पर बैठा है विषधर–सा सामंती शासन।"

केदारनाथ अग्रवाल, भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, शमशेर बहादुर सिंह मुक्तिबोध आदि कवियों ने इस धारा में विशेष योगदान दिया। प्रगतिशील कविता के विकास और प्रचार–प्रसार में शिवमंगल सिंह सुमन, नरेन्द्र शर्मा और बच्चन आदि का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। बच्चन मुख्यतः छायावाद और प्रगतिवाद की युगसंधि पर स्थित हैं। उनमें रूमानी संस्कार इतने प्रबल हैं कि प्रकृति सम्बन्धी कुछ सुन्दर और 'बंगाल का अकाल' जैसी जीवंत यथार्थपरक कविताओं को छोड़कर वे और कहीं भी मधुशाला–मधुबाला से बाहर नहीं निकलते। नरेन्द्र शर्मा भी मूलतः इसी मनोभूमि के कवि हैं लेकिन उनमें सामाजिक भाव बोध अंचल–बच्चन से अधिक गहरा और व्यापक है। केदार नाथ अग्रवाल हिन्दी के उन श्रेष्ठ कवियों में हैं जिन्होंने औद्योगिक समाज में पिसते हुए, उससे टक्कर लेते हुए मजदूर वर्ग पर अत्यन्त सशक्त कविताएँ लिखी हैं –

"घाट, धर्मशालें, अदालतें, विद्यालय, वेश्यालय सारे

होटल, दतर, बूचड़खाने, मन्दिर, मस्जिद, हाट, सिनेमा

श्रमजीवी की उस हड्डी से टिके हुए हैं, जिस हड्डी को

सभ्य आदमी के समाज ने टेढ़ी करके मोड़ दिया है।"

नागार्जुन की कविताओं में मनुष्य के शोषण के सभी रूपों – साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध तीव्र रोष का भाव दिखायी देता है। उनका प्रगतिशील चेतना का स्वर अपने आप में समूचे युग की कथा–व्यथा है। उनकी कविताएं भुखमरी, अकाल, बाढ़, महामारी, महँगाई और बेरोजगारी से त्रस्त जनता के जीवन की बोलती तस्वीरें हैं जिन्हें बन्द आँखों वाले भी नहीं नकार सकते –

"कहीं बाढ़, भूचाल कहीं पर, कहीं अकाल, कहीं बीमारी,

महँगाई की क्या नजीर दूँ, मानो द्रुपद सुता की सारी,

भूखों मरो, चबाओ पत्ती, मगर अन्न का नाम न लेना,

कहीं न तुम भी पकड़े जाओ, कहीं सफाई पड़े न देना।"

नागार्जुन की कविता का स्वर शोषितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होने के साथ–साथ निर्माणोन्मुख भी है। क्रांति और संघर्ष के स्वरों के साथ उसने एक आधारभूमि भी प्रस्तुत की है। उसका स्वर शोषण का अन्त तथा सुख की स्थापना के लिए गूंजता है –

"तन जर्जर है भूख–प्यास से

व्यक्ति–व्यक्ति दुख–दैन्य–ग्रस्त है

दुविधा में समुदाय पस्त है।

... लो मशाल, अब घर–घर को आलोकित कर दो।"

पूंजीपतियों के दारुण अत्याचार से पिसती जनता के प्रति द्रवित होकर नागार्जुन कह उठता है –

'खादी ने मलमल से अपनी साँठ–गाँठ कर डाली है

बिड़ला, टाटा और डालमिया की तीसों दिन दीवाली है'

युगीन विकृतियों से पीड़ित कवि उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति व करुणा से भरकर उन्हीं की पंक्ति में जा खड़ा होता है –

"कुली मजदूर हैं/बोझा ढोते हैं, खींचते हैं ठेला

धूल–धुआँ–भाप से पड़ता है साबका

.....

सच–सच बतलाओ नागवार तो नहीं लगती है

जी तो नहीं कुढ़ता है? घिन तो नहीं आती है?"

कवि रचनाकारों को ललकारता है कि उन्हें जन–मन से जुड़कर चलना है। तभी तो जनसमूह के अन्तर प्रेरणा भर सकेगा। जिससे वह बाधाओं को ध्वस्त कर, नवीन का निर्माण कर सकेगा –

"तो उठो –

मन और तन की समूची ताकत लगाकर

विघ्न–बाधा के पहाड़ों को गिरा दो, ढाह दो

अमंगल के, अशुभ के उन हेतुओं को ध्वस्त कर दो

खोदकर निर्मूल कर दो कंटकावृत झाड़ियों को

राह में रोड़े पड़े हैं अमित–अगणित,

उन्हीं से अतलांत गह्वर पाट डालो।"

कवि जानता है कि मजदूर वर्ग पर करुणा के मेघ इतनी जल्दी नहीं बरसेंगें इसलिए पूंजीपतियों के हृदय–परिवर्तन करने होंगे। कवि आशान्वित है कि ऐसा अवसर जरूर आयेगा –

"होते रहेंगे बहरे ये कान जाने कब तक

.....

यों ही गुजरेंगे हमेशा नहीं दिन

बेहोशी में, खीझ में, घुटन में, ऊबों में

आएंगी वापस जरूर हरियालियां घिसी–पिटी झुलसी हुई दूबों में।"

उपेक्षितों तथा पीड़ितों का विश्वास बनकर आने वाला नागार्जुन उनकी शक्ति को आस्था में तथा भावना को संकल्पी स्वरों में गूंथता है। वह स्वयं जन–जन के लिए प्रतिबद्ध है –

"प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ

बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त

संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ

अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया धसान' के खिलाफ,

अंध–बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए

प्रतिबद्ध हूँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ।"

नागार्जुन की अधिकांश कविताएं भारतीय निम्न मध्यवर्गीय श्रमिक, किसान के जीवन को चित्रित करती हैं – 'कैसा असह्य, कितना जर्जर, यह मध्यवर्ग का निचला स्तर।' 'प्रेत का बयान' कविता भूख से मरने वाले एक अध्यापक का बयान है। 'अकाल और उसके बाद' की स्थिति 'सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज है –

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास

कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास

कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आये घर के भीतर कई दिनों के बाद

धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद

चमक उठीं घर–भर की आँखें कई दिनों के बाद

कौए ने खुजलाई पांखें कई दिनों के बाद।'

'हरिजन–गाथा' साधन सम्पन्न ऊँची जातियों वाले सौ–सौ मनु–पुत्रों द्वारा, तेरह अभागे अकिंचन बंधुआ हरिजन मजदूरों को प्रचंड अग्नि की विकराल लपटों में जीवित जलाने के बाद उस बस्ती में क्रांति के नवजात शिशु के प्रसव और उसके संरक्षण तथा लालन पालन की चिंता और नव–भविष्य के मुक्ति–संदेश की करुण एवं आक्रोश मिश्रित काव्य–गाथा है। व्यवस्था के प्रति व्यंग्य की चिनगारियाँ यत्र–तत्र चटकती हैं। इस कविता में जाति–प्रश्न के साथ वर्गीय परिप्रेक्ष्य पर जोर है, क्योंकि बच्चे को कुली–मजदूरों के बीच ही पलना और शिक्षित होना है। यह भी है, 'हिंसा और अहिंसा दोनों बहनें प्यार करेंगी। इसके आगे आपस में वे कभी नहीं तकरार करेंगी।' निश्चय ही उस समय एक लक्ष्य स्पष्ट था – समाज को बदलना होगा। इसके लिए एक प्रखर राष्ट्रीय, अमानवीय और क्रांतिकारी परिप्रेक्ष्य की जरूरत है, खंड–खंड की जगह एक बड़े परिप्रेक्ष्य है।

नागार्जुन प्राचीन क्लासिकल साहित्य से गहरा नाता रखते हुए भी सम्प्रदायवाद के घोर विरोधी थे। एक बार मेरठ नगर में घूम रहे नागार्जुन को रिक्शा पकड़ना था। एक रिक्शेवाले ने उनके पास आकर कहा –

"चलो बाबा जी/किधर ले चलूं

छीपी तालाब? बेगम पुल?

कि इतने में एक और युवक/इन कानों में/

फुसफुसा के कह गया – 'खबरदार यह मुसलमान है ...

इसके रिक्शे पर/ कभी न बैठना आप।"

नागार्जुन ने इस स्थानीय घटना के भीतर राष्ट्रीय जीवन में फैल रहे जहर को पहचाना। यह भी देखा कि सम्प्रदायवाद अपनी राजनीति ही नहीं एक बाजार भी बना रहा है। रिक्शेवाले ने रुद्राक्ष की माला पहन रखी है, भाल पर तिलक लगा रखा है। कलीमुद्दीन प्रेम प्रकाश बन गया है। ये सारी चीजें दंगाग्रस्त इलाके के मुसलमानों के भय की एक दर्दनाक छवि प्रस्तुत करती हैं।

नागार्जुन शोषितों के दुख, कष्ट और संघर्ष को कभी भी विस्मृत नहीं कर पाते। एक ओर उनके प्रति करुणा, सहानुभूति है तो दूसरी ओर उनकी सजगता बनाए रखने के लिए क्रांति का स्वर फूंकते हैं। वह प्रगतिशील आन्दोलन के पहले उत्थान के रचनाकार हैं। प्रारम्भ में क्रांति को महत्त्व देते रहे तत्पश्चात् श्रम, कठिन श्रम तथा नवनिर्माण के प्रति आस्था के स्वर में कविकर्म में प्रतिबद्ध हैं। वह मानते हैं कि भगवान् जैसी शक्ति की कल्पना मनुष्य के आंतरिक भय के कारण हुई है। कवि धरती का पुत्र है। उसे धरती के संघर्षों से प्रेम है। वह प्रभु से वरदान नहीं अभिशाप माँगते हैं –

"दे सको तो दो मुझे अभिशाप

प्रिय मुझे है जलन, प्रिय संताप –

रहूँ मैं दिन–रात ही बेचैन

आग बरसाते रहें ये नैन।"

अपनी मातृभूमि के कण–कण से कवि का गहरा लगाव है। जनता की पीड़ा को कवि ने अपनी पीड़ा समझा है और जब देश पर विपत्तियों के बादल मँडराये, कवि भारतीय जनता के साथ रहा। उनकी रचनाओं का एक पक्ष राष्ट्रीय कविताओं से भी सम्बन्धित रहा है, इन कविताओं में कवि ने सच्चे राष्ट्रप्रेमी और देशसेवक के रूप में अपने भावों को व्यक्त कर लोक मंगल की कामना प्रकट की है –

"खेत हमारे, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है

इसीलिए तो हमको इसका चप्पा–चप्पा प्यारा है।"

देश में साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार और शोषण को दूर करके नागार्जुन जनता में भावनात्मक एकता कायम करना चाहता हैं। देश पर चढ़ आने वाले दैत्यों से मुकाबला करने को तत्पर कवि अपनी मातृभूमि की रक्षा प्राणपण से करने को उत्सुक है। मातृभूमि के प्रेम में रत कवि की बलिदानी भावना और दीवानगी इन पंक्तियों में प्रस्फुटित होती है –

"भू माता के वक्षस्थल पर जिनके पैर टिके होते हैं

उनकी खातिर बरसा करते, आसमान से नये–नये हथियार

अरे! बाँस का फट्ठा ही तलवार बन गया।"

ये पंक्तियाँ स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत किसी भी राष्ट्र की जनता के स्वाभिमान और दृढ़ निश्चय को सूचित करती हैं। अपने देश की जनता के लिए ही नहीं अन्य देशों की जनता के संघर्ष पर भी नागार्जुन ने कईं कविताएं लिखी हैं। 'लुमुम्बा' पर लिखी कविता –

"अफ्रीका की काली मिट्टी लाल हो गई आज

गोरे बोनों की साजिश विकराल हो गई आज"

दुनिया में जहाँ भी दमन और संघर्ष है नागार्जुन की सहृदयता भौगोलिक सीमाएँ तोड़कर जनता की पक्षधर बनती है।

13.4 सारांश

नागार्जुन उन दृढ़–संकल्प रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने प्रगतिशील जीवन–मूल्यों को स्वीकार करके अपने साहित्य की दिशा निश्चित की और अपनी रचनात्मक सक्रियता से प्रगतिवादी साहित्य के विकास में निरंतर सहयोग दिया। उन्होंने अपने रचनाकाल के बीच आए प्रत्येक कालखंड के वादों, सिद्धान्तों का तिरस्कार किया। क्योंकि वह प्रत्येक काल खंड के प्रताड़ित, उत्पीड़ित, गरीब गुरबों के प्रवक्ता रहे, न किसी वाद और सिद्धान्त के।

13.5 कठिन शब्द

1.	बूचड़खाने	2.	उपेक्षित
3.	दारूण	4.	निषेधार्थ
5.	प्रतिबद्ध	6.	अकिंचन
7.	परिप्रेक्ष्य	8.	प्रवक्ता
9	प्रस्फुटित	10.	कंटकावृत

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1 नागार्जुन पीड़ितों एवं उपेक्षितों के कवि हैं स्पष्ट करें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०2 प्रगतिवादी कविता पर विचार व्यक्त करें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०3 प्रगतिवादी कविता के उद्‌भव पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

13.7 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य–कृष्ण लाल हंस।
2. प्रगतिवादी काव्य–उमेश चन्द्र मिश्र।
3. हिन्दी की प्रगतिशील कविता–डॉ रणजीत।

.....

नागार्जुन की जन–चेतना

14.0 रूपरेखा
14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 नागार्जुन की जन चेतना
14.4 सारांश
14.5 कठिन शब्द
14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.7 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– नागार्जुन की जनचेतना से अवगत होंगे।

– नागार्जुन ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर करारी चोट की है इससे अवगत होंगे।

14.2 प्रस्तावना

नागार्जुन की जन चेतना का आधार किसान आन्दोलन में उनकी भागीदारी के बीच निर्मित हुआ है। यही कारण है कि उनका जनवादी स्वर सशक्त, आक्रोशपूर्ण एवं क्रांतिकारी है। यह जनवादी स्वर युगीन विषमताओं और विकृतियों के प्रति न केवल ललकार भरा है वरन् जीवन के प्रत्येक स्तर पर बदलाव चाहता है। जिससे समानता, समता और समदर्शन की दृष्टि से देखा, समझा और अभिव्यंजित किया है। सम्पूर्ण भारत के दुख–दर्द, पीड़ा, छटपटाहट, शंका–कुशंका, ग्रामीण तथा नगरीय जीवन की विद्रूपताएं, निम्नमध्यवर्गीय जनता के अभाव के सभी रूप उनकी कलम ने रेखांकित किये हैं। समकालीन जीवन में व्याप्त आपाधापी, स्वार्थपरता, यांत्रिकता, भौतिकवादी सुख, ऐश्वर्य की भागदौड़, पूंजीपतियों के अत्याचार एवं उत्पीड़न के अनेक दृश्य इनकी कविताओं में मिलते हैं।

14.3 नागार्जुन की जन चेतना

नागार्जुन ने फटी बिवाइयों वाले खुरदरे पैरों, ठूँठ बाहों, बीड़ी का धुआं उगलते नाकहीन चेहरों, धंसी हुई आँखों, माचिस की तीली जैसी टाँगों, रोग से फूले हुए पेटों – अर्थात् उपेक्षित जन जीवन को बड़े करीब से देखा ही नहीं स्वयं भोगा भी है। उन्हीं के शब्दों में –

"पैदा हुआ था मैं

दीन–हीन अपठित किसी कृषक कुल में

मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व

रुद्ध है सीमित है ...

आटा–दाल–नमक–लकड़ी के जुगाड़ में

पत्नी और पुत्र में

सेठ के हुकुम में

कलम ही मेरा हल है कुदाल है

बहुत बुरा हाल है।'

भुखमरी, अकाल, बाढ़, महामारी, महँगाई और बेरोजगारी से त्रस्त जनता के दुख दर्दों को शब्दों का सादा जामा पहनाकर कवि सघन प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ है –

"कहीं बाढ़, भूचाल कहीं पर, कहीं अकाल कहीं बीमारी

मँहगाई की क्या नजीर दूँ, मानो द्रुपद सुता की सारी

भूखों मरो, चबाओ पत्ती, मगर अन्न का नाम न लेना

कहीं न तुम भी पकड़े जाओ, कहीं सफाई पड़े न देना।"

नागार्जुन निरन्न, निर्वस्त्र, निरालम्ब जनता के कवि हैं, इसलिए उनकी कविता में शोषित–पीड़ित जन समुदाय की व्यथा, बेबसी, भूख, गरीबी और तंगदस्ती का हृदयस्पर्शी चित्रण है। कवि का संघर्ष इस अभाव से मुक्ति का संघर्ष है। वह देख रहे हैं कि देश की कोई भी जगह खाली नहीं। मकान, दुकान, अस्पताल, स्कूल, फुटपाथ, गलियां और मस्तिष्क कुछ भी खाली नहीं। लेकिन –

"खाली है हाथ, खाली है पेट

खाली है थाली, खाली है प्लेट।"

भुक्खड़ों के त्रासद जीवन का चित्रण करते–करते नागार्जुन का क्रांतिकारी सटपटाकर जाग उठता है। तब विवशता के साथ क्रांति भावना का सम्मिलिन होता है। 'अन्न पचीसी' कविता में भूख की परवशता में क्रांति का स्वर फूट पड़ता है –

"भूखों मरते हों बच्चे तो यों ही मत रह जाओ

आतें सूख रही हों तो आँसू मत वृथा बहाओ

हाथ पैर वाले हो, नाहक कायर नहीं कहाओ

कीड़ों और मकोड़ों जैसे यों मत प्राण गँवाओ ...।"

नागार्जुन शोषितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होने के साथ–साथ निर्माणोन्मुख भी है। उनके विचार में नवसंकल्पों द्वारा शोषण का अन्त किया जा सकता है –

"तन जर्जर है भूख प्यास से

व्यक्ति –व्यक्ति दुख–दैन्य–ग्रस्त है

दुविधा में समुदायपस्त है।

... लो मशाल, अब घर घर को आलोकित कर दो।"

कवि रचनाकारों को ललकारता है कि वे जन–मन से जुड़कर चलें। तभी समानता और बन्धुत्व का वातावरण बन सकेगा –

"कलाधर या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है

पक्षधर की भूमिका धारण करो

विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा ..."

नागार्जुन देश, जनता और धरती के कवि हैं। साधारण जन की व्यथा को, धरती माता के कष्ट को तथा देश की छाती पर अंकित देशों को उन्होंने बार–बार आकुल होते हुए चूमा, सहलाया और पुचकारा है। वह उनके दुख–दैन्य से आहत हुए हैं, तो उनके जागने और करवटें लेने से उल्लसित भी हुए हैं। यही कारण है कि उनकी कविता सामाजिक यथार्थ की जीती जागती प्रतिमा बन गई है। कुछ चित्र देखिये –

"वह बोल नहीं सकती

.....

मां–बाप गरीब, न कर सकते कुछ प्रतिकार बहरेपन का

.....

बन सकती है वह चित्रकार

जिस से न मांगनी पड़े भीख

यह तो बस सपना है"

तथा

"फटी दरी पर बैठा है चिर–रोगी बेटा

राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी

गर्भ–भार से अलस शिथिल है अंग–अंग

मुँह पर उसके मटमैली आभा

छप्पर पर बैठी है बिल्ली।"

इन काव्य–चित्रों में पहला चित्र गूँगी–बहरी जया का है जो गरीबी के कारण जिन्दगी में कुछ भी नहीं सीख सकी। न जाने उसके जीवन का क्या हश्र होगा। दूसरा चित्र गरीब गर्भिणी माँ का तथा उसके रोगी बेटे का है। आर्थिक विपन्नता के ऐसे अनेक चित्र नागार्जुन की कविताओं में मिलते हैं। कवि स्वयं आम आदमी की तरह कष्ट भोगता हुआ अबूझ कठिनाइयों से जूझता है। वह जानता है कि जो भी इस धरती से, जन–जन से जुड़ा रहेगा वही यथार्थ को जान सकेगा। धरा की विषमताओं में तप कर ही वह ऐसी बदली बनेगा जिससे जन मन हरा हो सके –

"समझ गया हूँ

जीवन में इस धराधाम का क्या महत्त्व है

कैसे कहलाता कोई धरती का बेटा

आसमान में सतरंगी बादल पर चढ़ कर

कैसे जनकवि धान रोपता।"

नागार्जुन जन जागरण फैलाने वाले सजग प्रहरी हैं। इसीलिए छद्मवेशी नेताओं के प्रति उनका मन विद्रोह कर उठता है। वह व्यंग्यपूर्ण शैली में अपना विद्रोह प्रकट करते हैं –

"सपने में भी सच न बोलना वरना पकड़े जाओगे

भैया लखनऊ दिल्ली पहुँचो मेवा मिसरी पाओगे

माल मिलेगा रेत सको यदि गला मजूर किसानों का

हम मरभुक्खों से क्या होगा, चरण गहो श्री मानों का।"

साधारण जनता को रामराज का स्वप्न दिखाकर स्वतन्त्रता की लड़ाई में शामिल किया गया था। नागार्जुन ने उसके साथ हुए विश्वासघात की पोल खोलते हुए लिखा –

"रामराज में रावण अबकी नंगा होकर नाचा

सूरत शक्ल वही है भैया बदला केवल ढाँचा है।"

भारत की स्वाधीनता की लड़ाई नागार्जुन की कविता में जारी है, क्योंकि देश की गरीब जनता के लिए स्वतन्त्रता अन्ततः एक टूटता हुआ स्वप्न है। नागार्जुन इस देश की संघर्षशील गरीब जनता के सबसे समर्थ काव्यात्मक प्रवक्ता थे। उन्होंने 'स्वदेशी शासक' कविता में देश की विशाल जनता के मोहभंग को व्यक्त किया है –

"राजघाट पर बापू की बेदी के आगे अश्रु बहाओ,

.....

व्यर्थ हुई साधना, त्याग कुछ काम न आया

कुछ ही लोगों ने स्वतन्त्रता का फल पाया

इसीलिये क्या लाठी–गोली के प्रहार हमने थे झेले,

.....

इसीलिए क्या खून बहाया।"

स्वतन्त्रता और संसदीय लोकतन्त्र की खामियों की नागार्जुन ने कड़ी आलोचना की है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में जनता का काम अपने मालिकों को वोट देकर, उन्हें अपने ऊपर शासन करने के लिए छोड़ देना होता है। इसलिए लोकतंत्र के पहरेदार इन मालिकों पर जनकवि नागार्जुन की कड़ी नजर है। वह जनता के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध होने के कारण अपने उत्तरदायित्व को पूरी ईमानदारी से स्वीकार करते हैं –

"जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ?

जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ?

अपनी जन प्रतिबद्धता के चलते जनकवि नागार्जुन जिस तेवर के साथ राजसत्ता पर हमला बोलते हैं, वैसा हमलावर तेवर किसी दूसरे कवि में दिखाई नहीं देता। जब–जब उन्हें लगा कि राजसत्ता जनता के हितों के विरुद्ध जा रही है या राजनेता जनता को धोखा दे रहे हैं तब–तब नागार्जुन जनता की आवाज़ बन कर उठ खड़े हुए। उन्हें आरम्भ से ही सामंतों–पूंजीपतियों की गठजोड़ वाली कांग्रेसी सरकार पर भरोसा नहीं था। उन्हें लगता था कि इस सरकार की बिड़ला, टाटा, डालमिया जैसे बड़े–बड़े पूंजीपतियों से साँठ–गाँठ है। उन्हीं के शब्दों में –

"समझ न पाता हूँ कि हकूमत गोरी है या काली है –

खादी ने मलमल से अपनी साँठ–गाँठ कर डाली है।"

कवि चुनौती के स्वर में कहता है कि यदि अन्न–चोरी बढ़ती जायेगी तो भूखे मरने वाले लोगों की क्रांति विश्व को हिला देगी। शासक की बंदूक भी वहां फेल हो जायेगी –

"कूच करेंगे भुक्कड़ थर्राएगी दुनिया सारी

काम न आएंगे रत्तीभर विधि निषेध सरकारी

बन्दूकों पर हावी सैनिकों की लाचारी

सरे आम कीड़े खाएंगे बेदम अत्याचारी।"

भारत में भुखमरों का अभाव नहीं लेकिन राजनीतिज्ञों के प्रमाणों में कोई भुखमरा नहीं रहेगा। 'वह तो बीमार था' कविता इस कापट्य की कलई खोलती है –

"मन्त्री लेकिन सुना करेंगें अपनी जय–जयकार

सौ का खाना खाएँगे, पर लेंगे नहीं डकार

मरो–भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार

लिखवा लेगा घर वालों से – 'वह तो था बीमार।"

छली राजनीति एवं छदम् प्रजातन्त्र के नागार्जुन विरोधी थे। भारतीय राजनीति एवं प्रजातन्त्र पर उन्होंने तीखे वार किये। 'प्रजातन्त्र का होम' कविता में वह इन कपटियों का चित्रण इस प्रकार करते हैं –

"सामन्तों ने कर दिया प्रजातन्त्र का होम

लाश बेचने लग गए खादी पहने डोम।"

स्वतन्त्रता–दिवस और गणतन्त्र दिवस के खोखलेपन का नागार्जुन ने क्रुद्ध–चित्र खींचा है। आम जनता के लिए न छब्बीस जनवरी और न पन्द्रह अगस्त है। इन दिनों गरीबों की बस्ती में उखाड़ है, पछाड़ है। आम जनता की पीठ पर बजट का पहाड़ है और मजदूरों की छाती में हड्डियाँ मात्र हैं। यहां कोई सुखी नहीं, कोई सन्तुष्ट नहीं। जनवरी और अगस्त केवल धनकुबेरों के मनोरंजन के लिए है, शासकों के लिए है –

"किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है

कौन यहां सुखी है कौन यहां मस्त है

सेठ ही सुखी है सेठ ही मस्त है

मन्त्री ही सुखी है मन्त्री ही मस्त है

उसी की है जनवरी, उसी का अगस्त है।"

'तालाब की मछलियाँ' और 'हरिजनगाथा' नागार्जुन की जन–चेतना की नायाब रचनाएँ हैं। 'तालाब की मछलियाँ' कविता में नागार्जुन मछली तलने वाली महिला के साथ मछली के मार्मिक संवाद द्वारा नारी–जीवन की विडम्बना और उसकी अस्मिता का प्रश्न उठाते हुए मुक्ति की सम्भावना तलाशते हैं–

"हम भी मछली, तुम भी मछली

दोनों ही उपभोग की वस्तु हैं

ज्ञाता स्वाद सुधीजन, सजनी हम दोनों को

अनुपम बतलाते हैं

इसीलिए तो/हमें इन्होंने कैद कर लिया तालाबों में

इसीलिए तो/तुम्हें इन्होंने कैद कर लिया

सात–सात डेवढ़ियों वाली हवेलियों में।"

जाति–भेद से जर्जर भारतीय समाज–व्यवस्था में दलित जीवन की विडम्बनाओं पर केन्द्रित 'हरिजनगाथा' कविता दलित चेतना का व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती है। उनके अनुसार वर्ग–संघर्ष से पहले वर्ण–संघर्ष जरूरी है क्योंकि आज भी समाज में एक गरीब ब्राह्मण पूजा जाता है और एक अमीर दलित अपमानित होता है। इस कविता में भविष्य का नायक नवजात दलित शिशु जन्मजात क्रांतिकारी है और कवि को उसके नेतृत्व पर पूरा भरोसा है –

"श्याम सलोना यह अछूत शिशु/हम सबका उद्धार करेगा

आज यही सम्पूर्ण क्रांति का/बेड़ा सचमुच पार करेगा

दिल से कहा – दलित माँओ के/ सब बच्चे अब बागी होंगे

अग्निपुत्र होंगे वे, अन्तिम/विप्लव के सहभागी होंगे।"

नागार्जुन की वाणी जन–जन के क्षुद्र जीवन के छनन से छनकर आई है जिसमें आँसू के खारेपन और आक्रोश के विस्फोट हैं –

"मैं न अकेला कोटि–कोटि है मुझ जैसे तो

सबको ही अपना–अपना दुख है वैसे तो

पर दुनिया को नरक नहीं रहने देंगे हम

कर परास्त छलियों को, अमृत छीनेंगे हम।"

नागार्जुन का काव्य–संसार अभाव, पीड़ित भुखमरों का संसार है जहाँ बोझ ढोने वाले मजदूर, खेती करने वाले

मेहनती किसान, कारखानों के कठिन परिश्रमी, भीख मांगने वाले भिखारी, राशन के चावल से कंकड़ बीनने वाली नारी, अपनी बेटी के लिए गुलाबी चूड़ियाँ गाड़ी के गियर के ऊपर रखने वाले पिता, भूख से आहत नर–नारी, वेतन के लिए क्रांति करने वाला विप्लवी, भविष्य चिन्ता एवं मातृत्व की भूख से तड़पने वाली तरुणी भिक्षुणी, गर्भ भार से अलस शिथिल औरत, पुलिस की मार–पीट सहने वाले फटेहाल लोगों के प्रतिबिम्ब हैं।

14.4 सारांश

अतः नागार्जुन प्रखर जन चेतना के कवि हैं। जनता का दर्द उनका अपना दर्द है। यही कारण है कि उनकी कविता श्रमिकों के पसीने से तर, दीन–दुखियों के आँसुओं से भरी, विद्रोह, निषेध एवं विप्लव की आंधी से प्रक्षुब्ध है।

14.5 कठिन शब्द

1. विकृति
2. अभिव्यंजित
3. समदर्शन
4. निरालम्ब
5. त्रासद
6. छद्मवेशी
7. अस्मिता
8. विप्लवी

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1 नागार्जुन की जन चेतना पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०2 नागार्जुन देश, जनता और धरती के कवि है स्पष्ट करें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

14.7 सन्दर्भग्रंन्थ/पुस्तकें

1. प्रगतिवादी काव्य सहित्य – कृष्ण लाल हंस।
2. प्रगतिवादी काव्य – उमेशचन्द्र मिश्र।
3. हिन्दी की प्रगतिशील कविता – डॉ. रणजीत।

.....

नागार्जुन का व्यंग्य

15.0 रूपरेखा
15.1 उद्देश्य
15.2 प्रस्तावना
15.3 धार्मिक रूढ़ियों या अन्धविश्वासों पर व्यंग्य
15.4 सामाजिक स्थितियों पर व्यंग्य
15.5 राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं नेताओं पर व्यंग्य
15.6 सारांश
15.7 कठिन शब्द
15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.9 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

15.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– नागार्जुन एक प्रमुख व्यंग्यकार है इससे अवगत हो सकेंगे।

– नागार्जुन की कविताओं में धार्मिक रूढ़ियों या अन्धविश्वासों पर व्यंग्य किया गया है उसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

15.2 प्रस्तावना

नागार्जुन हिन्दी कवियों में मुख्य रूप से एक प्रमुख व्यंग्यकार माने जाते हैं। उनका व्यंग्य अखबारीपन लिए हुए नहीं वरन् जीवन की सजीवता लिए हुए है। इस व्यंग्य में अन्दर तक छीलते जाने की क्षमता है। विद्रोही वृति एवं खरी–पैनी बात सुनाना उनकी कविता का मुख्य गुण है। इसके परिणामस्वरूप देश में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं सामाजिक असमानताओं पर उन्होंने पैने व्यंग्य किये हैं। उनकी कविताओं में एक ललकार है, प्रतिद्वन्द्वी की बुराइयों को उघाड़कर उसे लगायी गयी फटकार है। कवि के व्यंग्य का स्तर कहीं–कहीं बहुत ऊँचा और कहीं अत्यन्त छिछला

भी हो गया है। ऐसा वहीं हुआ है जहाँ कवि व्यक्तिगत छीटांकशी से भी आगे बढ़ गया है।

नागार्जुन के व्यंग्य ने हास्य का रूप नहीं लिया। यों व्यंग्य–मिश्रित वक्र मुस्कान कहीं–कहीं अवश्य ही पाठकों के होठों पर खेल जाती है, पर स्पष्ट हास्य का नागार्जुन में सर्वथा अभाव है, क्योंकि 'व्यंग्य परिहास की तरह कभी प्रयोजनहीन नहीं होता। इसकी शुद्धता सदैव संदिग्ध होती है । सोद्देश्यता व्यंग्य कविता की प्राण है।' नागार्जुन एक प्रतिबद्ध रचनाकार हैं और उनकी प्रतिबद्धिता जन की मुक्ति के दर्शन से है। इसलिए उनके व्यंग्य–बाणों की बौछार मानवीय सरोकारों के तहत होती है। उनके अधिकांश व्यंग्य एक सच्चे, जन–हितैषी तथा जन नायक के व्यंग्य है। रामविलास शर्मा के शब्दों में – "इनकी व्यंग्य कविताएं दिल पर चोट करने वाली हैं, कर्त्तव्य की याद दिलाने वाली हैं और राह दिखाने वाली भी हैं।"

नागार्जुन की रचनाओं में धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक अव्यवस्थाओं और राजनीतिक स्थितियों तथा नेताओं पर तीखे व्यंग्य किये गये हैं :–

15.3 धार्मिक रूढ़ियों या अन्धविश्वासों पर व्यंग्य

कवि ने 'चौराहे के उस नुक्कड़ पर' कविता में अन्धश्रद्धालुओं तथा उनकी श्रद्धा का दुरुपयोग करने वाले पाखंडी साधुओं पर तीखा व्यंग्य किया है –

काँटो पर नंगा सोया है

ठिठक गया मैं लगा देखने

उस औघड़ बाबा के करतब

.....

और पाँच पैसे दस पैसे

जैसी श्रद्धा सिक्के वैसे

निकल रहे हैं जैसे तैसे

श्रद्धा का तिकड़म से नाता।"

'काली माई' कविता में काली माई की हिंसा और रक्तप्रियता पर व्यंग्य किया गया है –

"कितना खून पिया है, जाती नहीं खुमारी।

सुर्ख और लम्बी है, भइया जीभ तुम्हारी।'

15.4 सामाजिक स्थितियों पर व्यंग्य

नागार्जुन के व्यंग्यों का पैनापन उनके अनुभवों तथा संवेदनाओं का निचोड़ है। जन–जीवन की व्यथा और उससे

प्रेरित रिक्तता मुख्य कारण है जो नागार्जुन के व्यंग्यों में मारक शक्ति भर सकी है। 'खाली नहीं और खाली' कविता सामाजिक यथार्थ को व्यंग्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करती है –

"मकान नहीं खाली,/दुकान नहीं खाली

खाली है हाथ

खाली है पेट

खाली है थाली, खाली है प्लेट।"

'वह तो बीमार था' कविता का व्यंग्य भी अति मारक है। भूख से मरने वाले को बीमार करार देकर पोस्टमार्टम करवाना, जिलाधीश का अपने को करुणा का अवतार कहलवाना, समाज की विद्रूप स्थिति का ही चित्रण है –

"ले भागेगी जीप लाश को सात समंदर पार

अंग–अंग की चीर–फाड़ होगी फिर बारम्बार

मरी भूख को मारेंगे फिर सर्जन के औजार

जो चाहेगी लिखवा लेगी डाक्टर से सरकार

.....

मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार

लिखवा लेगा घर वालों से – 'वो तो था बीमार'।

'पाषाणी' कविता में अपना उद्धार करने वाले राम के प्रति भी अहिल्या की अशंका सामंती सभ्यता पर प्रताड़ित नारी का सबसे बड़ा व्यंग्य है –

"वत्स, राजकुल में पाया है जन्म

कभी बनोगे तुम्हीं कोसलाधीष

फिर चरणों पर नाना दिग्देशीय

अर्पित होगें शत–शत सुन्दर फूल

.....

अंतःपुर में षोड़शियों के मध्य

बिता सकोगे तुम भी तब दिन–रात

शरद शिशिर मधु ग्रीष्म और बरसात

नहीं अहल्या आयेगी फिर याद।"

सामाजिक यथार्थ के उद्घाटन के सशक्त माध्यम के रूप में नागार्जुन ने इन व्यंग्यों का प्रयोग किया है। उन्होंने विभिन्न प्रकार की मनःस्थितियों में कभी हल्के–फुल्के, कभी बड़े मारक और गहरे रूप में, कभी क्रोध से आग–बबूला होते हुए, कभी नितान्त गम्भीर बनकर और कभी निहायत शरारती मुद्रा में पात्र, प्रसंग और अवसर के अनुरूप इन व्यंग्यास्त्रों को चलाया है। कुछ उदाहरण देखिये – पंचवर्षीय योजनाएं, पाँच वर्षों तक गरीब, किसान और मजदूर सबको बाँधे रखती हैं और जब वे क्रियान्वित होती हैं तो हाथ कुछ नहीं लगता। इस पर कवि का व्यंग्य है–

"आजादी की कलियां फूटीं, पाँच साल में होंगे फूल,

पाँच साल में फल निकलेंगे, रहे पंत जी झूला झूल

पाँच साल कम खाओ भैया, गम खाओ दस–पंद्रह साल

अपने हाथों से झोंकों यों अपनी आँखों में धूल।"

'जयती नखरंजनी' कविता में आधुनिकताओं की उस फैशनपरस्ती पर व्यंग्य है जिसमें मतदान के बाद ऊँगली पर स्याही लगने से सुन्दरता का नष्ट हो जाना समझा जाता है –

"छिः कौन लगवाए काले निशान?

कौन ले बैलेट पेपर, मतदान कौन करे?

बात थी जरा–सी काले निशान की,

तीन वोट रह गए फैशन के नाम पर।"

'विज्ञापन सुन्दरी' और 'प्लीज एक्सक्यूज मी' भी इसी प्रकार के व्यंग्य हैं जिनमें झूठी शान दिखाने का आडम्बर रचने वाली आधुनिकताओं पर व्यंग्य किये गये हैं।

'तो फिर क्या हुआ' कविता में नागार्जुन उन बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य करते हैं जिन्हें केवल अपनी कुर्सी और वेतन से मतलब होता है। समूचा गांव नदी के पेट में समा गया है। हजारों लोग बेघर हो गए हैं। मगर ये बुद्धिजीवी कॉफी या नींबू का शरबत पीकर गोल्डलैक से धुएँ के छल्ले छोड़ते हुए 'स्टेट्समैन' की खबरों में डूब जाते हैं। 'कवि' शीर्षक कविता में उन कवियों पर व्यंग्य किया गया है जिनका गला मीठा है, जो रेडियो के लिए गीत लिखते हैं, जो 'एज़रापाउंड' और 'इलियट' को पढ़ते हैं और बाकी सबको इडियट समझते हैं। 'अजी धन्य हो कवि कोकिल तुम' शीर्षक कविता में युग–बोध से दूर रहकर लिखने वाले कवियों पर व्यंग्य किया गया है।

15.5 राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं नेताओं पर व्यंग्य

नागार्जुन के व्यंग्य का सबसे आकर्षक रूप राजनीतिक कविताओं में देखा जा सकता है, जिनमें उन्होंने कहीं भ्रष्ट स्वदेशी शासकों, साम्राज्यवादी राज्याध्यक्षों, सर्वोदयी नेताओं आदि पर उनकी अनैतिकता और कर्त्तव्यहीनता को देखकर व्यंग्य किया है। गाँधीजी के प्रति नागार्जुन की सारी श्रद्धा उनके जननायक वाले रूप को लेकर है। इस

भावना के वशीभूत होकर वे न तो गाँधीजी का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन त्याग देते हैं न ही उनके अनुयायियों के दोमुंहेपन पर व्यंग्य करने से चूकते हैं –

"बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के/सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के।"

तथा

"गांधी जी का नाम बेचकर बतलाओ कब तक खायेागे?

यम को भी दुर्गन्ध लगेगी, नरक भला कैसे जाओगे?"

कवि खादीधारी नेताओं को रंगा हुआ सियार मानता है। आजादी के बाद शासकों ने अपने पर जब–जब संकट घिरा पाया, तब–तब देश पर संकट की बात कर जनता का ध्यान हटाया है –

"वतन नहीं है खतरे में, खतरे में हैं नेतागण

रंग धुल रहा स्यारों का अब मौन करेगा पालागन'।

गांधी के नाम पर वोट बटोरने वालों पर भी नागार्जुन ने तीखा व्यंग्य किया है –

'बेच बेच कर गांधी जी का नाम

बटोरो वोट

बैंक बैलेंस बढाओ

राजघाट पर बापू की वेदी के आगे अश्रु बहाओ।'

नागार्जुन को गांधी पर अपार श्रद्धा है किन्तु गांधी के चेलों ने गांधी को मात्र पूजा का प्रतीक बना दिया। गांधी की शिक्षाओं को उन्होंने अपने आचरण मे नहीं ढाला। बल्कि उन उपदेशों को भी स्वार्थ साधन के रूप में प्रयोग किया। इन्हीं कार्यकर्त्ताओं पर कवि ने व्यंग्य किया है –

"दिन दिन पदयात्रा, कर्महीन

चिन्तन का केवल चमत्कार

बतला दो बापू क्या थे तुम

गोरस, मधु सेवन फलाहार?"

विजयदशमी के पर्व पर सामंतवर्ग के जो प्रतिनिधि अपने को विजेता राम के वंशधर मान कर मरे हुए रावण को मारने के लिए निकलते हैं कवि ने उन पर 'विजयी के वंशधर' कविता में करारा व्यंग्य किया है –

"राक्षस रावण को मार दिया सींक से

हिमालय को मात किया सर्दी से, छींक से।"

दिल्ली से टिकट लेकर लौटे नेताओं पर एक व्यंग्य देखिये –

"श्वेतश्याम रतनार अंखियां निहार के

सिंडीकेट प्रभुओं की पगधूर झार के

दिल्ली से लोटे है कल टिकट मार के

खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के

आए दिन बहार के।"

राजनीतिक गतिविधियों में व्यस्त और अपने उल्लू सीधे करते हुए नेताओं से युक्त यह देश कवि को एक चिड़ियाखाने के समान दिखाई देता है जिसमें सब जानवर अपनी–अपनी करतूतें दिखा रहे हैं –

"देखा सबने चिड़ियाखाना

.....

धवल टोपियां फेंक रहे थे

मगर गधों से रेंक रहे थे

.....

बैलों के पीछे अनबोले

मचल रहे थे साँप सपोले

बार पास था,कार पास थी

बुढिया कंगारु उदास थी।"

देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, पुलिस आतंक और जन–धन की फिजूलखर्ची पर नागार्जुन ने खूब व्यंग्य किये हैं। 'आओ रानी हम ढोएंगे पालकी' तथा 'टके की मुस्कान करोड़ों का खर्चा' कविताओं में रानी एलिजाबेथ के भारत आगमन पर और यहां की सरकार द्वारा उसके स्वागत के लिए किये गये अपव्यय पर व्यंग्य किया गया है –

"पार्लमेन्ट के प्रतिनिधियों से आदर लो, सत्कार लो,

.....

धनकुबेर उत्सुक दीखेंगे उनको जरा दुलार लो

होठों को कम्पित कर लो, रह–रह के कनखी मार लो।"

नेतागण स्वयं विलास में जीवन बिता रहे हैं और साधारण जन मंहगाई की मार झेलता अर्धनंगा, अर्धभूखा घूम

रहा है। बड़े–बड़े वादों और आश्वासनों के नाम पर जनता को भरमाया जाता है। ऐसी स्थिति में नागार्जुन ने एक सच्चे जन–कवि के रूप में सामान्य जन को भ्रम–निद्रा से जाग्रत कर अपने आधार को टटोलने की प्रेरणा दी है।

15.6 सारांश

नागार्जुन की व्यंग्य पद्धति निजी परिस्थितियों तथा तीखे अनुभवों से साहित्यिक उत्तरदायित्व को निभाने में अधिक सफल एवं महत्त्वपूर्ण है। इस संदर्भ में डॉ. हरिनारायण मिश्र की टिप्पणी सटीक है – "नागार्जुन की व्यंग्य रचना में कबीर की तल्खी, भारतेन्दु की करुणा और निराला की विनोद–वक्रता का विलक्षण सामंजस्य है।

15.7 कठिन शब्द

1. छिछला
2. परिहास
3. संदिग्ध
4. धवल
5. अपव्यय
6. विलक्षण
7. सामंजस्य

15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1 नागार्जुन के काव्य में व्याप्त व्यंग्य पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०2 नागार्जुन के काव्य में राजनीतिक भ्रष्टाचार पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

15.9 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1. प्रगतिवादी काव्य सहित्य – कृष्ण लाल हंस।
2. प्रगतिवादी काव्य – उमेशचन्द्र मिश्र।
3. हिन्दी की प्रगतिशील कविता – डॉ. रणजीत।

.....

नागार्जुन का शिल्प–विधान

16.0 रूपरेखा
16.1 उद्देश्य
16.2 प्रस्तावना
16.3 नागार्जुन का शिल्प–विधान
16.3.1 भाषिक संरचना
16.3.2 भावनुकूलता
16.3.3 मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ
16.3.4 नाटकीयता
16.3.5 अलंकार विधान
16.3.6 छन्द
16.3.7 बिम्ब
16.3.8 प्रतीक
16.4 सारांश
16.5 कठिन शब्द
16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.7 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

16.1 उद्देश्यः

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप
–शिल्प के अर्थ को जान सकेंगे।
–नागार्जुन के शिल्प विधान को जान सकेंगें।

16.2 प्रस्तावना

रूप को सजाने–सँवारने के लिए अनेक साधन जुटाए और काम में लाए जाते हैं। उन साधनों का विन्यास जिस तरह किया जाता है, उसे शिल्प कहा जाता है। सीधे शब्दों में शिल्प बात को कहने का ढंग है। इस ढंग का अपना महत्त्व है क्योंकि ढंग के प्रभाव से बात असरदार बनती है। लेकिन इससे यह भ्रम भी पैदा होता है कि बात से ज्यादा महत्त्व ढंग का है। इस भ्रम का शिकार रचनाकार शिल्प पर अधिक ध्यान देते हैं रूप के सजाने–सँवारने के साधनों जैसे शब्द–चयन, वाक्य–विन्यास, रूपक, प्रतीक बिम्ब विधान आदि पर अधिक जोर देते हैं और यह सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं कि शिल्प–विधान से ही कविता श्रेष्ठ बनती है। इस दृष्टि से कविता का कथ्य गौण पड़ जाता है जबकि कविता में काव्यवस्तु की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस प्रकार शिल्प के माध्यम से कवि अपनी अभिव्यक्ति को प्रखर बनाता है और कविता को एक रूप देता है।

16.3 नागार्जुन का शिल्प–विधान

नागार्जुन प्रगतिवादी कवि थे। उनका मुख्य लक्ष्य जन–चेतना को जाग्रत करना रहा है। अल्प–शिक्षित जनता को प्रेरित करने के लिए उसके स्तर तक पहुँच कर कविता लिखने के कारण शब्दों की सजावट पर इनका ध्यान कम गया। अजय तिवारी के शब्दों में "नागार्जुन जैसे कवि के शिल्प–विधान का अध्ययन अधिक पेचीदा इसलिए हो जाता है कि वे अपनी बात इतनी सादगी से रखते हैं कि उसमें बहुत बार कला के मान्य और स्वीकृत लक्षण दिखाई नहीं देते। लेकिन कहने के लिए वे जो बात चुनते हैं वह उनके व्यापक अनुभव–ज्ञान का अभिन्न अंग होती है।" शिल्प के प्रति वह सजग हैं पर आग्रही नहीं। उनकी कविता के शिल्प–विधान को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है :–

16.3.1भाषिक संरचना

नागार्जुन की भाषा सरल, सुगम तथा बोधगम्य है। उनकी भाषा का रंग एक नहीं – उसमें जनसाधारण की भाषा, पंडितों तथा काव्य रसिकों की भाषा के रंग हैं। उनका संस्कृत ज्ञान सृजन–क्षणों के मध्य बड़ी खूबसूरती से आ खड़ा हुआ है। 'भस्मांकुर' एवं 'बादल को घिरते देखा है' की भाषा संस्कृतगर्भित है। इसके अतिरिक्त कवि द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्दावली का कोश भी कम नहीं है – युग्म, लावण्य, हिम प्रांतर, मायावर, किसलय–कुसुम–प्रसार, स्वर्णचन्द्र, श्लथ, वलय, युगनद्ध, धवलाद्रि, श्रुति–संपुट आदि। इसी प्रकार तद्भव शब्द भी नागार्जुन की काव्य–भाषा के अंग हैं। यथा – मगन, धारन, दूब, होठ, कटीली, मीत, सेज, दीठ, असगुन, राख, धरती आदि।

नागार्जुन जनवादी कवि हैं इसलिए उनकी कविताओं में सर्वत्र लोकभाषिक आग्रह दिखाई पड़ता है। जनता की बात, जनता के लिए, जनता की भाषा में ही सम्भव है। इसलिए लोकभाषा के शब्दों के प्रति नागार्जुन का आग्रह स्पष्ट है। कतिपय उदाहरण – कलमुंही, बंसफोड़, पचासठो रुपिया, मुच्छड़, पछिया, इत्ता–सा, ताल, पोखर, नुक्कड़, छिनाल आदि। ग्रामीण शब्दों के अतिरिक्त नागार्जुन की कविता में, बंगला, उर्दू एवं अंग्रेजी के शब्द भी मिलते हैं। बंगला – द्यकचो खोकोन, ओइ जो गांधी महत्ता, नक्शल बड़ीर आदि। अंग्रेज़ी रेस कोर्स, गियर, केरियर, सिक्योर आदि और उर्दू – अमानत, शहीद, गायब, मुताबिक, नदारद आदि।

इस प्रकार कवि ने जहां अपनी भाषिक प्रयोग क्षमता सिद्ध की है वहीं हिन्दी भाषा को समृद्ध बनाने का प्रयत्न भी किया है।

16.3.2 भावानुकूलता

नागार्जुन की भाषा सदैव भावानुकूल रही है। उदाहरणार्थ देश की रक्षा की भावना को व्यक्त करने सम्बन्धी कविताओं में एक ललकार है तो प्रकृति चित्रण अथवा प्रणय–सम्बन्धी कविताओं की भाषा कोमल शब्दों से युक्त है। 'सिन्दूर तिलकित भाल' इसी प्रकार की रचना है। व्यंग्यपूर्ण कविताओं में कवि की भाषा सम्बद्ध व्यक्ति पर सीधा निशाना मारने में समर्थ दिखाई देती है। व्यंग्य की विभिन्न शैलियों के अनुरूप ही कवि की भाषा के दर्शन होते हैं। व्यंग्य कविताओं में भाषा चलती हुई, चुस्त और चुटीली है – "बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के।"

16.3.3 मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ

नागार्जुन द्वारा प्रयुक्त मुहावरें एवं लोकोक्तियां यथा – लोहा पीटना, उँगली उठाना, फूले न समाना, नाक रगड़ना, मुंह की खाना, तीसों दिन दिवाली आदि कवि की भाषा की लोक–शक्ति के परिचायक हैं।

16.3.4 नाटकीयता

नागार्जुन की कविता में नाटकीयता अनेक स्तरों पर दिखलायी पड़ती है –

"बताऊं?

कैसे लगते हैं

दरिद्र देश के धनिक?

कोढ़ी–कुढब तन पर मणिमय आभूषण'

उपर्युक्त पक्तियों में कवि की कथन–भंगिमा ऐसी है कि उसने प्रश्न के रूप में एक चरम स्थिति का उल्लेख करके उत्तर के रूप में दूसरी चरम स्थिति को सूचित किया है। दो चरम–विरोधी स्थितियां एक–दूसरे से टकराती हैं और इस नाटकीयता से मार्मिक व्यंग्य उत्पन्न होता है।

'प्रेत का बयान' कविता में एक प्राइमरी स्कूल का मास्टर भूखमरी का शिकार होकर नरक पहुँचा। यमराज उससे मृत्यु का कारण पूछते हैं। वह बताना शुरू करता है –

तनखा थी तीस, सो भी नहीं मिली

मुश्किल से काटे हैं

एक नहीं, दो नहीं, नौ–नौ महीने।

धरनी थी, माँ थी, बच्चे थे चार

आ चुके हैं वे भी दयासागर करुणा के अवतार

आप की छाया में

मैं ही था बाकी

क्योंकि करमी की पत्तियाँ अभी कुछ शेष थीं

हमारे अपने पुश्तैनी पोखर में।"

नरक का राजा उसकी बात सुनकर अविश्वासपूर्वक भभाकर हँस पड़े, उनके सिर के मुकुट की कंपमान झालरें दमक उठीं, अपना सुनहला लौहदंड फर्श पर ठोंककर उन्होंने पूछा – "तो तुम भूख से नहीं मरे?" नागार्जुन देखते हैं कि लोग भूख से मरते हैं, ये मौतें भुखमरी की हालत में करमी की पत्तियां खाकर हों या ऐसी ही किसी दूसरी वजह से। लेकिन इस सत्य से मुँह चुराने वाले कोई न कोई अन्य कारण खोज निकालते हैं। 'प्रेत का बयान' में इस दारुण वास्तविकता को पुराकथा पर आधारित फैंटसी में ढालकर नागार्जुन ने नाटकीय धरातल पर प्रस्तुत किया है। इनकी कविताओं में नाटकीयता व्यंग्य के साथ जुड़कर आती है। 'हरिजन गाथा' एवं 'खुरदरे पैर' जैसी कविताओं में भी नाटकीयता देखने को मिलती है। इनमें चित्रण की नाटकीयता से मार्मिक प्रभाव उत्पन्न होता है।

16.3.5अलंकार विधान

शिल्प विधान की दृष्टि से यदि अलंकार विधान को नागार्जुन के काव्य में ढूँढते हैं तो ज्ञात होता है कि अलंकार स्वयं इनकी कथन वक्रता एवं अभिव्यक्ति शैली के प्रति खिंचे चले आए हैं। फलतः उपमा, रूपक, असंगति, विरोधाभास, मानवीकरण, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की भरमार है –

उपमा – निपट मुग्धा–सी भाव विभोर।

उत्प्रेक्षा – झेल रहा है मानो यहां त्रिकाल फुहिया की माला किरणों का जाल।

रूपक एवं मानवीकरण – हजारों बाहों वाली शिशिर विषकन्या उतरी लेकर सांसों में प्रलय की वन्या।

असंगति – वोट मिलना लगता आसान

कहीं पर भोज कहीं गुनगान

कहीं पर थोक नकद नगदान।

नागार्जुन की अलंकार–योजना अभिप्रेत भावना को वहन करने में पूर्ण सक्षम है। उन्होंने उपमाएं दैनिक जीवन से ली हैं –

"घिसे हुए पीतल–सी पांडुर

पूस मास की धूप सुहावन।"

16.3.6 छन्द

छन्द की दृष्टि से मुक्तछन्द और छन्दबद्ध दोनों रूप नागार्जुन के काव्य में प्राप्त होते हैं। मुक्तछन्द से युक्त इस कविता में कवि ने भावों को कितनी सफलता से व्यक्त किया है –

"शिवजी की तीसरी आँख से
निकली हुई महाज्वाला में
घृतमिश्रित सूखी समिधा–सम
कामदेव जब भस्म हो गया
रति का क्रंदन सुन आँसू से
तुमने ही तो दृग धोये थे?
कालिदास, सच–सच बतलाना
रति रोई या तुम रोये थे?"

नागार्जुन के काव्य में प्रयुक्त छन्दों का निजी वैशिष्ट्य भी है और शास्त्रीय आधार भी। उन्होंने प्रगीतों की भी सृष्टि की है और मुक्तक छन्द का प्रयोग भी सफलता–पूर्वक किया है। छन्दबद्ध तुकांत कविताओं में गेयता है, लय है, तुक तान है। छन्दबद्ध कविताओं में कुछेक कविताएँ छन्दों की सीमा को स्वीकारती हुई भी अतुकांत हैं। कहीं–'कहीं तुकान्त कविताओं में मात्रिक क्रमबद्धता का अभाव भी दिखाई देता है। इस सन्दर्भ में कवि का कथन है कि मुक्त छन्द में सफलतापूर्वक रचना तभी हो सकती हे जब रचयिता को परम्परागत छन्दों का गहरा ज्ञान हो। यही कारण है कि हिन्दी के कवित्त, सवैया, बरवै जैसे छन्दों से लेकर आधुनिक से आधुनिक छन्द प्रयोग उनके काव्य में मिलता है।

16.3.7 बिम्ब

काव्य में बिम्ब का तात्पर्य उस चित्र से है, जिसे कवि अपनी कविता द्वारा पाठकों के हृदय में उपस्थित कर देता है। बिम्ब अंग्रेज़ी शब्द 'इमेज' का हिन्दी रूपान्तर है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में "काव्य–बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस–छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।" कवि की अनुभूति पाठक के हृदय से तादात्म्य तभी स्थापित कर सकती है जब वह सफल बिम्ब प्रस्तुत करे। नागार्जुन ने अपने काव्य में कई अछूते दृश्य या चाक्षुष बिम्बों को पकड़ा है। 'बादल को घिरते देखा है' शीर्षक कविता दृश्य बिम्ब का सफल उदाहरण है –

"अमल धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है

छोटे–छोटे मोती जैसे अतिशय शीतल वारिकणों को

मानसरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर गिरते देखा है।"

श्रव्य बिम्ब – "नचाकर लम्बी .....सा पंचगुरा हाथ

रुखी पतली किटकिट आवाज़ में

खड़ खड़ खड़ खड़ हड़ हड़ हड़ हड़

काँपा कुछ हाड़ों का मानवीय ढांचा"

स्पर्श बिम्ब – "मधु ऋतु की जादुई छुअन से तृप्त

गिरितनया का अधर सुधारस पान।"

स्मृति बिम्ब – "घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल

याद आता, तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल।"

नागार्जुन ने ऐन्द्रिक एवं स्मृत बिम्बों का सफल चित्रण किया है। कहीं–कहीं अभिधात्मक उक्तियों में कवि के बिम्ब–निर्माण–कौशल का ह्रास भी दिखाई देता है तो कहीं उन्होंने शास्त्रीय शैली का बिम्ब भी अपनी संस्कृतनिष्ठ भाषा से युक्त कविताओं में प्रस्तुत किया है।

16.3.8 प्रतीक

प्रतीक उस शब्द, शब्द चित्र, रूपक, पुराण कथा या अन्यविध आख्यान को कहते हैं जो अपने अर्थ को छोड़ कर किसी अन्य समान और सम्बद्ध अर्थ को व्यंजित करता है। नागार्जुन एक प्रमुख व्यंग्यकार है। सफल व्यंग्य के लिए प्रतीक बड़े आवश्यक एवं उपयोगी होते हैं। दूसरे शब्दों में प्रतीक की आड़ में ही कवि अपने इच्छित लक्ष्य पर बेखटके वार कर सकता है। 'भुंस का पुतला' कविता में कवि ने कांग्रेसी नेताओं को भुस का पुतला कहा है जो देश की समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ है –

"सरग था ऊपर नीचे था पाताल

अपच के मारे बुरा था हाल

दिल दिमाग भुस का, खद्दर की थी खाल।"

'एक बन्दरिया' प्रमुख नारी नेता की प्रतीक है तो 'रानी मक्खी' देश की राजनीति की। 'चिड़ियाखाना' भ्रष्ट नेताओं के जमघट का प्रतीक है –

'देखा हमने चिड़ियाखाना

सुना चीखना और चिल्लाना

.....

धोती कुर्ते में थे हाथी

सूकर ऊंट थे जिनके साथी

बैलों के पीछे–अनबोले

मचल रहे साँप–सपोले।'

प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण से कवि ने कई प्रतीक चुने हैं। 'शासन की बन्दूक' का आतंक तोड़ने के लिए वह 'जली ठूंठ पर बैठकर कोकिला के कूक' जाने का प्रतीक चुनते हैं।

'नंगे तरु हैं, नंगी डालें', 'बूढ़ा शेर', 'तालाब की मछलियां', 'पुरानी जूतियों का कोरस', 'बाघिन', 'अग्निबीज', 'भस्मांकुर' आदि इनकी प्रमुख प्रतीकात्मक रचनाएं हैं।

16.4 सारांश

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि नागार्जुन एक ऐसे शिल्पी हैं जो जटिलतर और सूक्ष्मतर संवेदनाओं को भी अपनी रचना में मूर्त करने की अद्‌भुत कला जानते हैं। इस सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्र की नागार्जुन की कलात्मकता पर टिप्पणी सार्थक सिद्ध होती है – "इतनी जीवंत तथा समृद्ध भाषा लिखने वाला, छन्दों को लेकर इतना परिश्रम करने वाला तथा रंगों–गन्धों–रूपों का इतना महीन और कुशल पारखी, इतने सूक्ष्म निरीक्षण–पर्यवेक्षण का धनी कवि हिन्दी में आधुनिक हिन्दी कविता में निराला को छोड़कर कोई दूसरा नहीं है।

16.5 कठिन शब्द

1. प्रखर	2. भंगिमा
3. अभिप्रेत	4. तादात्मय
5. अभिधात्मक	6. कोरस
7. भस्मांकुर	8. पंचगुरा
9. पर्यवेक्षण	10. निर्जन

16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. शिल्प का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके स्वरूप पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०2. शिल्प विधान के अंतर्गत किन किन बिन्दुओं को लेकर चर्चा की जाती है विवेचना करें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०3. नागार्जुन के शिल्प विधान पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

16.7 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1. प्रगतिवादी काव्य सहित्य – कृष्ण लाल हंस।
2. प्रगतिवादी काव्य – उमेशचन्द्र मिश्र।
3. हिन्दी की प्रगतिशील कविता – डॉ. रणजीत।

.....

अज्ञेय की प्रतीक योजना

इकाई की रुपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 प्रतीक का अर्थ एवं अज्ञेय का अभिमत

17.3 अज्ञेय काव्य में प्रतीक योजना

- 17.3.1 परम्परागत प्राकृतिक प्रतीक (नऐ संदर्भ व नए अर्थ के साथ)
- 17.3.2 निजी प्रतीक
- 17.3.3 मनोवैज्ञानिक प्रतीक
- 17.3.4 पौराणिक प्रतीक
- 17.3.5 आधुनिक प्रतीक
- 17.3.6 दार्शनिक प्रतीक

17.4 प्रतीक का महत्व

17.5 सारांश

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.7 सन्दर्भ ग्रंथ / पुस्तकें

17.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरान्त आप :

- काव्य में प्रतीक का अर्थ व महत्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रतीक के सम्बन्ध में अज्ञेय के अभिमत को समझ सकेंगे।

- अज्ञेय काव्य में विद्यमान विविध प्रतीकों की उदाहरण सहित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- अज्ञेय की प्रतीक योजना के अध्ययन के आधार पर उनके व्यक्तित्व का आकलन करने का कौशल विकसित कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

भारतीय काव्य में प्रतीक विधान यूं तो ऋग्वेद से ही प्रारम्भ होता है। उपनिषद् काल से लेकर हिन्दी के रहस्यवादी कवियों ने प्रतीक प्रणाली को अपनाया है। अज्ञेय की कविता के प्रतीक भारतीय परम्परा से भी लिए गये है साथ–साथ पश्चिम प्रभाव से युक्त प्रतीक भी उनके काव्य में विद्यमान है। 'प्रतीक' मानवीय चेतना के विकास से जुड़ा है। यूरोप के फ्रांस में तो 'प्रतीकवाद' के नाम से एक पूरा आन्दोलन चला था। फ्रांसिस विद्वान व कवि बॉदलेयर, मलार्मे, रिम्बो, पाल, वलेरी, यीट्स आदि ने रहस्यमयी अनुभूति की मानवीय भाषा में छन्दोमयी अभिव्यक्ति को महत्व दिया तथा साहित्य में प्रतीकवादी दर्शन की प्राणप्रतिष्ठा की। हिन्दी साहित्य में हिन्दी के कवियों ने प्रयोगशील दृष्टि से प्रतीकों का प्रयोग किया। इनमें अज्ञेय, मुक्तिबोध, श्मशेर बहादुर सिंह आदि के साहित्य में पारम्परिक व नए प्रतीकों का सर्जनात्मक रूप हमें देखने को मिलता है।

अज्ञेय ने अपने काव्य में विविध प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनके काव्य में आये हुए प्रतीकों का सम्बन्ध, प्रकृति, मनोविज्ञान, समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, पुराण आदि विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ जाता है। पारम्परिक प्रतीकों के साथ व्यंग्यपरक एवं सामान्य जन–जीवन से जुड़े हुए अनेकानेक प्रकार के प्रतीकों की अवतारणा उनके काव्य मे हुई है। प्रतीक निर्माण में अज्ञेय इतने कुशल है कि उन्हें फ्रांस के प्रतीकवादियों का भारतीय प्रतिनिधि तक कहा गया है।

17.2 प्रतीक का अर्थ एवं अज्ञेय का अभिमत

वर्तमान में प्रतीक शब्द का प्रयोग अंगेजी के 'सिम्बल' (Symbol) शब्द के पर्याय रूप में प्रयुक्त होता है। आधुनिक काव्य में प्रतीक के प्रयोग की परम्परा व प्रेरणा अंग्रेजी काव्य से ग्रहण की गई है। **एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका** में प्रतीक को 'अमूर्त का मूर्त स्वरूप' कहा गया है।

वैबेस्टर के अनुसार ''प्रतीक अपने सम्पर्क, संदर्भ और परम्परा से किसी अदृश्य वस्तु की ओर संकेत करता है।'' वस्तुतः प्रतीक मूल विषय या भाव का सादृश्य और साहचर्य के आधार पर प्रति विधान करता है।

भागीरथ मिश्र के अनुसार– ''अपने रूप, गुण कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु भाव, विचार, क्रिया–कलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब यह प्रतीक कहलाता है।''

''प्रतीक के विषय में अज्ञेय ने गम्भीरता से विचार किया है। अज्ञेय के अनुसार जो सीधे–साधे अभिधा में नही बंधता उसे आत्मसात करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं।''

उपमानों के सम्बन्ध में नयेपन की मांग के अतिरिक्त उन्होंने नये प्रतीक सृजन को काव्य के लिए आवश्यक माना है। उनके अनुसार जब कोई काव्य साहित्य प्रतीकों की सृष्टि करता रहता है, तब तक स्वस्थ रहता है, ''जब वैसा करना बन्द कर देता है तो जड़ हो जाता है।'' 'प्रतीक' अनिवार्य तथा अनेकार्थ सूचक होते हैं। अर्थ केकितने अधिक स्तर एक साथ झलकें, प्रतीक उतना ही अधिक प्रभविष्णु होते हैं। प्रतीकों से युक्त काव्य इसीलिए विशेष अर्थ–गर्भित हो उठता है।

अज्ञेय के काव्य में प्रतीकों का जमकर प्रयोग हुआ है। उनके अधिकांश काव्य–संकलनों का नामकरण भी प्रतीकार्थ रखने वाली कविता के आधार पर हुआ है। ''हरी घास पर क्षण भर'', ''बावरा अहेरी'',''इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये'', ''आंगन के पार द्वार'', ''कितनी नावों में कितनी बार'' आदि में क्रमशः हरी घास, अहेरी, इन्द्रधनुष, द्वार, नाव आदि प्रतीकार्थ रखते है एवं विभिन्न आशयों को द्योतित करते है। प्रतीक बहुल कविताओं के रचयिता होने के नाते अज्ञेय'प्रतीकवादी' विशेषण से भी अभिहित किये गये है।

17.3 अज्ञेय काव्य में प्रतीक योजना

17.3.1 परम्परागत प्राकृतिक प्रतीक (नऐ संदर्भ व नए अर्थ के साथ)

यह ध्यान देने योग्य है कि अज्ञेय ने परम्परागत प्रतीकों का प्रयोग रूढ़ से नही किया है बल्कि उन्होंने पुराने प्रतीको में निहित अवधारणा या चिन्तन को आधुनिकता की कसौटी पर कसकर देखा है। जैसे क्रौंच पक्षी का प्रयोग कविता में प्रेम व वियोग के रूप में किया है क्योंकि कवि वाल्मीकि ने क्रोंच वध को एक खास संदर्भ में स्थापित कर दिया था लिहाजा क्रौंच मर्माहत बिछोह का प्रतीक बन गया। अज्ञेय ने पहली बार इस संदर्भ को तोडा और कहा–

''क्रौंच बैठा हो कभी वाल्मीकि पर
तो मत समझ
वह अनुष्टुप बांचता है, संगिनी के स्मरण को
जान ले, वह दीमकों की टोह में है।''[1]

इसी प्रकार 'सांप', विषैलेपन का प्राचीन प्रतीक है लेकिन अज्ञेय ने सांप का प्रयोग नितान्त समसामयिक संदर्भ में किया जिससे महानगर की वर्तमान धोखाधड़ी मूल्यविहीन जिन्दगी और उसका परिवेश उजागर हो उठा है–

''सांप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं।
नगर में बसना
क्या तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे)

तब कैसे सीखा डसना

विष कहाँ से पाया''[2]

अज्ञेय अपनी कविता में पुराने प्रतीकों का भरपूर प्रयोग करते हैं परन्तु प्रयोग की कसौटी पर कसकर उन्हें नया संदर्भ देते हैं। जैसे आकाश, नदी, द्वीप, दीपक, वीणा, सागर, मछली, वृक्ष, महावृक्ष, द्वार, घास, चिड़िया, पक्षी (बनपाखी), तारा, बूंद, पुल, खेत लीक आदि ऐसे प्राचीन परम्परागत प्रतीक हैं जिनका अज्ञेय ने नए संदर्भ में प्रयोग किया है।

उदाहरणर्थ–अज्ञेय ने 'आकाश' का आधुनिक ढंग से प्रयोग किया है–

''यह ऊपर आकाश नहीं हैं,

रूपहीन आलोक मात्र। हम अंचल पंख

हम तिरते जाते है

भारमुक्त

नीचे यह ताजी धुनी रूई की उजली

बादल सेज बिछी है

स्वप्न मृसृण

या यहाँ हमीं अपना सपना है ?''[1]

यहाँ अज्ञेय ने पहली बार आकाश को आकाश कहने से इनकार कर दिया। उन्होंने उसे मात्र रूपहीन आलोक ही माना। इससे 'आकाश' की पुरानी अवधारणा टूट गई और एक नया वैज्ञानिक तथ्य कविता के जरिये उद्‌घाटित हुआ है।

अज्ञेय की कविता में **महावृक्ष, पेड़, रूख** परम्परा की विशालता व उसके विकास के प्रतीक के रूप में आते हैं। जिस प्रकार महावृक्ष में से शाखाएं, कौंपलें, फूल और फल निकलकर नित नवीनता को धारण करते है, उसी प्रकार परम्परा विकास की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों से गुजरती है। इस परम्परा के साथ व्यक्ति का सम्बध अज्ञेय की कविता 'महावृक्ष के नीचे' में देखा जा सकता है–

''जंगल में चले हो

चलो, चलते रहो ?

महारूख के साथ अपना नाता बदलते रहो

उसका आयाम

उसका है बहुत बड़ा है।

परन्तु वह वहॉ खडा है और तुम चलते हुए ही भले हो।[2]

यहाँ महारूख विशाल जातिगत अनुभव का प्रतीक हैं।

परम्परागत प्रतीकों में अज्ञेय ने पक्षी संसार को लिया है। अज्ञेय की कविता में 'वन–पर्वत', 'चिड़िया' 'बन–पाखी' ये सब मानव चेतना को परिभाषित करने वाले प्रतीक है। उदाहरणार्थ–

''चौंक कहीं पर
छीपा
मुदित
बन–पाखी
बोला
दिन है
जय है
यह बहुजन की
वह बन–पाखी
जाने गरिमा
महिमा
मेरे छोटे
चेतन
क्षण की।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वन–पाखी चेतना का प्रतीक नहीं है। नए समाज में बदलती हुई मानवीय चेतना को व्यक्त करने वाला है कवि का बन–पाखी। इसलिए वह 'बहुजन की जय' करता है।

अज्ञेय का चिन्तन मूलतः आशा व आस्थावादी है जिसमें सदैव सम्भावना बनी रहती है। अज्ञेय जिजीविषा के कवि है जो सदा आशा व सम्भावना के टिमटिमाते तारे पर निगाह रखते हैं। इसीलिए तारे के प्रतीक अज्ञेय की कविता में बहुत है। इसी धारणा को पुष्ट करने वाली है उनकी यह कविता–

''सांझ। बुझाता क्षितिज।
मन की टूट–टूट पछाड़ खाती लहर।
काली उमड़ती परछाइयां

तब एक

तारा भर गया आकाश की गहराइयां।।''[1]

अज्ञेय ने कई स्थानों पर हिन्दी के संत कवियों के प्रतीकों का भी नए ढंग से प्रयोग किया है। सन्तों केयहाँ सूली व सेज उनकी रहस्यानुभूति को व्यक्त करने वाले प्रतीक हैं पर अज्ञेय ने इन प्रतीकों का प्रयोग अपने परिवेश को व्यक्त करने के लिए किया। 'सूली' और 'सेज' अज्ञेय के यहाँ इस ढंग से आते है–

''आज स्वप्न बीथी से मेरे अटपटे भटक गये है

तो वह क्यों ? इसलिए कि आज

प्रत्येक स्वप्नदर्शी के आगे

गति से अलग नहीं पथ की यति कोई।

अपने से बाहर आने को छोड़

नहीं आवास दूसरा।

भीतर भले स्वयं सांई बसतें हो।

पिया–पिया की रटनौ

दिया न जाने आज कहाँ है

सूली पर सेज बिछी है वह

वह मेरी है।।''[1]

अज्ञेय महसूस करते हैं कि आज सांई की तलाश भीतर नही बाहर करनी होगी क्योंकि आज का युग गति का युग है। उनके अनुसार–गति से अलग नहीं पथ की यति कोई। वास्तव में अज्ञेय का विरोध मध्ययुगीन मूल्यों से हैं।

हर सुबह बावरा अहेरी (सूर्य) आलोक की कणियां बिछाकर मानो सृष्टि को प्रकाशित कर देता है। शाम के समय सूर्य रूपी अहेरी अपने जाल में दृश्य जगत की छोटी से छोटी और बड़ी चीजों को समेट लेता है।

अज्ञेय के काव्य में हरी घास एक विशिष्ट प्रतीक है। इसकों कवि ने मन की उन्मुक्तता एवं समर्पण का प्रतीक बनाया है। ''हरी घास पर क्षण भर'' से आशय यह है कि हम थोड़ी देर के लिए ऐसे उन्मुक्त वातावरण में आएं, जहां मन भी मुक्ति का अनुभव करे। कवि किसी नारी के साथ ऐसे ही वातावरण में आया हुआ है। नारी–सखा के साथ हरी घास पर बैठे देखकर लोग जाने क्या–क्या सोच लेंगे किन्तु वह इसकी चिन्ता नहीं करना चाहता। संकुचित अर्थ मेंमन की उन्मुक्ता यहाँ प्रतीकार्थ रखने लगती है तथा मुक्त साहचर्य की ओर भी संकेत देती है। कवि अपनी प्रेयसी को ''हरी

घास सी अन्तः स्मित अन्तः संयत होकर सहज मिलने'' के लिए कहकर हरी घास को सहज समर्पण का प्रतीक बना देता है।

''बावरा अहेरी'' कविता में अहेरी सूर्य के लिए आता है। यहाँ सूर्य सृष्टि कर्ता एवं सृष्टिसंहर्ता के साथ–सथ देने वाले परम् सत्ता का प्रतीक है–

भोर का बावरा अहेरी

पहले बिछाता है आलोक की

लाल–लाल कनियां।[1]

17.3.2 निजी प्रतीक (विशिष्ट प्रतीक)

'सागर' 'बूंद' व 'मछली' उनकी कविता में बार–बार आते हैं और इन प्रतीकों के तत्व चिन्तन को उन्होंने इस हद तक निचोड़ दिया है कि अब वे अज्ञेय के ही निजी एवं विशिष्ट प्रतीक बन गये हैं। ये प्रतीक अज्ञेय की कविता में नये जीवन सत्य को प्रकट करते हैं। इनकी कविता में 'सागर' ऐसा प्रतीक है जो अलग–अलग ढंग से आया है। 'सागर' के सम्पर्क में आकर अज्ञेय की चेतना कभी आन्दोलित हो जाती है, कभी एकदम शांत और स्थिर, कभी जीवन के अनजाने रहस्यों की गहराई मापने लगती है तो कभी उनके भीतर सब कुछ समा जाने की लालसा जागृत होती है। अज्ञेय को 'सागर' में भयंकर आन्दोलन के बावजूद भी अपार आत्मविश्वास भी दिखाई देता है। यह विशालता काल को भी पार करने वाली जिजीविषा 'सागर' के प्रतीक के रूप में आती है। उदाहरणार्थ–

''सागर

पर पक्षी ऊपर ही ऊपर उड़ जाते हैं

सागर

पर मछलियां नीचे ही नीचे तैरती हैं

नावें, जहाज

पर वे सतह को ही चिरते हुए चले जाते हैं–

वह भी घट से घाट तक

सागर

देश और देश और देश, लहराता देश

काल और काल और काल, उमड़ता काल

कहाँ है तुम्हारी पहचान, सागर कहाँ ?

जहाँ धरा और आकाश मिलते हैं

जहाँ देश और काल

जहाँ सागर तल की मछलियां छटपटाकर उछल कर

वायु मांगती है।।''[1]

यहाँ सागर की जिजीविषा देश व काल के बीच लहराने वाले जीवन के रूप मे हमारे सामने आती है। अज्ञेय की जिज्ञासा है कि **'कहाँ है तुम्हारी पहचान, सागर, कहाँ ?'** अस्ति का यह प्रश्न सागर को प्रतीक बनाकर अज्ञेय बार–बार उठाते हैं।

अज्ञेय जीवन को नश्वर नहीं मानते हैं। जीवन में परिस्थितियों के थपेड़े तो हैं जिनसे टूट होती है पर उनके अनुसार टूटन में भी सृजन है और वही जीवन है। अपनी इस कविता में अज्ञेय ऐसे जीवन को ही आंकते हैं अ यह जीवन सागर से ही तुलनीय है–

''बना दे, चितेरे

मेरे लिए एक चित्र बना दें

पहले सागर आंक

विस्णीर्ण, प्रगढ़, नीला

ऊपर हलचल से भरा

पवन के थपेड़ों से आहत

शत–शत तरंगों से उद्वेलित,

फेनोर्मियों से टूटा हुआ, किन्तु प्रत्येक टूटने में

अपार शोभा लिए हुए

जैसे जीवन।।''[2]

अज्ञेय के लिए आधुनिक जीवन असंख्य दबावों व तनावों को झेल रहा है लेकिन इसके बावजूद वह असंकल्प गतियों व प्रवाहों को अपने अन्दर समाहित किये हुए है। जीवन में समाहित यह गति तथा प्रवाह ही उसें स्वयात बनायें हुए हैं।

अज्ञेय की कविता में **सागर** की तरह **मछली** भी निजी एवं विशिष्ट प्रतीक बन गई है। मछली अज्ञेय की कविता में **जिजीविषा** की प्रतीक है जिसका सम्बन्ध सागर से है अर्थात् जीवन से है। अज्ञेय चितरे से जहाँ अपने सागर अंकवाते हैं, वहाँ वह चितेरे से यह भी कहते है–

"सागर आंक, फिर आंक एक उछलती हुई मछली
ऊपर अधर में
जहाँ ऊपर भी अगाध नीलिमा है
तरंगोर्मियां है, हलचल है टूटन है
द्रव है, दबाव है
और उसे घेरे हुए अविकल सूहमता होते हैं
ऊपर अधर में
हवा का एक बुलबुला भर पीने कोक
उछली हुई देह वल्ली में
उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।"[1]

'मछली अज्ञेय की कविता में एक ऐसी जिजीविषा के रूप में आती है जो जीवन की हलचल दबाव व टूटन को झेलकर भी अपनी अस्मिता बनाये रखना चाहती है। अज्ञेय को 'सागर' से ज्यादा 'मछली' प्रिय इसलिए भी लगती है क्योंकि 'मछली' सागर की अनजानी गहराई और उसके अज्ञात रहस्यों की माप भी है। कवि मछली से ही जीवन के अनजाने सत्य का अन्वेषण करता है, इसलिए कवि साफ शब्दों में कहता है–

"जब जब सागर में
मछली तड़पी
तब–तब हमने उसकी गहराई को जाना।।"[2]

असल में अज्ञेय में जीवन के प्रति अन्वेषण की कविता में उनकी मूल चेतना को व्यक्त करने वाला प्रतीक है जिस प्रकार **'सागर'** व्यापक प्रसार का प्रतीक है **'बूंद'** लघुता के प्रति आदर व सम्मान की प्रतीक। अज्ञेय लघु इकाई की अस्मिता में विश्वास रखते है। चाहे समाज की टक्कर में व्यक्ति हो या सागर के मुकाबले बूंद हो, वे लघुता को महत्व व सम्मान देते हुए चलते है। बिना लघु के विशाल नामुमकिन है। प्रकृति के इस नियम से परिचित होने के कारण अज्ञेय लघु इकाई को श्रद्धेय मानते है। वह स्पष्ट कहते हैं–

"तू जहां कहीं जी करे
घडे के घडे अमृत बरसाया कर
मैं उसकी बूंद–बूंद के संचय के हित
सौ–सौ बार मरूं।।"[1]

अज्ञेय का मानना है कि सर्जना के क्षण लघु होते हैं। सर्जना के इस चिन्तन को स्पष्ट करने के लिए भी अज्ञेय ने बूंद का प्रतीक लिया है। वह कहते हैं–

''एक क्षण भर और
लम्बे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते है।
बूंद स्वाति की भले ही
बंध है मर्म सीपी का उसी निर्मत त्वरा से
बज्र जिससे फोड़ता चट्टान को भले ही फिर व्यथा के तम में
बरस पर बरस बीते
एक मुक्ता रूप को पकते।।''[2]

अज्ञेय लघुता में विराटता के दर्शन करते हैं क्योंकि इकाई ही समूह को प्रतिबिम्बित करती है।

अज्ञेय की कविता में **'हारिल'** भी उनका निजी एवं विशिष्ट प्रतीक बन गया है क्योंकि अज्ञेय यथास्थितिवादी चेतना के कवि नहीं हैं। अपनी परिस्थितियों से निपटने के लिए उद्यम करना मानसिकता है और 'हारिल' अपने लक्ष्य व अपनी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने के लिए लगातार उड़ान भरता रहता है और परिस्थितियों का सामना करता है।'हारिल' उद्यमशीलता का प्रतीक है। कवि लिखते हैं–

''वातक तापस तरू पर बैठा
स्वाति बूंद में ध्यान रमाए
स्वप्न तशप्ति का देखा करता
पर! पी! की टेर लगाए
हारिल को यह सह्य नहीं है
वह पौरूष का यह मदतामा है।।''[3]
''बैठो रहो पुकारो गाओ,
मेरा वैसा धर्म नहीं है,
मैं हारिल हूँ, बैठे रहना
मेरे कुल का कर्म नहीं है।।''[4]

'बैठे रहना' पुकारना व 'गाना' आधुनिक जीवन पद्धति नही हो सकती। **'द्वार'** प्रतीक भी अज्ञेय की कविता में जीवन की खुलती नई संभावनाओं का प्रतीक है।

पशुओं में भैंस, कुत्ता, ऊंट, गधा, आदि भी निजी प्रतीक बनकर आये है। एक कविता में कवि ने 'पछाही भैंस' को राष्ट्रीय राजमार्ग के बीचों–बीच बैठ जुगाली करते हुए दिखाया है। राजमार्ग पर तेल, दौड़ती मोटरें, लरियां, उसके पास आते ही सकपका जाती है। "भैंस की आंखो की स्थिर चितवन के आगे, मानो इंजनों की बोलती बन्द हो जाती है।"[2] यहाँ पछाली भैंस 'यान्त्रिकता' से युक्त पाश्चात्य सभ्यता का प्रतीक जान पड़ती है। इसे पाश्चात्य राजनीति का प्रतीक भी माना जा सकता है। कुत्ते को पदाक्रान्त एवं **रीरियाता** विशेषण से युक्त करके कवि ने उसे कुण्ठित वर्ग के व्यक्तियों का प्रतीक बना दिया है। "रैंक" कविता में गधा अल्पज्ञान साहित्यकारों एवं कालचक्रों का प्रतीक जान पड़ता है।

" सोन मछली
हम निहारते
रूप कांच के पीछे
हांफ रही है मछली
रूप–तृषा भी
और कांच के पीछे है। जिजीविषा।

कविता में कांच बंधन का एवं हाँफती मछली जिजीविषा का प्रतीक है। यहाँ कांच बाह्य परिवेश एवं मछली आन्तरिक स्वरूप को भी व्यंजित करता है। प्रत्येक व्यक्ति सत्य को कांच में देखता है, इसलिए सत्य रूपी मछली हांफ रही है। हम इस रूप को महत्व देते हैं, रूप के पीछे अस्तित्व रूपी मछली को नहीं। मछली पर जीवात्मा, मन आदि का प्रतीकब भी आरोपित हो जाता है।

17.3.3 मनोवैज्ञानिक प्रतीक

प्रकृति के उन प्रतीकों को, जिनका सम्बन्ध कवि के स्वप्नों एवं यौन चेतना से जुड़ता है, मनोवैज्ञानिक प्रतीक की संज्ञा दी जा सकती है। अज्ञेय के काव्य में सदैव समर्पिता हरीघास, नदी के जांघ पर सोता हुआ अन्धियाला, डाह से सिहरी हुई चांदनी, गुलाब की भारी दो पंखुरियां, लाल बरूंस के गुच्छ, पलाश की कली आदि यौन प्रतीकार्थ रखते है। लताएं, फूल, तितली आदि भी यौन भावना के प्रतीक है।

अज्ञेय ये मानते हैं कि "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है..... आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है। .....उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रांत है। उसके उपमान यौन–प्रतीकार्थ रखते हैं।"[2] अज्ञेय के इस कथन से ऐसा लगता है कि उनके काव्य में यौन–प्रतीको की भरमार है किन्तु बात ऐसी नहीं है। यौन प्रतीको से युक्त कविताएं विशेषकर 'इत्यलम्' एवं "हरी घास पर क्षण भर" संकलनों में आई है। बाद में यौन

प्रतीको की संख्या क्रमशः कम होती गई है। ''चार का गजर'' कविता में कवि का दिवास्वप्न व्यक्त हुआ है। दिवास्वप्न एवं स्वप्नों के माध्यम से व्यक्ति अपनी दमित भावनाओं का रेचन करता है। स्वप्न में आयें हुए रूपाकार, घटनाएं प्रतीकात्मक होते हैं।

17.3.4 पौराणिक प्रतीक

अज्ञेय ने पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग भी किया है। एकलव्य, द्रोणाचार्य, मुनिजन, दितिकन्या, असुर प्रजापति, रावण, रविचुम्बी गरूड़ अहल्या–राम, मनु, वासुकि, इन्द्र, कुंती इत्यादि पौराणिक प्रतीक हैं। 'इतिहास की हवा' कविता में एकलव्य, द्रोणाचार्य एवं मुनिजन का प्रयोग हुआ है। ये क्रमशः नीतिभंजक मनुष्य राजनीतिज्ञ एवं विवेकी व्यक्ति के प्रतीक है–

''मेरे चेहरे में बागड़ियों के झोपड़ों से झांकता है एकलव्य
द्रोणाचार्य अभिसंधि करते हैं
मुनियों की ब्याजहीन आंखों में
पीष्य राजहंस मालानीर–क्षीर करती है।

(इन्द्रधनु रौंदे हुए ये–33–44)

'दिती कन्या' को कविता में 'दिति कन्या' आदिम वासना का केन्द्र तथा 'असुर' वासना का प्रतीक होते हैं। 'असाध्य वीणा' कविता में वासुकि का प्रतीक–गर्भित दृष्टव्य है–

वज्रकीर्ति ने मंत्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीट तरू से इसे गढा था
उसके कानों में हिम–शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कंधों पर बादल सोते थे.....
और सुना है–जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताललोक
उसकी गन्ध–प्रवणशीलता से फन टिका नाक वासुकि सोता था।

इन पंक्तियों में वासुकि के प्राचीन किरीट तरू की जड़ में सोते रहने की बात कवि ने कही है। ऊपर की पंक्तियों को यदि विशिष्ट सन्दर्भ दे दिया जाये तो यहाँ वासुकि को कुण्डलिनी का प्रतीक माना जा सकता है। वज्रकीर्ति ने किरीट तरू से असाध्य वीणा को गढ़ा। किरीट तरू का जो रूपांकन कवि ने किया है इससें सहज ही उसका सम्बन्ध विराट तत्व से जुड़ जाता है।

17.3.5 आधुनिक प्रतीक

आधुनिक चेतना के कवि होने के कारण अज्ञेय अपने परिवेश से पूरी तरह जागरूक हैं और यह जागरूकता उनकी कविता में उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों से पता चलती है। कवि का मानना है कि आज के वैज्ञानिक जीवन के नये प्रतीकों से कविता को अलग नहीं रखा जा सकता । आधुनिक व तत्कालिक परिवेश को व्यक्त करने के लिए अज्ञेय ने नये प्रतीकों का अपनी कविता में प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप उनकी 'जनपथ' कविता देखी जा सकती है–

''राष्ट्रीय राजमार्ग प्रादेशिक पशु
योजना आयोग वाले करें तो क्या करें ?
बिचारे उगाते है
आयातित रासायनिक खाद से
अन्तर्राष्ट्रीय करमकल्ले।।[2]

इस कविता में 'राष्ट्रीय राजमार्ग', 'आयातित रासायनिक खाद' 'अन्तराष्ट्रीय करमकल्ले' हिन्दी में एकदम नये प्रतीक हैं जिससे अज्ञेय ने देश की पंचवर्षीय योजनाओं का पर्दाफाश किया है। 'आयतीत रासायनिक खाद' विदेशी तकनीक और नीति के अनुकरण का प्रतीक है। अज्ञेय जानते हैं कि समूचे देश की प्रगति के लिए अपने देश, काल, परिस्थितियों को समझना अनिवार्य है।

अज्ञेय ने औद्योगिक प्रगति एवं उसकी परिणति को व्यक्त करने के लिए विज्ञान से सम्बन्धित प्रतीकों का प्रयोग किया है। वैज्ञानिक प्रगति की परिणति का सफल अंकन इन पंक्तियों से हुआ है–

उतरो थोड़ा और
घनी कुछ हो जाने दो
रासायनिक धुंध को इस चीकट कंबल की नयी घुटन को
मानव का समूह जीवन इस झिल्ली में ही पनप रहा है।

रासायनिक धुंध एक पूरे युग–विशेष का प्रतिनिधि है। आज के व्यक्ति की नियति इसी धुंध में जिन्दगी गुजार देने की है। इसी प्रकार ''गरजता गरूड़ यंत्र'', ''अंगार नैन गाड़ियां'', रेलें, चिमनियां, हवाई यात्रा आदि वैज्ञानिक प्रगति के सूचक है।

17.3.6 दार्शनिक प्रतीक

जिन प्रतीकों के माध्यम से आत्मान्वेषण, रहस्य–दर्शन, जीवन–सत्य आदि की प्रतीति होती है, उन्हें दार्शनिक प्रतीक की संज्ञा दी जा सकती है। अज्ञेय के काव्य में ऐसे प्रतीकों की संख्या भी कम नहीं है। **सागर, आंगन के पार द्वार, द्वारहीन द्वार, मछली, नदी के द्वीप, सन्नाटा, हरा–अन्धकार, सागर के झाग से उछली हुई**

बून्द, महाशून्य का शिविर, महामौन की सरिता, असाध्य वीणा, चक्रांत शिला, काल की गदा, काली शिला, धवल शिला, आकाश, वृत्त, सूर्य, किरणें, तट, झरना, पत्ता, द्वीप, धुंध–ढकी गहरी वापिका, लघु अंजलि आदि को इस वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसे कोई केश कम्बली जैसा साधक ही अपने अहंकार को विहीन करके साध पाता है। चक्रांत –शिला काल का प्रतीक है। स्वयं अज्ञेय ने एक स्थान पर स्पष्टीकरण देते हुए चक्रमति होती हुई शिला का सम्बन्ध प्रत्यावर्तित होते हुए काल से जोडा है। वे इसका सम्बन्ध बुद्ध के धर्मचक्र से भी जोडते है। **हरा अन्धकार, महाशून्य का शिविर तथा धुंध–ढकी गहरी वापिका** अज्ञात निराकर सत्ता के प्रतीक है। काल की गदा मृत्यु का प्रतीक है। नदी के द्वीप अस्तित्व की नियति को व्यंजित करता है। सागर के झाग से उछली हुई बून्द क्षण भंगुर एवं खण्ड जीवन का सफल प्रतीक हैं–

एक बूंद सहसा
उछली सागर की झाग से
रंगी गई क्षण भर
ढलते सूरज की आग से।
मुझको दीख गया
हर आलोक छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से।

बून्द में भी असीम आलोक से भर उठने की क्षमता है अर्थात् क्षण भंगुर जीवन भी आत्म साक्षात्कार के आलोक से भर कर नश्वरता के दाग से मुक्त हो सकता है।

17.4 प्रतीक का महत्व

काव्य में शिल्प का एक महत्वपूर्ण अंग है प्रतीक! प्रतीक का प्रयोग तर्कशास्त्र, विज्ञान, गणित, मनोविज्ञान और ज्योतिष सभी में पाया जाता है परन्तु काव्य में इसके प्रयोग का तात्पर्य हैः अनुभव अथवा अनुभूति की अवस्था विशेष का शाब्दिक प्रतिरूप। काव्य रचना में प्रतीकों के प्रयोग से नयी अर्थ शक्ति और अभिव्यक्ति में मनोहरता, कलात्मकता व सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। प्रायः कवि अपनी रचनाओं में अनुभूति को संचित करने और निहितार्थ को उसी गहराई में पाठक तक सम्प्रेषित करने के लिए संदर्भानुसार प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। पाश्चात्य विचारक व कवि यीट्स प्रतीकवादी आन्दोलन के प्रमुख सूत्रधार माने जाते हैं। उन्होंने प्रतीक की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट किया है कि सच्ची कला प्रतीकों और संकेतों को लेकर ही प्रतिष्ठित हो सकती है। कवि अज्ञेय आत्मनेपद में लिखतेहै–

"प्रतीक वास्तव में ज्ञान का उपकरण है
जो सीधे–सीधे अभिधा में नहीं बंधता,

उसे आत्मसात करने या प्रेषित करने के लिए

प्रतीक काम देते हैं।"

वास्तव में काव्य में प्रतीक के प्रयोग से शब्द की गरिमा और उसके अर्थ की महत्ता में वृद्धि होती है। शब्द के अर्थ को लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ तक ले जाने का माध्यम प्रतीक होते हैं। अर्थ को सम्प्रेषणीय एवं व्यापकबनाने में प्रतीक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

17.5 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रतीक–विधान की दृष्टि से अज्ञेय का काव्य समृद्ध है। अज्ञेय के प्रतीक योजना में नव्यता प्रायः नये सन्दर्भों के कारण उत्पन्न हुई है। **एकलव्य, द्रोणाचार्य, टेसू, द्वार, नदी, द्वीप, इन्द्रधनुष, मछली, सांप, सेतु** आदि नए सन्दर्भों में प्रयुक्त हुए है। बिल्कुल नवीन प्रतीक होने वाले प्रतीक हैं–गधा, ऊंट, भूत, भैंस, कुत्ता इत्यादि। इनके द्वारा कवि ने समाज के वर्ग–विशेष पर व्यंग्य किया है। ये ऐसे प्रतीक हैं जो प्रायः काव्य के क्षेत्र में उपेक्षित रहे हैं। हरी घास भी एक उपेक्षित प्रतीक है। यह सत्य नवीन चिन्तन और नवीन परिस्थितियों नए प्रतीकों को जन्म देती है।

अज्ञेय के प्रतीकविधान पर पश्चिम के प्रतीकवादियों तथा हिन्दी के संत कवि, बौद्ध दर्शन, औपनिवेशिक विचारधारा आदि का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। अज्ञेय के प्रभाव ग्रहण करने की भी अपनी विशेषता है। यह अज्ञेय के व्यक्तित्व का विशेष गुण है कि वे प्रायः प्रभावित होने पर भी नया सन्दर्भ जोड़कर अपने प्रयोग को मौलिक एवं विशिष्ट बना लेते है।

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रतीक का अर्थ बताते हुए प्रतीक के संदर्भ में अज्ञेय के अभिमत को स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. काव्य में प्रतीक के महत्व पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3. अज्ञेय के काव्य में प्रतीक विधान पर एक लेख लिखिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4. अज्ञेय काव्य में परम्परागत एवं निजी प्रतीकों का उदाहरण सहित विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

5. ''अज्ञेय ने प्रतीकों में नए संदर्भ एवं नए अर्थ को अभिव्यक्ति दी है।'' इस कथन की सोदाहरण विवेचन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

17.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रो. रामस्वरूप चतुवेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
2. डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल – हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद, ऋषभचरन जैन व संतति प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हरिचरण शर्मा, नये प्रतिनिधि कवि, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
4. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, – अज्ञेय की कविता एवं मूल्यांकन विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
5. रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद, निराला, अज्ञेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
7. रमेश ऋषिकल्प– अज्ञेय की कविता : परम्परा व प्रयोग, अभिरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली
8. नन्द किशोर आचार्य – अज्ञेय की काव्य तितिर्षा, सूर्य प्रकाशन, बीकानेर
9. नामवर सिंह – कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. डॉ. केदारनाथ सिंह – आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, दिल्ली 1971
11. अज्ञेय–आत्मनेपद
12. अज्ञेय–भवन्ती

.....

अज्ञेय की काव्य संवेदना

इकाई की रुपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 जीवन संदर्भ एवं कृतित्व

18.3 अज्ञेय के काव्य का संवदेनात्मक पक्ष

18.3.1 रहस्यवाद

18.3.2 प्रेम व नारी चित्रण

18.3.3 राष्ट्रीय भावना

18.3.4 व्यष्टि–समष्टि चिन्तन

18.3.5 मानवतावाद

18.3.6 बुद्धिवाद

18.3.7 निर्वैयक्तिकरण

18.3.8 यथार्थवाद

18.3.9 आत्मसमर्पण व आत्मत्याग

18.3.10 सत्यम्, शिवम्, सुदरम्

18.3.11 अस्तित्ववाद

18.3.11.1 व्यष्टि का महत्व

18.3.11.2 परिवेशज यथार्थ

18.3.11.3 मृत्युबोध

18.3.11.4 क्षणबोध

18.3.11.5 यथार्थवादी चिन्तन

18.4 अज्ञेय काव्य में शिल्प

18.5 सारांश

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.7 सन्दर्भ ग्रंथ

18.0 उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- अज्ञेय के जीवन के विविध संदर्भ एवं काव्य रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अज्ञेय के काव्य की मूल संवदेना को समझ सकेंगे।
- अज्ञेय काव्य मे परम्परा, प्रगति, सांस्कृतिक बोध, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, मानवतावाद और समष्टि चिन्तन आदि काव्य प्रवृतियों से अवगत हो सकेंगे।
- अज्ञेय काव्य के शिल्प पक्ष (काव्य–भाषा, बिम्ब, प्रतीक व अप्रस्तुत आदि) के विविध प्रयोगों को समझ सकेंगें।
- कवि अज्ञेय का समग्रता में विश्लेषण करते हुए उनके काव्य का अस्वाद व मूल्यांकन कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

अज्ञेय को पढ़ते हुए छायावादोत्तर कविता के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना होगा। आरंभिक कविताओं में अज्ञेय छायावाद के प्रभाव से मुक्त नही है, परन्तु वही कुछ कुछ नएपन का आग्रह भी दिख जाता है। छायावाद के अंत के साथ प्रगतिवाद आया। यह सन् 1935–36 का समय है। अज्ञेय प्रगतिशील लेखक संघ के आयोजकों में उपस्थित, रहे परंतु व्यक्तित्व की स्वतंत्रता शीघ्र ही उनका प्रमुख आग्रह बनी तथा 1943 में तार सप्तक का संपादन भले ही संयोग हो, तार सप्तक में कवि अज्ञेय का अपने वक्तव्य में प्रयोगवाद की मुख्य समस्या नए अनुभव, नए मूल्य–बोध और भाषा शिल्प के प्रयोग की है।

छायावादोत्तर कविता में प्रयोगवाद और नयी कविता के अग्रणी कवि के रूप में अज्ञेय का महत्व निर्विवाद है। आधुनिक भाव–बोध और संवेदना के कवि के रूप में उनकी एकदम अलग पहचान है। उनके आधुनिक बोध के मूल में है व्यक्तित्व की खोज। अज्ञेय की कई कविताएं काव्य की रचना प्रक्रिया की ही कविताएं है। उनमें अधिकतर कविताएं अवधारणात्मक हैं जो व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को, रोमांटिक व आधुनिक के द्वंद्व को प्रत्यक्ष करती है। जिजीविषा, मानवतावाद, रहस्यवाद, बौद्धिकता, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद आदि उनके काव्य संवेदना के प्रमुख विषय रहे है। साथ ही अज्ञेय निर्वैयक्तिक संवेदना को भी पर्याप्त महत्व देते हैं।

18.2 जीवन संदर्भ एवं कृतित्व

7 मार्च 1911 ई. को उत्तर प्रदेश प्रान्त के कुशीनगर जिले में जिस शिशु ने जन्म लिया वह बाल्यावस्था से ही अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगा था। अज्ञेय बचपन से ही एकान्त प्रिय और समाज से दूर रहे थे। बचपन में वे किसी स्कूल में नहीं गये, जिससे बाल समाज से भी वे अनभिज्ञ रहे। इस कारण अज्ञेय प्रकृति प्रेमी होते चलेगये। उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की और इसी दौरान जलियाँवाला काण्ड हुआ, जिससे अज्ञेय का किशोर मन क्रान्ति की ओर उन्मुख हुआ। स्कूलिंग के बाद उन्होंने कॉलेज में प्रवेश किया वहीं उनकी पहचान चन्द्रशेखर, सुखदेव, भगवतीचरण आदि से हुई और वे भी एक स्वयं सेवक बन गये। 1929 में बी.एस.सी. करने के बाद उन्होंने एम.ए. अंग्रेजी में प्रवेश लिया और इसी वर्ष वे क्रान्तिकारी दल में सक्रिय रूप से शामिल हो गये।

1937 ई. के अन्त में बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर अज्ञेय 'विशाल भारत' के सम्पादक मण्डल में शामिल हो गये और साढ़े पांच वर्ष तक वहीं रहे। 1943 ई. में जब महायुद्ध चल रहा था, अज्ञेय जी भी सेना में भर्ती हो गये और 1946 ई. तक कोहिमा फ्रन्ट पर रहें। 1946 में पिता के देहावसान से व्यथित हो वे सम्पूर्ण रूप से साहित्य साधना में जुट गये। मार्च 1947 ई. में उन्होने इलाहाबाद को अपना निवास बनाया और 'प्रतीक' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन किया।1961 में अज्ञेय जी केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्राध्यापक होकर गये और 1964 ई. तक वही रहे। 1964 में विदेश से लौटने के बाद उन्होंने 'दिनमान' साप्ताहिक का सम्पादन प्रारम्भ किया। उनकी संगठन शक्ति, कल्पना और निष्ठा ने छः महीने के भीतर 'दिनमान' को हिन्दी का अन्यतम साप्ताहिक बना दिया।

सन् 1971 में वे जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर, राजस्थान में तुलनात्मक साहित्य विभाग के अध्यक्ष बने और इसी वर्ष विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ने उन्हें डी.लिट. की मानद उपाधि से सम्मानित किया।1972 में उन्होंने जोधपुर से त्यागपत्र दे दिया। 1973 में उन्होंने 'नये प्रतीक' नाम से 'प्रतीक' का पुनः सम्पादन प्रारम्भ किया। 1977 में आप 'नवभारत टाइम्स' दैनिक के सम्पादक नियुक्त किये गये। 1978 में 'कितनी नावों में कितनी बार' नामक काव्य संग्रह पर आपको भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सन् 1979 में नवभारत टाइम्स से त्यागपत्र दे स्वतंत्र लेखन में संलग्न हो गये। लगभग आधी सदी तक हिन्दी साहित्य की दुनिया में सबसे अधिक चर्चित रहने वाले अज्ञेय जी 4 अप्रैल, 1987 को सुबह दिल का दौरा पड़ने से सांसारिक मोह बंधनों से नाता तोड़कर परलोक चले गये।

काव्य–कृतियाँ

साहित्य का सम्बन्ध मानव के राग तत्व से है और राग तत्व में काव्य का प्रमुख स्थान है। अज्ञेय प्रयोगवाद के शलाका पुरूष भी कहे गये है उनके कृतित्व में उनकी काव्य कृतियों का अध्ययन मनन ही अपेक्षित है। आत्मस्वीकृति को प्रमाण मानें तो कवि रूप ही उनका मनचीता व वास्तविक रूप है। अज्ञेय की काव्य कृतियां निम्नांकित है–

भग्नदूत (1933), चिंता (1942), इत्यलम् (1946), प्रिज़न डेज़ एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी, 1946), हरी घास पर क्षण भर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनु रौंदे हुए ये (1957), अरी ओ करूणा प्रभामय (1959), आँगन के पार द्वार (1961), पूर्वा ('इत्यलम्' तथा 'हरी घास पर क्षण भर', 1965), सुनहले शैवाल (1965), कितनी नावों में कितनी बार

(1967), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1969), सागर–मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1973), महावृक्ष के नीचे (1977), सर्जना के क्षण (1979) नदी की बाँक पर छाया (1981), सदानीरा (दो खण्डों में, 1986), ऐसा कोई घर आपने देखा है (1986), मरूथल (अज्ञेय की अंतिम कविताएँ, 1995), अज्ञेय काव्य–स्तबक (सं) विद्यानिवास मिश्र, रमेशचंद्रशह, 1995)

18.3 अज्ञेय काव्य का संवेदनात्मक पक्ष

18.3.1 रहस्यवाद

अज्ञेय की प्रारम्भिक कृतियों में चिन्ता व इत्यलम में संगृहीत कविताओं में रहस्यवादी भावना व्यक्त हुई है।चिन्ता में उन्होंने अपनी रहस्य भावना को अपना धर्म कहा है। 'इत्यलम' की कविताओं में आत्मा व परमात्मा का संबंध निरूपण किया गया है। अज्ञेय का रहस्यवाद असीम, अनन्त, अनुभूति और ज्ञान के द्वन्द्व का रहस्यवाद है–ज्ञान कहता है कि जो शाश्वत रहस्य है, उससे कभी मिलन नहीं हो सकता और अनुभूति मिलन को आवश्यक मानती है। इस प्रकार तर्क–द्वन्द्व में अज्ञेय अपनी रहस्य–भावना को कोई निश्चित रूप नहीं दे पाते–

"असीम का नंगापन ही सीमा है,

रहस्यमयता वह आवरण है जिससे ढक्कर हम

उसे असीम बना देते है।" (इत्यलम्, पृ. 94)

अज्ञेय की रहस्य भावना का असीम कोई सत्ता नही है, जिसे ईश्वर कहते है।

उनकी आत्मशक्ति ही वह असीम सत्ता है, जिससे वह अभिभूत होना चाहते है–

मैं भी एक प्रवाह में हूँ

लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है।

(इत्यलम्, पृ. 93)

इस प्रकार अज्ञेय का रहस्यवाद एक विशिष्ट प्रकार का रहस्यवाद है, जिसमें भावना के समान ही तर्क को भी स्थान है और जिसका अनन्त प्रियतम कोई ईश्वर नहीं है, वरन् कवि की अपनी आत्मा के भीतर की शक्ति है। आत्मा ही प्रियतम है और वही प्रेयसी, वही असीम है, वही ससीम है।

अज्ञेय की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक भावना की द्योतक कविताएं उनके काव्य संग्रह 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' स्पष्टतः देखी जा सकती है। इस संग्रह में कवि की राष्ट्रीयता व्यापक भूमिका पर उतर कर उन्हे उस सोपान पर ले जाती है जहाँ व्यक्ति राष्ट्र भक्ति के प्रति समर्पित दिखाई देता है।

18.3.2 प्रेम व नारी चित्रण

अज्ञेय घनीभूत इछाओं के आवेग को प्रेम कहते है । उनकी दृष्टि में प्रेम का दुर्दम रूप ही प्यार बन जाता है–

कुछ नहीं यहाँ भी अंधकार ही है

काम रूपिणी वासना का विकार ही है

यह गुथीला व्योमाग्रासी धुआँ जैसा

आततायी दुष्ट दुर्दम प्यार ही है। (हरी घास पर क्षण भर, पृ. 46)

अज्ञेय प्रेम को एक निर्बन्ध भावना मानते हैं। प्रेम पात्र को पाने की और उसे अपनी ही अधिकार सीमा में रखने की जो प्रवृत्ति मनुष्य में होती है–वह सामाजिक नियम संयम के कारण। प्रेम को पुष्ट व सुसंस्कृत रूप देने के लिए अज्ञेय आत्मदान की भावना को परम आवश्यक मानते हैं। इसी प्रकार प्रेम व विचारशीलता को वे परस्पर सहयोगी मानते है। विचार को वे प्रेम को प्रकाशित करने वाला दीपालोक मानते हैं और प्रेम को विचारों के दीप को स्नेह देने वाला जीवन तत्व, किन्तु प्रेम व विचारशीलता दोनो का सामंजस्य स्थापित नही हो पाता है और एक के अभाव में दूसरे की सत्ता बड़ी अनभिज्ञ जान पड़ती है।

जिस समाज में पीड़ित निम्न वर्ग के प्रति आधुनिक काव्य में सहानुभूति व्यक्त की गई है, उसी प्रकार युगों से उपेक्षित और प्रताड़ित नारी के प्रति भी आधुनिक कवियों का दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण व मानवतावादी रहा है। प्रायः प्रत्येक आधुनिक कवि ने नारी के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की है और मनुष्य जीवन में उसको एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पद प्रतिष्ठित किया है। अज्ञेय ने भी नारी के विषय में अपने विचारों को अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी है।वे नारी को काव्य की प्रमुख प्रेरणास्त्रोत मानते हैं। अज्ञेय की दृष्टि में पुरूष तर्कनामय है और नारी भावनामय–

पुरूष तर्क का कठपुतली भर

स्त्री असीम अन्तः निर्झर।(चिन्ता, पृ. 62)

उसमें इतनी उदारता होती है कि पुरूष की प्रताड़ना को सहकर भी वह उसके लिए आत्मदान को सदैव तत्पर रहती है। अपनी इस हृदय सरलता के कारण ही नारी पुरूष के द्वारा सदैव छली जाती है।

सूरज ने खींच लकीर लाल

नभ का उर चीर दिया। (इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, पृ. 80)

इस प्रकार अज्ञेय सिर्फ नारी के प्रति सहानुभूति ही व्यक्त करते हैं, कि वह सदैव पुरूष द्वारा छली जाती है। नारी जीवन–निर्माण की कोई स्वस्थ कामना उनके काव्य में नही मिलती । उनके काव्य मे नारी रूप व श्रृंगार की प्रतिमा बनकर ही प्रतिष्ठित है। 'चिंता', 'इत्यलम', व 'बावरा अहेरी की नारी विषयक कविताओं में अज्ञेय की श्रृंगार भावना अधिक स्पष्ट है।

18.3.3 राष्ट्रीय भावना

अज्ञेय की राष्ट्रीय भावना उनकी कविताओं में ही नहीं प्रत्युत उनके कार्यों में भी अभिव्यक्त हुई है। जब वे एम. ए. के विद्यार्थी थे, तभी देश में स्वाधीनता आन्दोलन को सफल बनाने के उद्देश्य से क्रांतिकारी षडयंत्रों में भाग लेने लगे थे। अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण उन्हें जेल यात्राएं करनी पड़ी। देश की स्वाधीनता के लिए महात्म गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन में अज्ञेय को विश्वास नहीं था। वे क्रांति के द्वारा ही स्वतंत्रता प्राप्ति को सम्भव मानते थे। शासन सत्ता देशप्रेमियों को कारागार में बन्द कर देती है। उनकी सम्पत्ति का अपहरण कर लेती है और उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएं देती है, किन्तु शासकों की दमन नीति बन्दी की स्वाधीनता कामना को प्रभावित नहीं कर पाती और उसकी त्याग भावना के समक्ष बलिदान स्वयं लज्जित हो जाता है–

उसकी भूख प्यार भी नियमित

उसकी अन्तिम सम्पति परिहृत

लज्जित पर बलिदान देखकर

उसका जीवन दान

मुक्त बन्दी के प्राण। (इत्यलम् पृ. 57)

अज्ञेय की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक भावना की द्योतक कविताएं उनके काव्य संग्रह 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' स्पष्टतः देखी जा सकती है। इस संग्रह में कवि की राष्ट्रीयता व्यापक भूमिका पर उतर कर उन्हें उस सोपान पर ले जाती है जहाँ राष्ट्र भक्ति के लिए और व्यक्ति राष्ट्र के प्रति समर्पित दिखाई देता है।

18.3.4 व्यष्टि–समष्टि चिन्तन

अज्ञेय एक स्वतंत्र विचारक एवं प्रखर अलोचक रहे हैं। व्यक्तित्व का यह गुण व्यक्ति की समाज के प्रति प्रतिबद्धता व दायित्व बोध के कारण ही विकसित होता है। अज्ञेय में भी समष्टिगत चेतना व समर्पण विद्यमान है।आलोचक अज्ञेय को व्यक्तिवादी, अंहनिष्ठ कह कर एक पक्षीय दृष्टिकोण सामने रखते हैं जबकि अज्ञेय के काव्य को भी उतनी ही महत्ता मिली है। अज्ञेय की काव्य संवेदना को गहराई से परखें तो यह बात पूरी तौर पर प्रमाणित है कि अज्ञेय का व्यक्तित्व एक समर्पित व्यक्तित्व है। उनकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है। अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' कविता में व्यष्टि और समष्टि चिन्तन को देखा जा सकता है। व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता, उसका अस्तित्व व उसका सामर्थ्य समाजगत धरातल पर ही सिद्ध होता है। व्यष्टि और समष्टि को जोड़ने वाली उनकी सारी कविताएं उनकी वैयक्तिक संवेदनाओं से भरपूर हैं

उदाहाणार्थः–

"हम नदी के द्वीप है

हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर

स्त्रोत्स्विनी बह जाए

वह हमें आकार देती है,

हमारे कोण गलियां, अन्तरीप, उभार, सैकतकूल

सब गोलाइयां उसकी गढ़ी है,

मां है वह है, इसी से हम बने है। (नदी के द्वीप)

यहाँ पर नदी समाज और द्वीप व्यक्ति का प्रतीक है नदी मां है जो द्वीप को आकार प्रकार देती है उसी प्रकार व्यक्ति भी समाज में रहकर अपना व्यक्तित्व बनाता है। समाज उसे संस्कार व परिवेश प्रदान करता है। अज्ञेय के लिए व्यक्ति वह 'द्वीप' है जो अकेला होते हुए भी स्नेह और गर्व से भरा हुआ है, परन्तु अपनी सार्थकता स्वयं कोपंक्ति (समाज) के लिए दान दे देने में मानता है।

उदाहरणार्थः

''यह द्वीप अकेला स्नेह भरा

है गर्व भरा, मदमाता

इसको भी पंक्ति को दे दो।''

व्यष्टि और समष्टि का चित्रण इन पंक्तियों में भी ध्वनित होता है।

''कहा सागर ने : चुप रहो

मैं अपनी अबाधता जैसे

सहता हूँ : अपनी मर्यादा तुम सहो।

जिसे बांध तुम नहीं सकते, उसमें अखिन्न मन बहो।

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि जिस तरह सागर अबाध है विस्तीर्ण है उसी तरह समाज भी। समाज की अबाधता और व्यक्ति की मर्यादा दोनो की उपस्थिति होनी चाहिए। व्यक्ति यदि अपनी मर्यादा में रहते हुए समाज के साथ अखिन्न बह सके तो फिर द्वन्द्व ही उत्पन्न न हो। वस्तुतः अज्ञेय एक मानवीय सोच के कवि रहे।

18.3.5 मानवतावाद

आधुनिक युग के अन्य कृति–कवियों के समान ही अज्ञेय के जीवन दर्शन में भी मानवतावाद को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हैं। मानव में ही ईश्वरत्व की प्रतीति में, समाज के पीड़ित दलित वर्ग के प्रति सहानुभुति और शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश की भावना की अभिव्यंजना में और अनेक रूपात्मक मानवलोक के प्रति आकृष्ट रहने के मूल में अज्ञेय की मानवतावादी विचार क्रियाशील रहते है।

समाज के शोषित वर्ग के प्रति सहानुभुति और शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश की भावना में अज्ञेय के मानवतावाद का दूसरा रूप देखा जा सकता है, जो मानव को जाति, धर्म, अर्थ और राजनीति के क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार से अपमानित करते है और उसका शोषण करते है। ऐसे व्यक्तियों कें प्रति अज्ञेय ने घृणा व्यक्त की है और उन्हें ललकारा है। श्रम व संगीत से अज्ञेय मानव तत्व का विकास मानते है –

''मुझे उसे मानव कहते संकोच होता है,

मैं कभी अंतस् में भी उसे मनुष्य समझने का भाव

नहीं पाता। (इत्यलम्,)

''भावनाएं तभी फलती है कि उनसे लोक के

कल्याण का अंकुर कहीं फूटे।'' (हरी घास पर क्षण भर)

18.3.6 बुद्धिवाद

तटस्थतापर्वूक सत्य की खोज करने की प्रवृति तथा बुद्धि–संगत बातों से ही आस्था की भूमि तैयार होती है अज्ञेय ने अपने अन्तर्गुहावासी आराध्य से निवेदन किया है कि उन्हें जीवन में ऐसी विवेक दृष्टि मिले जिसके द्वारा वे सत्य की खोज में दृढ़ आस्था रख सकें और समस्त बाधाओं को जी सकें–

आकांक्षा का मधुर कुहासा

सुख का तम

करे न ओझल

वह पैना विवेक जिसको

दुश्चिंता कोई करे न बोझल

सच का आग्रह

निष्ठा का हठ

अग जग के विरोध कर धक्का जिसको ढहा न जाए। (अज्ञेय : इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये)

''इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये'' में अज्ञेय ने अपनी भावना को भी तर्क के प्रकाश में देखा है। चिन्ता में प्रेम का विश्लेषण अज्ञेय की बुद्धिवादी दृष्टि को ही प्रमाणित करता है। इसी प्रकार ''हरी घास पर क्षण भर'', ''बावरा अहेरी'', ''इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये'' और ''अरी ओ करूणा प्रभामय'' की कविताओं में बुद्धिवादी प्रेरणाएं क्रियाशील है।

18.3.7 निर्वैयक्तिकरण

निर्वैयक्तिकरण की प्रमुख विशेषता व्याक्तिगत अनुभूति के साधारणीकरण में निहित है। अज्ञेय की निम्नांक्ति पंक्तियों में यही प्रवृत्ति स्पष्ट हुई है–

आज के विविक्त अद्वितीय, इस क्षण को

पूरा हम जी लें, आत्मसात कर ले। (चिन्ता की भूमिका,)

इस प्रवृत्ति को अज्ञेय ने 'अहम का विलयन' भी कहा है। अहं के विलयन के प्रति, आज के कवि की उदासीनता पर चिन्ता और उसके (अहं के विलयन) प्रति अपना विश्वास व्यक्त करे हुए अज्ञेय ने कहा है–"काव्य रचना का किसी भी कला सृष्टि का अधिकार तभी आरम्भ होता है जब व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विलयन हो जाये, यह मानना तो दूर की बात रही, आज का कवि साधारणतः इतना भी नही मानता कि कविता या कि कला सृष्टि व्यक्ति के विलयन का माध्यम है या कि कविता के द्वारा कवि व्यक्ति को बृहतर इकाई में विलीन कर देता है। आज का कवि तो कविता को वरंच–व्यक्तित्व की, व्यक्ति के अहम् की, प्रखरतर अभिव्यक्ति और उस अहम् को पुष्ट करने वाली रचना मानता है।

18.3.8 यथार्थवाद

अज्ञेय काव्य में जीवन सत्य यथार्थवाद के रूप में भी अभिव्यक्त हुआ है। रहस्यवाद को छोड़कर उनकी शेष सभी मान्यताएं यथार्थवाद से प्रभावित है। प्रेम के सम्बन्ध में अज्ञेय का दृष्टिकोण मनोविश्लेषण पर आधारित है और मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के नाम से प्रभावित है। इतना आवश्यक है कि अज्ञेय का यथार्थवाद व्यक्तिवादी यथार्थवाद है और इसलिए उन्होंने 'मानवता' की अपेक्षा मानव व्यक्ति को अधिक महत्व दिया है। राष्ट्रीय भावना से परिभाषित होकर उन्होंने जो काव्यरचना की है उसमें यथार्थवाद सर्वाधिक मुखर हुआ है। देश पर लगभग सभी राष्ट्रीयतावादि कवियों ने कविताएं लिखी है, किन्तु अज्ञेय की 'हमारा देश' नामक कविता जैसी यथार्थवादी कविताएं इस विषय में कम ही मिलेगी। इसी प्रकार देश की वास्तविक दशा का चित्रण 'हरा भरा है देश' नामक कविता में हुआ है। अपनी यथार्थवादी प्रेरणाओं व व्यंग्यात्मकता के लिए यह कविता दृष्टव्य है। कविता का एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है–

हरे भरे है खेत

मगर खलिहान नहीं

बहुत महतो का मान

मगर दो मुठ्टी धान नहीं। (अरी ओ करूणा प्रभामय)

18.3.9 आत्मसमर्पण व आत्म त्याग

अज्ञेय ने ईसा बुद्ध व आदम का आदर्श हमेशा अपने काव्य सृजन के समक्ष उपस्थित किया है। क्योंकि ईसा, बुद्ध व आदम का आत्मत्याग व समर्पण अभूतपूर्व है। इन्होंने संसार का वह सब कुछ सहन किया जिसे सामान्य मनुष्य

वरण नहीं कर पाता, परन्तु मानवता की सच्ची सेवा की। अज्ञेय ने मनुष्यता के लिए उस यातना व बलिदान को आदर्श माना जो ईसा को मिला। मर्माहत होकर जिस नारी ने अपने पुरूष को संसार के लिए दान कर दिया, वह यशोधरा गौतम पत्नी और वह आदम जिसने मनुष्यता की उपासना के लिए दिव्य सत्य के सम्बन्ध हेतु लौकिक सम्बन्ध छोटे नहीं होने दिए। इनका सभी का आदर्श अज्ञेय ने स्वीकार किया तथा अपने काव्य में आत्म समर्पण व आत्म त्याग को जीवन –सत्य अभिव्यक्त कर मानव को प्रेरणा दी। सृजनात्मक कर्म के प्रति निस्वार्थ, निरन्तर जागरूक रहना आत्म–समर्पण व मानव सेवा को जीवन का अंग मानकर चलना, यह सब अज्ञेय का चारित्रिक मूलधन है।

मानव सेवा न केवल कर्म से ही, बल्कि चिन्तन मनन से भी होती है। यहाँ तक कि हृदय की प्रत्येक धड़कन में भी मनुष्य मात्र की वेदना ही धड़कती रहे–

मेरे हर सुख में

हर दर्द में हर यत्न, हर हार में

हर साहस, हर आघात के हर प्रतिकार में

धड़के नारायण । तेरी वेदना

जे गति है, मनुष्य मात्र की।

18.3.10 सत्यम् शिवम् व सुन्दरम्

अज्ञेय की जीवन दृष्टि में सत्यम् शिवम् व सुन्दरम् का समायोजन निहित है। कवि का सत्य कल्याणमय व सुन्दर होना चाहिए ताकि वह प्रभावोत्पादक हो।

अज्ञेय के अनुसार कवि का उद्देश्य सत्य की भूमि में सौन्दर्य के पौधे से शिवत्व का फल प्राप्त करता रहा है। जिस प्रकार ज्ञान, भावना व संकल्प से ज्ञान, भक्ति व कर्ममार्ग की सारणियाँ बनती है, उसी प्रकार जीवन की सुघड़ता सत्यम, शिवम् सुन्दर के समन्वय में ही संरक्षित रहती है।

सत्य, शिव व सुन्दर की स्थापना के लिए अज्ञेय ने पौधे का आदर्श अपने सम्मुख रखा है। जिस प्रकार पौधा सडा, गला, कूडा कचरा जो भी उसकी जड़ों व पाले में डाल दिया जाता है, भोगता है, लेकिन उससे जो पुष्पनिकलता है, वह रूप, रस, गन्ध व शिवत्व से मण्डित होता है। अशुच को शिवता प्रदान करना तथा असुन्दर को उपयोगीबनाना इन पुष्प पौधों से जानने की शिक्षा कवि अज्ञेय देता है। कवि के हृदय की उदारता व उनका अपना जीवन सत्य इसी में आकर अपना गन्तत्व पाता है–

सड़ा दे दो

गला दे दो

पचा दे दो

कचरा दो, राख दो, अषुच दो, उच्छिष्ट दो

वह तो है सृजन–रत

उसे सब रस है

और इस हेतु (हम जाने या न जाने यह)

हम सारे फूल हैं

घास फूस डाल पात

लता–क्षुप

औषधि, वनस्पति, हुमाली बन वीथियॉ रूप सत्य, रस सत्य, गन्ध सत्य रूप शिव। (इन्द्रधनषु रौंदे हुए ये)

18.3.11 अस्तित्ववादी चिन्तन

अज्ञेय की काव्य–संवेदना अस्तित्ववादी चिन्तन के संदर्भ में निम्न रूपों में उद्घटित हुई है।

18.3.11.1 व्यष्टिगत महत्व

हिन्दी के प्रयोगवाद व नयी कविता के मूल में अस्तित्ववादी दर्शन प्रतिष्ठित है। अस्तित्ववाद आधुनिकता की देन है। अस्तित्ववाद में व्यक्ति की जो महत्ता स्थापित हुई है, वही महत्ता अज्ञेय के काव्य में भी प्रदर्शित हुई है। व्यक्ति की ह्रयत्ता का समाज में पूर्ण रूप से विलय हो जाना समाज व व्यक्ति दोनो के लिए अहितकर होगा। अस्तित्ववादी दर्शन में समाज का विकास व्यक्ति के जागरूक विवेक पर भी निर्भर है। अज्ञेय भी मानते है कि निज की इयत्ता खत्म करके नई दिशा–तलाश नहीं की सकती है। यह बात उनकी इस कविता में देख सकते हैं –

''किन्तु हम हैं द्वीप

हम धारा नहीं है

स्थिर समर्पण है हमारा

हम सदा से द्वीप है स्रोतस्विनी के

किन्तु हम बहते नहीं है

क्योंकि बहना रेत होना।''

हम बहेंगे तो रहेंगे नही

पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे सहेंगे।बह जायेंगे

और फिर हम पूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते है

रेत बनकर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे

अनुपयोगी ही बनायेंगे ।।"[16] (हरी घास पर क्षण भर)

यहाँ अज्ञेय ने स्पष्ट किया है कि व्यक्ति की इयत्ता का खत्म होना सब कुछ का खत्म हो जाना है। अज्ञेय को व्यक्ति के सामर्थ्य पर विश्वास है। आज का व्यक्ति यद्यपि अविश्वास अनास्था, घुटन, संत्रास से ग्रस्त है तथापि सामाजिक परिवर्तन व मूल्यामानों की स्थापना में भी वही सक्षम है। आज का व्यक्ति घुटन, पीड़ा, असहाय, अजनबी व अकेलापन महसूस करते हुए भी समाज में रहने व जीने के लिए अभिशप्त है अर्थात् एक तरह से अपने अस्तित्व के प्रति सचेत भी है। यदि समाज से उसका द्वन्द्व रहेगा तो उसका अस्तित्व भी नहीं रहेगा। उसे अपनी सार्थकता, अपना अस्तित्व समाज के मध्य ही सिद्ध करना है।

18.3.11.2 परिवेशगत यथार्थ

नई कविता में जो अनास्था, निराशा, अनिश्चय दिखाई देता है वह अस्तितववादी दर्शन का प्रभाव है। आज का मानव अपने वादों व मानवमूल्यों के विघटन के कारण उत्पन्न अराजकता से गुजर रहा है। बुद्धि वैभव के अपार भण्डार का अधिकारी होते हुए भी नया कवि विषम सामाजिक यथार्थ के मध्य सफल नहीं हो पाता। अपनी इस उपेक्षा और लौकिक स्तर अभावों के बोझ को ढोते हुए उसके मन का उत्पीडन अनास्था में परिवर्तित होने लगता है। असल में अज्ञेय की कविता जब यंत्रयुग के खतरे को व्यक्त करती है। तब वह केवल मशीन का खतरा नहीं है बल्कि वह आधुनिक युग में होने वाली जीवन की दुर्गति का खतरा है जहॉ जीवन अभूतपूर्व ढंग से खत्म हो रहा है। जहाँ
आसपास घुटन है, त्रास है और आत्मा की अनुकरण की मोहमयी प्यास है यानि जीवन का अभूतपूर्व संकट अस्तित्ववादी दर्शन के अनुरूप अज्ञेय आधुनिक युग की विसंगति और मानव जीवन पर मंडारते संकट को चेतना के स्तर पर महसूस करते है। अज्ञेय कहते है–

'उद्यम की कड़ी–कड़ी में बँधते जाते मुक्तिधाम

मनव की आशाएँ ही पल–पल

उसको छलती जाती है।। (अरी ओ करूणा प्रभामय)

18.3.11.3 मृत्युबोध

अस्तित्ववादियों ने मृत्यु चर्चा बहुत अधिक की है। उनकी धारणा है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व को तभी प्रमाणित कर सकता है, जब मृत्यु से साक्षात्कार कर ले। आज के युग में विसंगति व अनिश्चितता है। इससें मृत्यु का भय सदैव छाया रहता है। परिणमतः नया कवि मृत्यु के संबंध में सोचता है। अज्ञेय के 'आंगन के पार द्वार' संग्रह के 'चक्रान्त शिला' खण्ड में कुछ इस प्रकार की अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

18.3.11.4 क्षणबोध

अस्तित्ववादी दर्शन के 'मृत्युबोध' के साथ 'क्षणबोध' का प्रभाव अज्ञेय की कविता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस दर्शन में भी प्रत्येक क्षण की स्वतन्त्र सत्ता है, प्रत्येक क्षण का महत्व है। मनुष्य प्रत्येक क्षण को भोगने के लिए लालायित रहता है। अज्ञेय कहते हैं–

''सांस का पुतला हूँ मैं

जरा से बँधा हूँ

और मरण को दे दिया गया हूँ

पर एक जो प्यार है न उसी के द्वारा जीवनमुक्त मैं किया गया हूँ

काल की दुर्वह गदा को एक

कौतुक भरा बाल क्षण तोलता है। (आंगन के पार द्वार)

इस कविता में प्रेम के एक क्षण की अनुभूति तथा मृत्युबोध दोनों की अनुभूति हुई है। डॉ. धर्मवीर भारती ने घनीभूत क्षण का अचानक उद्‌गम नहीं माना है। उनकी दृष्टि में कितने ही क्षण है, कितनी ही स्थितियां है जो प्रत्यक्ष असम्बन्धा लगती है, पर कुल मिलाकर हमारे चेतन, अर्द्धचेतन मन में लहर पर लहर इस एक बिन्दु को उभारती रहती है और संपूर्ण जीवन प्रक्रिया एक क्षण में सम्बद्ध हो पाती है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव अज्ञेय काव्य पर भी अधिक पड़ा है।

18.3.11.5 अज्ञेय के काव्य में अतियथार्थ चिन्तन

अतियथार्थवाद सामाजिक नैतिक या धार्मिक आदर्शों के विरूद्ध था। अज्ञेय की कविता भी परम्परा, नैतिकता तथा धर्म की विद्रोही है। आज का कवि अपने अस्तित्व के आगे की नियति को मिथ्यावंचना और भ्रम मात्र समझता है।

अतियथार्थवाद की तरह अज्ञेय के यहाँ भी कभी–कभी सामाजिक जीवन से विमुख व निरपेक्ष रहकर अपने मन की गहन पर्तो को उधेड़ कर उसमें छिपी हुई दमित वासनाओं को चित्रित करने में यौन अश्लीलता विद्यमान रहती है। एक मुख्य बात यह है कि अज्ञेय ने जहाँ पर यौन चित्रण किये है वहाँ उनकी भाषा तत्सम संस्कृत प्रधान हो गई और वह तथाकथित अश्लीलता हो गये जिसे भदेस कहते हैं।

अतियथार्थवाद में वैयक्तिक अहं को भी अभिव्यक्ति दी गई है। अज्ञेय के काव्य में वैयक्तिक अहं की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। अज्ञेय का अहं रूढिगत अवधारणाओं को नकारता है तथा वर्तमान परिवेश के संदर्भ में एक क्रांतिकारी भूमिका निभाता है।

18.4 अज्ञेय काव्य में शिल्प

संवेदना के साथ शिल्प का गहरा सम्बन्ध है। काव्य–संवदेना व विषय वस्तु को सम्प्रेषित करने का माध्यम (साधन) शिल्प विधान ही होता है। भाषा, अप्रस्तुत विधान, छंद, बिम्ब व प्रतीक आदि शिल्प संयोजन के विविध पक्ष होते है।

प्रिय विद्यार्थियों यद्यपि काव्य में शिल्प की चर्चा आगे की दो इकाइयों (1) अज्ञेय की प्रतीक योजना और (2) अज्ञेय की काव्य भाषा में विस्तार से की जा रही है तथापि सार–रूप में जानकारी प्रस्तुत है–

1. काव्य – भाषा

भाषा की दृष्टि से अज्ञेय का काव्य अत्यधिक समृद्ध है। तत्सम, तद्भव, देशज शब्दों का प्रसंगानुसार प्रयोग सराहनीय है। असाध्य वीणा और 'आंगन के पार द्वार' में तत्सम शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है। साथ ही अज्ञेय अपनी काव्य रचनाओं में बोलचाल की शब्दावली से युक्त सहज–सरल भाषा की निर्मिति करते प्रतीत होते है। ठेठ ह्वेाती एवं देशज शब्दों में चिरी चिरैया, दीठ, विऊंटा, ऐडां (पथ) माचिया, कुलिया मुंहझौंसी, झगड़ैल, सांझ, पांख, जोखम, इक्कड़, असाढ़, अकास, इक्ला, लोंढा, डांगर, गोयठा, चोला, ऊंटी, सुरमुच, कनियां, तलैया, खोखल, फुदकी, दहगंल,फलसुंघनी आदि शब्दों को काव्य में स्थान मिला है।

नादात्मक शब्दों के प्रयोग के सन्दर्भ में भी कवि की कुशलता प्रकट हुई है। डाकू, हाक् डाक्, अडड़ाताख़ड़खड़ गुडुप, हहरूना, तिपतिप, पट–पट, थाप, ढरकन, फुरकन, सरसर, क्रेकार, सांय–सांय, घुरघुराहट, छप्–छड़ाप, गर्ज्न, घुर्घग्र, चीख, भूंक, कृक्का, चिचियाहट, टाप, चहक, खुदबुद, छुल–छुल, गमक टुनटुन इत्यादि नादात्मक शब्दोंका विशिष्ट सन्दर्भ में सफल प्रयोग कवि ने किया है।

2. छन्द सौन्दर्य

काव्य–विषयक चिन्तन के सन्दर्भ मे अज्ञेय ने छंद पर भी विचार किया है वे छन्द की बंधी हुई परिपाटी को नहीं स्वीकारते। सामान्यतः अक्षरों की संख्या, मात्रा अथवा वर्ण गणना एवं यनि–गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य–रचना छन्द कहलाती है, किन्तु अज्ञेय के अनुसार ''छन्द का अर्थ केवल तुक सा बंधी हुई स्वरमात्रा या वर्ण संख्या नहीं है..... छन्द योजना का ही नाम है। जहाँ भाषा की गति नियन्त्रित है वहाँ छन्द है। यद्यपि उन्होंने छंद के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं, किन्तु आरम्भिक रचनाओं में आई छन्द–योजना परम्परागत छन्द–विधान से प्रभावित है।

3. अप्रस्तुत विधान

यद्यपि अज्ञेय के प्रारम्भिक काव्यों में छायावादी अप्रस्तुतों का प्रयोग ही अधिक हुआ है। 'इत्यलम्' तक झझा, साध्य रश्मि, तारा, उल्काकुल, निकुंज उच्छवास, इन्दु एवं इसी प्रकार के उपमानों की संख्या अधिक है। किन्तु 'इत्यलम्' की भूमि में कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि वे आत्माभिव्यंजना के दूसरे माध्यमों से जूझ रहे है। इसी संग्रह से नवीनता के प्रति उनका झुकाव बढ़ने लगा है। अज्ञेय की अप्रस्तुत योजना में मूर्तामर्त विधान के सभी मूल तत्व मिल जाते हैं।

4. प्रतीक विधान

अज्ञेय के काव्य में प्रतीकों का जमकर प्रयोग हुआ है। उनके अधिकांश काव्य–संकलनों का नामकरण भी प्रतीकार्थ रखने वाली कविता के आधार पर हुआ है। ''हरी घास पर क्षण भर'', ''बावरा अहेरी'', ''इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये'', आंगन के पार द्वार'', ''कितनी नावों में कितनी बार'' आदि में क्रमशः हरी घास, अहेरी, इन्द्रधनुष, द्वार, नाव आदि प्रतीकार्थ रखते हैं एवं विभिन्न आशयों को द्योतित करते है। अज्ञेय के काव्य में प्रकृति से सम्बन्धित प्रतीकों की संख्या सर्वाधिक है। नदी, द्वीप, सागर, तट, आंगन, पार , डगर, पगडण्डी, आकाश, सूर्य, तारे, बादल, इन्द्रधनुष, शिशिर, धूलिकण, नाव, तिनका, बून्द, किरणें भोर आदि प्रकृति से सम्बन्धित प्रतीकों का प्रयोग अलग–अलग सन्दर्भों में हुआ है। अज्ञेय के काव्य में 'हरी घास' एक विशिष्ट प्रतीक है। इसको कवि ने मन की उन्मुक्तता एवं समर्पण का प्रतीक बनाया है। कवि के प्रकृति से सम्बन्धित प्रतीकों में एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक है 'मछली' जो जिजीविषा का प्रतीक है।

5. बिम्ब योजना

बिम्ब शब्द मानस–प्रतिमा का पर्याय है। जीवन और जगत् की अनुभूति हमें बाह्य संवेदनों से प्राप्त विभिन्न बिम्बों का प्रयोग अपनी भाषा में मूर्तिकरण की क्षमता बढ़ाने, चिन्तन को अधिक प्रेषणीय बनाने, वस्तु को अधिक ग्राह्य एवं स्पष्ट करने, उसे प्रतीक से युक्त कर संप्रेषण में सहायक बनाने आदि के लिए किया है। ऐन्द्रिय–बिम्बों के अतिरिक्तप्राकृतिक, पौराणिक, वैज्ञानिक, प्रगतिसूचक, मनोवेज्ञानिक, प्रतीक समन्वित बिम्बों की अवधारणा उनके काव्य में हुई है। गति की दृष्टि से गत्यात्मक एवं स्थिर, स्पर्श पर आधृत कोमल एवं कठोर आकार के आधार पर विराट एवं लघु आदि अनेक प्रकार के बिम्ब अज्ञेय के काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ

सूप–सूप भर /धूप–कनक/यह सूने नभ में गयी विखर /चौंधाया बीन रहा है/उसे अकेला एक कुरर। (अरी ओ करूणा प्रभामय, 'धूप' कविता)

सूप में भरकर धूप रूपी कनक को नभ–रूपी आंगन में बिखेरा जाना तथा सूर्य रूपी अकेले कुरर पक्षी का उसे बीनते जाना संध्याकालीन प्रकृति का एक चेतन बिम्ब उपस्थित कर देते है। धूप पर आरोप से स्वर्ण अथवा गेहूँ के दानो का रूपक ही नही बनता, धूप की पीली पडती छवि भी आँखों के सामने आ जाती है। इसी तरह ''चौंधाया बीन'' रहा है उसे अकेला एक कुरर से सूर्य के द्वारा धूप–रूपी दानों का चुनना ही निरूपित नहीं होता, क्रमशः धूप के विलीन होने और संध्याबेला के गहराने का संकेत भी मिलता है।

इसी प्रकार भादों की उमस, 'माघ', उषा के समय', 'रजनीगंधा', 'पावस प्रात', 'शिलंड', 'वैशाख की आंधी', 'दूर्वाचल', 'चक्रांत शिला', 'महानगर कुहरा', 'सागर मुद्रा, 'नन्दा देवी' आदि अनगिनत कविताओं मे किसी न किसी रूप में प्रकृति के बिम्बों की उपस्थिति देखी जा सकती है।

18.5 सारांश

प्रयोगवाद के प्रयोक्ता व सूत्रधार अज्ञेय ही रहे है। प्रयोगवादी समस्त प्रवृत्तियों घोर वैयक्तिकता, यथार्थवाद, क्षणवाद, मानवता आदि के दर्शन उनके समस्त काव्य में होते है। अज्ञेय भारतेन्दु व निराला के बाद काव्य प्रयोगों के क्षेत्र में सर्वाधिक सक्रिय रहे है। इनके काव्य संगम में छायावाद, प्रगतिवाद व प्रयोगवाद तीनों की त्रिवेणी प्रवाहित है।

अज्ञेय के काव्य में संवेदना के कई स्तर विद्यमान है। रहस्यवाद, प्रेम व नारी चित्रण, राष्ट्रीय भावना, मानवतावाद, बुद्धिवाद, निर्वैयक्तिकरण, यथार्थवाद आत्मसमर्पण व आत्मत्याग, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्, अस्तित्ववाद, व्यष्टि का महत्व और परिवेशज यथार्थ अज्ञेय के काव्य को अनुभूति के धरातल पर व्यापकता प्रदान करते है।

इस प्रकार अज्ञेय काव्य में संवेदना (वस्तु) के कई स्तर विद्यमान है। कोई भी कवि अपनी अनुभूतियों को जिन माध्यमों से प्रस्तुत करता है वे ही शिल्प के उपकरण होते है। अज्ञेय मुख्यतः शिल्पी कलाकार है, अतएव उनके काव्य–शिल्प में प्रयोगों की विविधता है। भाषा योजना एवं बिम्ब विधान भी हिन्दी काव्य के विकास की एक उल्लेखनीय कड़ियां है।

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ''अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रणेता व नयी कविता के प्रतिनिधि कवि है'' इस कथन की उनके काव्य के संदर्भ में समीक्षा कीजिए

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. अज्ञेय काव्य में संवेदना व शिल्प की विवेचना कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3. अज्ञेय काव्य में आये बिम्ब विधान की विवेचना कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4. टिप्पणी लिखिए

(क) अज्ञेय काव्य में अस्तित्ववाद (ख) अज्ञेय काव्य में बिम्ब विधान

(ग) अज्ञेय काव्य में व्यष्टि–समष्टि द्वन्द्व (घ) अज्ञेय की काव्य कृतियां

_____

_____

_____

_____

_____

_____

18.7 संदर्भ ग्रंथ

1. प्रो. रामस्वरूप चतुवेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
2. डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल – हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद, ऋषभचरन जैन व संतति प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हरिचरण शर्मा, नये प्रतिनिधि कवि, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
4. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, – अज्ञेय की कविता एवं मूल्यांकन विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
5. रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद, निराला, अज्ञेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
7. रमेश ऋषिकल्प– अज्ञेय की कविता : परम्परा व प्रयोग, अभिरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली
8. नन्द किशोर आचार्य – अज्ञेय की काव्य तितिर्शा, सूर्य प्रकाशन, बीकानेर
9. नामवर सिंह – कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. डॉ. केदारनाथ सिंह – आधुनिक हिनदी कविता में बिम्ब विधान, दिल्ली 1971
11. अज्ञेय–आत्मनेपद
12. अज्ञेय–भवन्ती

.....

अज्ञेय की काव्य भाषा

इकाई की रुपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 भाषा के सम्बन्ध में अज्ञेय का अभिमत

19.3 अज्ञेय के काव्य में भाषा के विविध रूप

19.3.1 तत्सम शब्द प्रधान भाषा

19.3.2 तदभव शब्द प्रधान भाषा

19.3.3 मिश्रित भाषा

19.3.4 नादात्मक शब्द प्रयोग

19.3.5 शब्दों का नवीन अर्थ एवं संस्कार

19.3.6 मुहावरों का कुशल प्रयोग

19.4 सारांश

19.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.6 संदर्भ ग्रन्थ

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप :

1. काव्य भाषा के संदर्भ में अज्ञेय के विचार जान सकेंगे।
2. अज्ञेय के काव्य में भाषा के विविध रूपों को समझ सकेंगे।

3. अज्ञेय के काव्य में प्रयुक्त शब्दों के नवीन अर्थ व नवीन प्रयोग को समझ सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

हिन्दी के नऐ कवियों में अज्ञेय ही सबसे पहले कवि है जिन्होंने भाषा को नवीन और व्यापक अर्थ दिया है। अज्ञेय ने भाषा के क्षेत्र में शब्द और अर्थ दोनों को महत्ता दी है। भाषा क्षेत्र में उनकी प्रयोगशील प्रवृत्ति शब्द चयन, विविध शब्द प्रयोग, वाक्य–विन्यास विराम संकेत आदि प्रयोगों में दिखाई देती है। भाषा के क्षेत्र में नयी कविता की एक प्रमुख उपलब्धि शब्द को नया अर्थ देने की रही है और अज्ञेय का इस उपलब्धि में सर्वाधिक योगदान रहा है।

19.2 भाषा के संदर्भ में अज्ञेय का अभिमत

अज्ञेय भाषा को ''संस्कृति का सर्वाधिक शक्तिशाली और समृद्ध उपकरण'' मानते है। भाषा रोजमर्रा के असंख्य साधारण प्रयोजनों एवं कार्य–व्यापारों का माध्यम होने के साथ ''मूल्यों के रचनात्मक शोध का और गभीरतम अनुभूतियों एवं संवेदनाओं के प्रेषण का माध्यम भी है। साधारण प्रयोजनों की अभिव्यक्ति के लिए हमें भाषा की समस्या से प्रायः जूझना नहीं पडता किन्तु सृजक मूल्यों का रचनात्मक शोध करता है तथा अपनी विशिष्ट अनूभूतियों को अभिव्यक्त करना चाहता है, इसलिए उसे सर्जनात्मक भाषा की समस्या से जूझना पडता है। सृजक की भाषा स्पष्ट होती है। प्रायः हर युग के कवि के सम्मुख यह समस्या नये रूप में आती है।

अज्ञेय लिखते है–''जो बाहर है, सतह पर है उसे बखानने के लिए एक नयी और सपाट भाषा की आवश्यकता थी। साधारण बोलचाल की और हम पहले ही बढ़ चुके थे और अब हमें भाषा का वह अभिधामूलक–इकहरापनभी वांछनीय जान पडने लगा जो सामाजिक व्यवहार में इसलिए श्लाघ्य है कि कही हुई बात का अर्थ समझने में भूल न हो। काव्य भाषा इकहरी नहीं होती, न ही होनी चाहिए, काव्य–भाषा मुहावरे और समय से बँधने की बजाय उसका विस्तार करती है।''

एक संस्कारी, सर्जनात्मक एवं प्रयोजनवादी काव्य–भाषा के निर्माण के लिए जितना प्रयत्न अज्ञेय ने किया सम्भवतः और किसी नये कवि ने नहीं किया। उन्होंने अभिव्यक्ति की समस्या को कवि के सन्दर्भ में ही नहीं प्रत्येक कविता के सन्दर्भ में देखा है, किन्तु वे इससे निराश नही हुए है। वे आत्मनेपद में लिखते है ''जो सर्जक अभिव्यक्ति के लिए जूझेगा भाषा उसे निराश नही करेगी। भाषा कल्पवृक्ष है। जो उससे आस्थापूर्वक मांगा जाता है भाषा वह देती है।'' सर्जक का प्रत्येक अधीर संघर्ष भाषा की निधि में से ऐसा कुछ देता है, जो नया, सुन्दर समर्थ एवं मूल्यवान है।

अभिव्यक्ति के लिए भाषा की समस्या का वास्तविक अर्थ है उपयुक्त शब्दों के चुनावों की समस्या। अज्ञेय के अनुसार ''कविता शब्द में होती है, विचार भाषा में होता है'' अथवा कविता जोड़कर नही बनती, वह रची जती है: उसका प्रतिज्ञान भाषा नहीं केवल शब्द है। किन्तु इससे कोई यह न समझे कि सिर्फ शब्द योजना मात्र ही कविता है, इसलिए अज्ञेय ने इसका स्पष्टीकरण भी दिया है : कवि शब्द में शब्द नही जोड़ता, शब्दों के सान्निध्य मात्र से नये वर्ण रचता है, अर्थों, भावों ध्वनियों, संस्कारों, रूपाकारों की अनेक गूंजें, अनगूंजे उत्पन्न करता है, ध्वन्यर्थोका पूरा संसार रच देता है।''3

19.3 अज्ञेय के काव्य में भाषा के विविध रूप

19.3.1 तत्सम भाषा

अज्ञेय की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। उनके काव्य में जहाँ संस्कृत शब्द-भण्डार से आघात, अन्तर, असीम, आषाढ, कनक, नारायण, वेदना, दुःख, निष्ठा, समर्पण, स्मृति, श्रद्धा, आलोक, लक्ष्य, अनुकम्पा, अचंचल, अनल, अनुभव, रूपाकार, विलय, आकांक्षा, विश्राम, प्रतिमा, अप्रतिम आदि सरल बोधगम्य शब्द आये है वहाँ जल्पक, जिजीविषा, उदीषा, वाभृता, आप्लवान, अन्त्यगता, आस्पर्द्धा पुष्पिताग्र आदि अपेक्षाकृत दुरूह एवं कम प्रचलित शब्द भी बिना झिझक प्रयुक्त हुए है। कही–कही संस्कृत के वाक्य एवं वाक्यांशों का ज्यों का त्यों उद्धत कर दिया गया है। ''आषाढस्य प्रथम दिवसे'', निविड़ांधकार, 'निर्गधइवकिशुंकाः', 'मुदन्तु सर्वे, प्रसीदन्तु सर्वे, ''जम्बू द्वीपे भरतखण्डे'' ''सर्वे सुखिनः सन्तु'' इत्यादि। असाध्य वीणा कविता में भी तत्सम शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है, जैसे–प्रियम्वद, गुफागेह, गिरि–प्रान्तर, वज्रकीर्ति, मन्त्रपूत, प्राचीन किरीट तरू, करिशुण्ड आदि किन्तु यहाँ तदभव, देशज तथा हल्के–फुल्के व्यंजक शब्दों के प्रयोग से भाषा अपनी सहजता नहीं खो पाई है। तत्सम शब्द बहुल वाक्य रचना का उद्देश्य गम्भीर मनोभावों एवं वातावरण को चित्रित करना है।

अज्ञेय की तत्सम शब्दावली युक्त भाषा की भी अपनी कुछ विशिष्टताएँ है। प्रथम तो यह कि अज्ञेय तत्सम शब्दावली में विशेष्य और क्रियाओं से अधिक विशेषणों को महत्व प्रदान करते है, इसमें प्रतीक भी विद्यमान होते हैं। अज्ञेय कहीं–कहीं संस्कृत सूक्तियों का प्रयोग करते है। अज्ञेय काव्य की तत्सम प्रधान भाषा में उनकी विशेषण प्रियता ऐसे विशेषण सामने लाती है जो अन्य काव्य–साहित्य में कम प्रचलन में होते हैं, जैसे ध्वान्त, मृसण, विविक्त, अकिंचन, अनाहूत, अज्ञात अनथक अपलक, अदृश्य आदि।

कई स्थलों पर कवि ने संज्ञा से विशेषण तथा संज्ञा से क्रिया बनाकर शब्दों को नवीन अर्थ एवं नया संस्कार दिया है। अन्धकार से अन्धियारा, अधियाला, फरियाद से फरियादी, अज्ञान से अज्ञानी आदि संज्ञा से बने विशेषण रूपों में एक नयी ताजगी है। नयें क्रिया रूप भी दृष्टव्य है, जैसी असी सूंगा, बतियाते, अड़डाता है काग' एवं 'नीहारस्हाई कुई में क्रिया का नवीन रूप क्रमशः ध्वनि बिम्बानुरूप एवं कोमल है। कहीं–कहीं इन शब्दों से दोहरा काम लिया गया है। अविराम अनगिन झीकने झींगुर में 'झींगर' के लिए 'झीकना' प्रयोग ध्वन्यार्थ व्यंजक होने के साथ–साथ उसकी विशिष्ट स्थिति को भी द्योतित करता है। झींगुरदाता नहीं है। वह भिखारी है, और वह मानों झींकता हुआ गाल बजा रहा है। दाता तो चुपचाप पथ से गुजरता हैं।

19.3.2 तद्भव भाषा

ठेठ देहाती एवं देशज शब्दों में चिरी चिरैया, दीठ, विऊंटा, ऐडां (पथ) मचिया, कुलिया मुहंझौंसी, झगडेल, सांझ, पांख, जोखम, इक्कड़, असाढ, अकास, इक्ला, लोंढा, डांगर, गोयठा, चोला, ऊंटी, सुरमुच, कनियाँ, तलैया, खोखल, फुदकी, दहगंल, फलसुधनी आदि शब्दों को उनके काव्य में स्थान मिला है। ग्राम्य गीत शैली पर लिखे गीतोमें आंचलिक शब्दों का प्रयोग हुए है। छोरियाँ, तिजोरियाँ, चोरियाँ, गोरियाँ, क्यारियाँ पुतलियाँ आदि शब्दों में काँगड़ीपन आ गया है। इन शब्दों के प्रयोग से कवि की भाषा बोलचाल की सहज भाषा के करीब तो आई ही है उसकी भावाभिव्यंजकता भर

बढ़ी है। स्याह मुख चिमनियों के लिऐ मुँहझौंसी चिमनियाँ, पशु के लिए चिरी चिरैया आदि शब्द विशेष परिवेश के चित्रण में सहायक है। ठेठ देहाती एवं देशज् शब्दों से निर्मित बैशाख की आंधी की एक तस्वीर देखिए–

हहर–हहर घहराया
काला बादल
लेकिन पहले आया
झक्कड.....
आया पानी
अरी धूल झगड़ैल
चढी पछवा के कन्धों पर तू इतराती
लेकर चिकोटी अब भी :
बस एक स्नेह की बूंद से हुई पस्त
पैरों में बिछ–बिछ जाती।

इस उदाहरण में प्रयुक्त बद्दल, झक्कड़, झगडैल : पछवा आदि शब्दों ने बैसाख की आंधी के अकृत्रिम रूप को स्पष्ट कर दिया है। बद्दल कहने से घने मस्त, बेपरवाह बादल का चित्र सामने आता है। झंझा के स्थान पर झक्कड़ प्रयोग नया ही नहीं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अधिक समर्थ है। झगडने, तोड़ने, फोड़ने, उखाड़ने, गिरने आदि का भाव इसमें कहीं अधिक है। इसके अतिरिक्त बद्दल और झक्कड़ शब्द गहराने की ध्वनि का बिम्ब भी प्रस्तुत कर देते है।पछवा, झगडैल, इतराती आदि शब्द भी उपर्युक्त सन्दर्भ में बिल्कुल सही प्रतीत होते है।

19.3.3 मिश्रित भाषा

डॉ. केदार शर्मा ने अज्ञेय के काव्य में ब्रजभाषा के प्रयोग के सन्दर्भ में लिखा है–''अज्ञेय के काव्य में सबसे अधिक ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा के प्रयोग में उनके काव्य में अर्थ–सौन्दर्य, लयात्मक प्रवाह और संगीत तत्व का समावेश हो गया है। वाक्यों में ब्रजभाषा की क्रियाओ, विशेषणों और संज्ञा के प्रयोग से भाषा कोमल और मृदुल हो गई हैं। जिन लोगो ने नई कविता को शुष्कतावादी कविता कहकर उसका उपहास किया है, उनकी धारणा को परिवर्तित करने के लिए अज्ञेय की कविता में पर्याप्त शक्ति है। जिस कविता में वनपाखी, पंखा, त्रिशूल, कलस, डुबकी, छिन, सुलगता, पौन, तई, अकास, नास, सुर, असीसे, असाढ, छाम, संकरे, ठौर, सांस, बरसी, तरवार, रैन आदि शब्दों के चयन से भाषा का निर्माण किया जाए उसकी मृसण पदावली में भी नीरसता की अनुभूति करना अपनी सहृदयता का उपहास करना है।''

अज्ञेय के काव्य में विदेशी शब्दों की उतनी अधिकता तो नही दिखाई पडती किन्तु आवश्यक होने पर उन्होनेअरबी–फारसी तथा अंग्रेजी के अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। अरबी–फारसी से गुजरना, मुलम्मा, हाशिया, फरियाद, अल्ला कमरकल्ला, सलीब, शोक, जिम्मा, बेबस, साकी, शायर, सितम, मुल्ला, इश्तहार, अरमान, मंजिल, इन्सान आदि तथा अंग्रेजी से रेल, पार्क, मोटर, कलैण्डर, फेम, डाइनामाइट, जैण्टलमैन, थियेटर आदि शब्द उनके काव्य में सहज भाव से आए हैं। कही–कही अज्ञेय ने विदेशी उक्तियों की भी अपने काव्य में ज्यों का त्यों ले लिया है जैसे ''अस्सलाम तुम खैरूम्मिलिनिन्ना अरबी, दि चाइल्ड इज द फादर ऑफ मैन अंग्रेजी इत्यादि।

विदेशी शब्दों के प्रयोग का सीधा और स्पष्ट कारण यह है कि हमारी दैनन्दिन की भाषा में ये शब्द घुल आये है। हमारे जीवन में ये इस तरह घुल–मिल गये है कि इनका प्रयोग अस्वाभाविक नहीं जान पड़ता। कुछ विदेशी शब्द ऐसे है, जिनका एक शब्द में उपयुक्त एवं सरल हिन्दी पर्याप्त उपलब्ध भी नहीं है जैसे हाशिया, रेल, मोटर, कलैण्डर इत्यादि। बहुत से विदेशी शब्द हिन्दी की प्रकृति से पूरी तरह जुड़ गए हैं। उदाहरण के लिए ''बादलों का हाशिया है आसपास'' कभी बासन घिसने से मुलम्मा छूट जाता है में हाशिया और मुलम्मा शब्द का स्थानापन्न ढूँढ़ने की कल्पना करना ही असंगत है। ''बंधी लीक पर रेले लादे माल'' में अंग्रेजी का रेल शब्द हिन्दी की प्रकृति में ढल कर रेले बन गया है। कवि ने कहीं–कहीं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग तत्सम् शब्दावली के साथ किया है। ''पार्क के किनारे पुष्पिताग्र कर्णिकार'' की आलोकखची तन्वी रूप रेखा में तत्सम शब्दों की बहुलता के साथ 'पार्क' शब्द का प्रयोग हुआ है।

कई ऐसे उदाहरण भी मिलते है जहाँ कवि ने अंग्रेजी शब्द या पदावली से भावानुवाद करके नये शब्द का निर्माण कर लिया है। जैसे–डस्टबिन के लिए ''कचरा–पेटी'', लूज बॉडी के लिए 'ढीली देह', हण्टर ऑफ द ईस्ट के लिए 'भोर का बावरा अहेरी', ऐरोप्लेन के लिए 'यन्त्र गरूड', ट्रकों के लिए 'अंगारमेन गाडियां' इत्यादि। अज्ञेय की भाषामें अंग्रेजी और अरबी–फारसी के अतिरिक्त जापानी, यूनानी, चीनी आदि भाषा से भी कुछेक शब्द आ गए हैं। वाक्य रचना में हिन्दी के अतिरिक्त बंगला, पंजाबी तथा अंग्रेजी का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। ''पहाड़ी काक की क्लान्त बेसुर डाक'' में डाक –स्पष्टतः बंगला से आया है। इस वाक्य मे प्रयुक्त 'काक' के स्थान पर यदि 'कीकर' कर दे तो पूरा वाक्य ही बंगाली भाषा का वाक्य बन जायेगा।

19.3.4 नादात्मक शब्द प्रयोग

नादात्मक शब्दों के प्रयोग के सन्दर्भ में भी कवि की कुशलता प्रकट हुई है। डाकू, हाक्, अड़ड़ाता, खड़्खड़ गुड़्डप, हहरना, तिपतिप, पट–पट, थाप, ढरकन, फूरकन, सरसर, क्रेंकांर, सांय–सांय, घुरघुराहट, छप्–छपाक, गर्जन, घुर्घर्र, चीख, कृक्का, चिचियाहट, टाप, चहक, खुदबुद, छुल–छुल, गमक, टुनटुन इत्यादि नादात्मक शब्दों का विशिष्ट सन्दर्भ में सफल प्रयोग कवि ने किया है। ऐसे शब्दो के प्रयोग से बिम्ब की प्रभावशीलता एवं गोचरता बडी है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''भोर बेला। सिंची छत से ओस की तिपतिप पहाडी काक
की विजन को पकड़ती–सी क्लांत बेसुर डाक–हाक। हाक।
हाक।''

इन पंक्तियों में तिपतिप, डाक–हाक आदि शब्दों के प्रयोग से कवि ने शिलग्ड़ के पावस प्रात को चित्रित किया है। सामान्यतः ओस की बून्द बड़ी नहीं होती है, इसलिए उसके टपकने की सूचना के लिए तिप–तिप शब्द कहीं अधिक उपयुक्त है।

19.3.5 शब्दों का नवीन अर्थ एवं संस्कार

कई स्थलों पर कवि ने संज्ञा से विशेषण तथा संज्ञा से क्रिया बनाकर शब्दों को नवीन अर्थ एवं नया संस्कार दिया है। अन्धकार से अन्धियारा, अधियाला, फरियाद से फरियादी, अज्ञान से अज्ञानी आदि संज्ञा से बने विशेषण रूपों में एक नयी ताजगी है। नयें क्रिया रूप भी दृष्टव्य है, जैसी असी सूंगा, बतियाते, अड्डाता है काग' एवं 'नीहारस्हाई कुई में क्रिया का नवीन रूप क्रमशः ध्वनि बिम्बानुरूप एवं कोमल है। कहीं–कहीं इन शब्दों से दोहरा काम लिया गया है। अविराम अनगिन झीकने झींगुर में 'झींगर' के लिए 'झीकना' प्रयोग ध्वन्यार्थ व्यंजक होने के साथ–साथ उसकी विशिष्ट स्थिति को भी द्योतित करता है। झींगुरदाता नहीं है। वह भिखारी है और वह मानों झींकता हुआ गाल बजा रहा है। दाता तो चुपचाप पथ से गुजरता हैं।

इसी प्रकार कुछ और शब्दों का भी अज्ञेय ने प्रयोग किया है। जैसे अपारदर्शी घने घुप्प अंधेरे के लिए झींप अंधियाला, बगुलों की पंक्तियों के लिए 'बलाकांए', फटे हुए के लिए 'फटियल', पशुओं को पानी में घुसने के लिए 'भंसाना', कपडें फचीटने के लिए 'फींचना', सदा जल से युक्त रहने वाली नदी के लिए 'सदानीरा', सोने के जैसे रंग वाली के लिए 'सोनाली', कीमखाव पर सजधज कर बैठने के लिए 'लकदक बैठना, झुलसी हुई के लिए 'झौंसी' आदि ऐसे ही शब्द प्रयोग है।

19.3.6 मुहावरों का कुशल प्रयोग

अज्ञेय ने काव्य में विषय वस्तु व कश्प को अधिक ग्राहय व्यंजक और सशक्त बनाने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया है। अज्ञेय परम्परागत रूप से मुहावरों का प्रयोग कम करते है। मुहावरों का परिवर्तित और विशिष्ट रूप ही उन्हें प्रिय हैं।

दबे पांव आना, मुंह चिढाना, झींकते रहना, गाल बजाना, आकाश फाड़ना आदि मुहावरों के विशिष्ट सन्दर्भ में प्रयोग का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

फूल खिलते रहे चुपचाप
मंजरी आयी
दबे पांव, सकुचाती।
फड़फड़ाते रहे, करते रोर,
मुंह चिढाते रहे वन की शांति को

अविराम अनगिन झींकते झींगुर

भिखारी सभा

बजाते गाल बगलें

फाड़ते आकाश

यहाँ मुहावरों के प्रयोग से मानवीकरण में मदद मिली है। प्रकृति एवं मनुष्य दोनो के सन्दर्भ से जुडकर येमुहावरे भाषाभिव्यक्ति को द्विगुणित कर देते है। कुछ मुहावरों में थोडा–सा हेर–फेर करके कवि ने नये मुहावरेगढ़ लिए है, जैसे –सपना टूटने से सपन झरना, लीक पीटना से लीक पोंछना, याद ताजी होना से याद हरी होना, कडवे घूंट पीना से कडवे पानी पीना और विष–बीज बोना से 'विष–वपन' करना इत्यादि। मुहावरों का जन्म प्रायः लाक्षणिक प्रयोगों से होता है। इसलिए अज्ञेय विशेष भावाभिव्यक्ति के लिए नये मुहावरे की तलाश में सफल हुए हैं।

19.4 सारांश

अज्ञेय के काव्य में भाषा उनके भावो के अनुरूप सहज और सार्थक शब्दों से युक्त रही है। भाव के साथ–साथ शिल्प गत नवीन प्रयोग और परिवर्तन का सशक्त माध्यम अज्ञेय की भाषा है।

भाषा के जिस रूप का अज्ञेय ने वरण किया है उसमें तत्सम शब्दों की बहुलता तथा भाषा का आभिजात्य व्यवहार भले ही दिखाई पडता हो वे बोलचाल की शब्दावली से युक्त सहज भाषा की तलाश करते प्रतीत होते है। इसका प्रमाण यह है कि तत्सम शब्दों के अतिरिक्त उनकी भाषा में अनेक देशज, अरबी, फारसी, अंग्रेजी के हल्के–फुल्के व्यंजक शब्दों के प्रयोग देखे जा सकते है।

19.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भाषा के सम्बन्ध में अज्ञेय के विचारों उल्लेख कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. अज्ञेय ने भाषा को नया अर्थ और स्वरूप किस प्रकार प्रदान किया।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3. अज्ञेय के काव्य में भाषा के विविध रूपों का वर्णन कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4. टिप्पणी लिखिए :

   1. नयी कविता और अज्ञेय की भाषा

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. अज्ञेय की कविता में तद्भव शब्द प्रयोग

_____

_____

_____

_____

_____

_____

19.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रो. रामस्वरूप चतुवेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
2. डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल – हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद, ऋषभचरन जैन व संतति प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हरिचरण शर्मा, नये प्रतिनिधि कवि, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
4. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, – अज्ञेय की कविता एवं मूल्यांकन विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
5. रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद, निराला, अज्ञेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
7. रमेश ऋषिकल्प– अज्ञेय की कविता : परम्परा व प्रयोग, अभिरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली
8. नन्द किशोर आचार्य – अज्ञेय की काव्य तितिर्षा, सूर्य प्रकाशन, बीकानेर
9. नामवर सिंह – कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. डॉ. केदारनाथ सिंह – आधुनिक हिनदी कविता में बिम्ब विधान, दिल्ली 1971
11. अज्ञेय–आत्मनेपद
12. अज्ञेय–भवन्ती

.....

प्रयोगवाद और अज्ञेय

इकाई की रुपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 प्रयोगवादी काव्य की सीमा रेखा, स्वरूप और विकास

20.3 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि

20.4 प्रयोगवाद काव्य की विशेषताएँ

20.4.1 व्यष्टिगत अहं और समष्टि का द्वन्द्व

20.4.2 आस्था अनास्था का स्वर

20.4.3 बौद्धिकता का स्वर

20.4.4 अनिश्चय, निराशा, कुण्ठा की अभिव्यक्ति एवं नग्न यथार्थ

20.4.5 काल–बोध

20.4.6 सत्य की तलाश

20.4.7 क्षण का महत्व

20.4.8 प्रेम और प्रकृति निरूपण

20.5 कवि अज्ञेय और प्रयोगवाद

20.6 सारांश

20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

20.8 संदर्भ ग्रन्थ

20.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- प्रयोगवाद के उदय की पृष्ठभूमि जान सकेंगे।
- प्रयोगवाद का स्वरूप व विकास समझ सकेंगे।
- प्रयोगवाद की विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्रयोगवादी काव्यधारा में अज्ञेय के संवेदना एवं शिल्पगत योगदान का मूल्यांकन कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

प्रयोगवादी काव्य धारा तत्कालीन परिस्थितियों की ही उपज रही। साहित्याकाश के आधुनिक कालीन काव्य के क्षेत्र में छायावाद के बाद प्रगतिवाद और प्रगतिवाद के पश्चात् प्रयोगवादी काव्य धारा रूपी नक्षत्र का अवतरण हुआ। छायावादी युग में काव्य एक आदर्श मनोमय लोक में बन्दी हो गया था। प्रेम की स्थूल, मांसल तथा ऐन्द्रिक अभिव्यक्ति, निराशावाद, क्षय की आत्मस्वीकृति, मृत्युपासना, नियतिवाद, जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति विश्वास, भोगवाद, पलायन, ईश्वर तथा धर्म के प्रति अनास्था और विद्रोह आदि में सिमटकर रह गई। प्रगतिवाद मानव मूल्यों के स्थानपर वर्ग मूल्यों की चर्चा में व्यस्त हो गया। विषय वस्तु को इतना एकांगी और सीमित बना देने के फलस्वरूप प्रगतिवादी साहित्य जीवन की मूलधारा से ही विच्छिन्न हो गया और उसकी अपनी ही भूमि से प्रयोगवादी कविता के अंकुर फूट आये। यथार्थ को प्रयोगवाद ने भी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया पर उसने दृष्टि को विस्तार दिया और काव्य को संकुचित विषयवस्तु के घेरे से बाहर कर दिया।

20.2 प्रयोगवादी काव्य की सीमा रेखा, स्वरूप और विकास

तिथि क्रम की दृष्टि से 40 ई0 के आस–पास प्रयोगवाद का आरंभ हुआ माना जाता है। डॉ0 नामवरसिंह सन् 40 के आस पास प्रयोगवाद का प्रारम्भ मानते हैं। यथा, "तय है प्रयोगवाद नाम जब से चला उससे पहले उस तरह की कविता पैदा हो चुकी थी, यानी सन् 43 ई0 से पहले। प्रयोगवाद की चर्चा तार सप्तक के प्रकाशनकाल सन् 1943 से हिन्दी समीक्षा में प्रारम्भ हुई और प्रतीक मासिक पत्रिका तथा दूसरा सप्तक (सन् 1951) तथा तीसरा सप्तक (सन् 1959) तक बराबर होती रही है। पटना से निकलने वाले 'दृष्टिकोण' और 'पाटल' नामक पत्रों में प्रयोगवाद से सम्बन्धित निबंधों आदि का प्रकाशन भी पर्याप्त मात्रा में हुआ था। इस प्रकार सप्तकों के प्रकाशन ने प्रयोगवादी काव्य को पुष्ट स्वरूप प्रदान किया। तार सप्तक की भूमिका में और कतिपय कवियों के वक्तव्यों में प्रयोग शब्द का उल्लेख होने के कारण समालोचकों ने इन कवियों को 'प्रयोगवादी' और इनके काव्य को प्रयोगवादी काव्य की संज्ञा प्रदान की। दूसरे सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने प्रयोगवाद संज्ञा का विरोध किया और प्रयोगशील संज्ञा को उपयुक्त सिद्ध करने का प्रयास किया। पर अन्ततः प्रयोगवादी काव्य ही इस काव्य के लिए रूढ़ शब्द हो गया। प्रयोगशील कविता का समर्थन करने के कारण बिहार में अपने को विशुद्ध प्रयोगवादी मानते हुये एक नये आन्दोलन को जन्म देने का प्रयत्न किया गया जो नकेनवाद या प्रपद्यवाद के नाम से स्थापित हुआ। वस्तुतः सन् 1940 से लगातार 1960 तक प्रयोगवादी काव्य

की सीमा है। इसी बीच सन् 1955 से नई कविता से हिन्दी में एक नयी धारा का प्रारंभ हुआ जो वस्तुतः प्रयोगवाद का दूसरा चरण है।

20.3 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि

20.3.1 प्रयोगवाद के आगमन में भारतीय परिवेश में जो राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियाँ थी और उनसे उत्पन्न हताश जन मानस में जो असंगतियाँ उत्पन्न हो रही थी वह साहित्यकारों को नवीन दृष्टिकोण से सोचने के लिए विवश कर रही थी। हिन्दी कविता आकाश में छायावाद के बाद प्रगतिवाद और प्रगतिवाद के बाद 'प्रयोगवाद' काव्य आन्दोलन रूपी नक्षत्र फैल गया यदि हम हिन्दी साहित्य के काव्य का अवलोकन करते हैं तो सन् 1939 से लगातार 1949 तक के बीच के काव्य में एक नवीन मोड़ आता हुआ दिखलाई देता है। यह समय द्वितीय विश्व–युद्ध की समाप्ति के तुरन्त बाद का है। द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप उत्पन्न आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विषमता के कारण पुरानी मान्यतायें और आदर्श एक बारगी ही चरमरा गये थे। मानव जीवन के मूल्य और नैतिकता के मानदण्ड धराशायी हो गये थे। भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् स्थिति बद से बदतर होती गई। स्वातन्त्रयोत्तर भारत में सामान्य जनमानस ने जो जो स्वप्न संजोये थे वे प्रतिफलित नहीं हुये उसके स्थान पर अनिश्चितता, क्लान्ति, ग्लानि और अलसता ही फैलती गई जिसके कारण वातावरण और भी विषम हो उठा। एक प्रकार का जड़ वातावरण, अवरूद्ध मार्ग, भूख, बेकारी और अनैतिकता के अखण्ड साम्राज्य ने कवियों और कलाकारों को विद्रोह करने के लिए विवश कर दिया । यह विद्रेह इस वातावरण की तीव्र प्रतिक्रिया स्वरूप ही पैदा हुआ था। इसी प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति ''उपहास, तीखापन, निरीहता, मानसिक मोतियाबन्द, क्रोध, घृणा, आत्मपीड़न, आत्मग्लानि, पीड़ा, झुंझलाहट, अहंभाव, महत्वाकांक्षा, आत्मविश्वास, दिवास्वप्न, उच्छंखृलता आदि विभिन्न रूपों में हुई। जीवन की ऐसी परिस्थिति ने जिस काव्य के क्षेत्र में जिस संज्ञा को जन्म दिया वह प्रयोगवाद हैं।''

20.4 प्रयोगवादी काव्य की विशेषताएँ

20.4.1 व्यष्टिगत अहं और समष्टि का द्वन्द्व

प्रयोगवादी काव्य में प्रयोग के आग्रह के साथ–साथ व्यक्तिवादी दृष्टि का प्रभाव अधिकाधिक है। यह दृष्टि अहं की अभिव्यक्ति और अन्तर्मुखी वृत्ति का विकास करती है। तार सप्तक की रचनाओं को देखा जाय तो उन पर व्यक्तिगत मानसिक उलझनों तथा युग जीवन की अनिश्चिता और दुश्चिंताओं की छाया स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ती है। युगीन परिस्थितियों में मध्यवर्गीय बुद्धिवादी व्यक्ति के मन में जो अकेलेपन की घुटन, शंका, अनिश्चय, भय, कुण्ठा, आक्रोश, अनास्था, निराशा आदि प्रदान की है, उन सबकी अभिव्यक्ति प्रयोगवादी कवियों ने की है। इस वैयक्तिकता के सूत्र तार सप्तक के वक्तव्यों में भी मिलते हैं। मुक्तिबोध, भारत–भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, अज्ञेय, नैमिचन्द्र जैन आदि सभी के काव्य में यह वृद्धि कमोवेश दिखाई देती है।

अज्ञेय की दृष्टि में व्यक्ति का महत्व ही प्रमुख है। अज्ञेय ने काव्य रचना के लिए व्यापक और विविध विषयों को ग्रहण किया है पर उनकी अभिव्यक्ति पर उनकी वैयक्तिकता का प्रभाव है। इसी व्यक्तिवादिता के कारण ही अज्ञेय अन्तर्मुखी आत्म–पलायनवादी भी बन गए हैं। वस्तुतः उनकी प्रमुख समस्या है–''जो व्यक्ति की अनुभूति है, उसे समष्टि

तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुँचाया जाये–यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है। इस समस्या के समाधान में अज्ञेय अपने काव्य में समाज में व्यक्ति का अस्तित्व, व्यक्ति का योगदान, समाज के प्रति व्यक्ति की प्रतिबद्धता व सामाजिक आधार को तलाशते है। व्यक्ति सत्ता को प्रतिष्ठित करने का प्रयास प्रयोगवादी काव्य मेंवैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर हुआ है। अज्ञेय की 'नदी के द्वीप है' रचना और भारतभूषण की कृति 'हम नही है द्वीप' समानान्तर रचनाएँ है। भारती और अज्ञेय की रचनाओं में मानव–मर्यादा की रक्षा और व्यक्ति स्वातन्त्र्य के निमित अहम् की प्रस्थापना दिखलायी पड़ती है। प्रयोगवाद व्यक्ति की प्रतिष्ठा करता है। पर इसका यह तात्पर्य नही है कि वह समाज विरोधिनी दृष्टि रखता है अथवा समाज के नकार में विश्वास करता है। स्वयं अज्ञेय की 'मैं वहाँ हूँ और शेखर एक भैया जैसी रचनाएं भी यही प्रमाणित करती है। इसी सन्दर्भ में अन्य कवियों की रचनाओं के भी पर्याप्त उदाहरण दिये जा सकते हैं। डॉ0 हरिचरण शर्मा ने प्रयोगवादी काव्य में सामाजिक सन्दर्भ की अभिव्यक्ति तीन रूपों में मानी है–

1. समाज की खोखली स्थिति के चित्रण में ।
2. सामाजिक दायित्व के रूप में और
3. समाज कल्याण के प्रेरक तत्वों के रूप में।

इन तीनों रूपों में सामाजिक सन्दर्भ प्रयोगवादी काव्य में भी प्राप्त होते हैं। यह सत्य है कि समाज के प्रति ये सन्दर्भ कही व्यंग्यात्मक है, कहीं वैचारिक और कहीं भावात्मक।

20.4.2 आस्था अनास्था का स्वर

प्रयोगवादी कवि के मन में दर्द, कुण्ठा, हताशा व घुटन है संशय है, किन्तु इस सबके साथ साथ आस्था का स्वर, आत्मभिमान उनमें विद्यमान है। संकल्प–विकल्प, आस्था–अनास्था का द्वन्द्व वस्तुतः युगीन परिस्थितियों का ही परिणाम रहा है। प्रयोगवादी कविता में जीवन के प्रति, लघुमानव के प्रति, व्यक्तित्व के प्रति आस्था के स्वर सुनाई देते हैं। धर्मवीर भारती सात गीत वर्ष में लिखते है।

रात
पर मैं जी रहा हूँ निडर
जैसे कमल
जैसे पन्थ
जैसे सूर्य
क्योंकि कल भी हम खिलेंगे
हम चलेंगे
हम उगेंगे
और
वे सब साथ होंगे
आज जिनको रात ने भटका दिया है।

अपनी लघुता के प्रति मानव का विश्वास अडिग है अज्ञेय लिखते हैं–

यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी कांपा,
वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा,
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुधुआते कड़वे तम में
यह सदा द्रवित, चिरजागरूक, अनुरक्त नेत्र
उल्लम्ब बाहु–यह चिर अखण्ड अपना पा।

इसी तरह धर्मवीर भारती की भी लघु मानव में आस्था है क्योंकि वे जानते हैं, ''अथाह शून्य में बौनो ने तीन पगों में धरती को नाप लिया''। इसलिए 'टूटा पहिया' होते हुये भी उसकी लघुत्व में उन्हें असीम आस्था है।

20.4.3 बौद्धिकता का स्वर

विज्ञान विश्लेषण की प्रवृत्ति प्रदान करता है और प्रयोगवादी काव्य में वैज्ञानिक चेतना के प्रभाव से यही विश्लेषण प्रवृत्ति बराबर दिखाई देती है। हिन्दी काव्य में बौद्धिकता का प्रवेश इस युग में अनिवार्य भी था। अज्ञेय, गजानन माध व मुक्तिबोध, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि की रचनाओं में विश्लेषण का रूप यथार्थमूलक तथा तार्किक है। प्रयोगवादी काव्य में बौद्धिक चेतना का सामंजस्य संतुलित और असंतुलित दोनों रूपों में दिखाई देता है। आज का कवि आंख मींचकर किसी बात को स्वीकार ही नहीं कर सकता है। विश्लेषण और तर्क की कसौटी पर कसना उसका सहज स्वभाव हो गया है। इस कारण कवि ने धर्म, नैतिकता, जीवन, मृत्यु, समाज, परम्परा आदि पर संशय की दृष्टि रखी हैं। कुंवरनारायण अपनी कविता में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की चर्चा करते हैं और बौद्धिक स्वतन्त्रता पर विशेष बल देते हैं।

20.4.4 अनिश्चय, निराशा, कुण्ठा की अभिव्यक्ति एवं नग्न यथार्थ

यह सत्य है कि उलझन, निराशा और घुटन आदि वृत्तियाँ उस युग की परिस्थितियों की उपज हैं जिन्हें प्रयोगवादी कवियों ने ईमानदार और यथार्थ अभिव्यक्ति दी हैं। भारती, मुक्तिबोध तथा अन्य कवियों मे निराशा और घुटन की अभिव्यक्ति हुई है। विशेष रूप में मुक्ति बोध की रचना 'मुझे पुकारती हुई पुकार खो गई' में वास्तविकता के आघात से टूटे हुये कवि के मन की जो निराशा पूर्ण अभिव्यक्ति हुई हैं। यह निराशा भारत भूषण अग्रवाल में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है–

''आज है अचरज यही अत्यन्त
उस महा आरम्भ का हो क्षुद्र ऐसा अन्त
दूर है मंजिल अभी मेरी बड़ी ही दूर
किन्तु मैं तो बीच में ही आज थककर चूर
गिर पड़ा हूं राह पर।

प्रयोगवादी कविता में अनिश्चय की हैरानी भी है और यह अनिश्चय क्यों है इसका भी पता नहीं क्या अभिव्यक्तीकरण हुआ है।

'यह' नहीं हैं

वह नहीं है

अनिश्चय से हम बड़े हैरान हैं।

नेमिचन्द्र जैन तो बहुत ही स्पष्ट रूप से कहते हैं–

''शंका की नागिन बैठी है कुंडली मार।

फुफकार रही है अपना विषधर फन पसार।

वन्दिनी इड़ा है देख रही संत्रस्त विवश

उठाती है किस आदम की तीखी सी गुहार।

प्रयोगवादी काव्य में अनिश्चय, कुण्ठा, हताशा आदि मनोवृत्तियों का चित्रण काव्य का अन्तिम लक्ष्य नहीं है, अपितु इनके चित्रण से वह संघर्ष करने की अपनी चेतना को निरन्तर जाग्रत रखना चाहता है। जब तक इन कुण्ठाओं व निराशाओं से मुक्ति का रास्ता नहीं मिल जाता प्रयोगवादी कवि शान्त तो बैठा नहीं रह सकता। वह जानता है

घिर गया है समय का रथ कहीं

कालिमा से मढ़ गया है राग

भावना की तुंग लहरें

पन्थ अपना अन्त अपना जान

रोकती हैं मुक्ति के उदगार।

अज्ञेय और तारसप्तक के अन्य कवि फ्रायड और डी. एच. लॉरेन्स से प्रभावित रहे हैं। प्रयोगवादी काव्य में प्रकृति वादियों, अस्तित्ववादियों व मनोविश्लेषणवादियों का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण नग्न यथार्थ बोध यौन बिम्बों के रूप में उपस्थित होता है। अज्ञेय की सावनमेघ रचना भारती की ठंडा लोहा आदि रचनाओं में इस तरह के बिम्ब चित्रित हैं। वस्तुतः यह चित्रण मानव–विकार के शमन का माध्यम भी है।

20.4.5 काल–बोध

प्रयोगवादी कविता में वर्तमान युग में विसंगतियों एवं अनिश्चयता के परिणाम स्वरूप और अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाववश काल–बोध की अभिव्यक्ति हुई है। यह जरूरी है कि मृत्युबोध निराशा को ही उत्पन्न करे। मृत्यु सदैव हेय ही नहीं होती है, बल्कि वह जागरूक चेतना भी है, जीवन का नया विकास भी है। कुंवरनारायण की 'आत्मजयी, भारती का 'अंधा युग', नरेश मेहता के 'संशय की एक रात' में मृत्युबोध व्याप्त हैं।

विजयदेव नारायण साही मृत्यु के भीतर से बहुत कुछ निर्मित होता हुआ देखते हैं–

तब तुम भी नहीं थे
सिर्फ वे शब्द थे
जो मुझे तराशते चले जा रहे थे
और तब तुम्हें नहीं, खुद को भी नहीं
उस तीसरे को देख रहा था
जो अकसर मेरी मृत्यु के भीतर से
अनायास उद्‌भूत होने लगता है।

काल बोध अज्ञेय के लिए भय का कारण नहीं बनता क्योंकि भारत की सम्पूर्ण चिन्तन परम्परा में मृत्यु भय का कारण नहीं है। इसीलिए अज्ञेय कहते हैं–

क्यों डरूं मैं मृत्यु से या क्षुद्रता के शाप से भी ?
क्यों डरूं मैं क्षीण–पुण्या अवनि के सन्ताप से भी ?
व्यर्थ जिस को मापने में हैं विधाता की भुजाएं –
वह पुरूष मैं, मर्त्य हूं पर अमरता के मान में हूं।

20.4.6 सत्य की तलाश

प्रयोगवादी कवियों ने बार–बार व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य बनाने की चर्चा की है और इसीलिए नई राहों का अन्वेषण और अभेद्य क्षेत्रों की ओर जाने का प्रयत्न भी है। प्रयोगवादी काव्य में अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त करने पर बल दिया गया है। प्रयोगवादी चिन्तक की यह समस्या भी है कि सत्य का अभिव्यक्तिकरण इस रूप में भी हो कि वह प्रेषणीय हो सके। विज्ञान की परिभाषा में सतत प्रयोग करते हुये सत्य की उपलब्धि होती है। अज्ञेय औरमुक्तिबोध दोनों ही सत्य को प्राप्त करने का माध्यम प्रयोग को मानते हैं। अनुभूत सत्य की बात श्री प्रयोगनारायण त्रिपठी इस प्रकार लिखते हैं–"वह आज के जीवन–चिन्तन, द्वन्द्व–सभी में जीता है, सभी को भोगता है, सभी से प्रतिकृतहोता है: कुछ से शरीर द्वारा, कुछ से संवेदित व्यक्तित्व द्वारा। इसी से आज के जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति ही आज के कवि की प्रधान और सच्ची अभिव्यक्ति है। कवि तो मानों वह पनडुब्बा है जो वर्तमान के अकूल सागर में डूबकर, तलमें स्थित सीपी का मुंह चीर कर मोती निकाल ले आता है और आपको सौंप देता है।

20.4.7 क्षण का महत्व

प्रयोगवाद ने भी रिक्त एवं शून्य मनुष्य के, आत्म तृप्ति के लिए आवेशपूर्ण, क्षणों के उपयोग की स्थापना से क्षणवाद के महत्व को स्वीकार किया है। डॉ0 रमाशंकर तिवारी ने प्रयोगवाद में क्षण के महत्व का स्वरूप निरूपण इस प्रकार किया है–

1. क्षणों का ही मूल महत्व हैं। काल का प्रवाह केवल क्षणों का योगफल है। क्षण ही वास्तविक है और क्षण सनातन है।

2. क्षण में जीना तथा क्षण को स्वीकार कर लेना ही जीवन है।

3. भविष्य का अस्तित्व है ही नहीं। क्षणों की धारा मे आगे बढ़ते चले जाने से वर्तमान बनता है और यह वर्तमान ही सब कुछ है।

4. क्षण की उतेजना में तृप्ति लाभ करके मनुष्य 'फुलफिल्ड' हो जाता है, आत्मोपलब्धि कर लेता है।

5. मनुष्य स्वयं निश्चल एवं झील अथवा ताल के समान है। क्षण की उतेजना में वह आन्दोलित हो उठता है और क्षण की परितृप्ति के बाद वह पुनः उद्देश्य विहीन निश्चल पोखर बन जाता है।

20.4.8 प्रेम और प्रकृति निरूपण

प्रयोगवादी काव्य में प्रेम एकान्तिक है और नर नारी प्रेम की ही ओर उसका अधिक संकेत है। प्रयोगवादी काव्य ने वासना के दमन को अस्वीकार कर, दमन को उदान्त के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया और स्त्री तथा पुरूष दोनों को समान माना और प्रेम की स्वतंत्रता की स्थापना की। प्रेम की चेतना का पर्यवसान अंह के विसर्जन में है। सर्वेश्वर सक्सेना में यह अधिक स्पष्ट है–

अंह से मेरे बड़ी हो तुम!
क्योंकि मेरी शक्तियों की
हर पराजय–जीत की
अन्तिम कड़ी हो तुम।

श्री गिरिजाकुमार माथुर ने इस प्रेम को अधिक व्यापक रूप प्रदान करने की चेष्टा की है। वे नर–नारी प्रेम को अन्ततोगत्वा मानवता के प्रेम की और उन्मुख कर देना चाहते हैं, इस प्यार को आदमी की शक्ति का आधार कहते हैं–

फिर कटीली दृष्टि रंजित प्यार दो
आदमी की शक्ति का आधार दो
प्यार तुमसे हो जगत से प्यार हो
प्रेरणा यह रंग मय संसार हो।

प्रेम को अमरत्व प्रदान दर्द करता है क्योंकि दर्द में ही दृढ़ता और चिरन्तनता है। प्रयोगवादी काव्य में प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण हुआ हैं। केदारनाथ सिंह ने इस वियोग में मार्मिकता और विवशता को सुन्दरता से पिरो दिया है–

रात पिया पिछवारे पहरू ठनका किया!

कँप कँप कर, जला किया !

बुझ बुझ कर यह जिया

मेरा अंग अंग जैसे

पछुए ने छू दिया

बड़ी रात गये कहीं पंडूक पिहका किया !

प्रयोगवादी कविता में स्वप्न अथवा फैन्टसी के माध्यम से भी प्रेम चित्रण हुआ है। विजयदेव नारायण साही की ''विष–कन्या'' के नाम में फैन्टसी का सुन्दर प्रयोग हुआ है जो संयोग–वियोग का चित्रण करती है। अज्ञेय ने बड़े सहज रूप से प्रेम के हर बार छले जाने वाले बोध पर इस प्रकार संकेत किया है–

सूरज ने खींच लकीर लाल

नभ का उर चीर दिया।

पुरूष उठा, पीछे न देखकर चला गया

यों नारी का, जो रजनी है, धरती है,

बधुका है, माता है,

प्यार हर बार छला गया।

प्रयोगवादी काव्य में प्रेम न तो अनिवर्चनीय है, न वायवीय, वह मानसिक शारीरिक दोनों है यह प्रेम 'कुछ औ को कुछ और' कर देने वाला है। प्रयोगवादी कविता में प्रेम व्यंजना की अभिव्यक्ति भिन्न–भिन्न रूपों से हुई है। प्रकृति प्रेम मरा नहीं है वरन नवीन रूप में अभिव्यक्त हुआ है। डॉ पवन कुमार मिश्रा लिखते हैं–

प्रयोगवादी कवि ने प्रकृति चित्रण को छायावादी मनोभूमि से अलग हटकर यथार्थ की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। उसने प्रकृति को सामाजिक परिवेश और नवीन सन्दर्भों के बीच देखा है। इस कारण प्रकृति में भी उसने अपनी वैयक्तिक झुँझलाहट, ऊब और कटुता का या सामाजिक संघर्ष के बिम्ब को भी प्रकृति में देखा है अथवा अपनी भावानाओं से उसे राग–रंजित कर प्रस्तुत किया है। प्रकृति के निरपेक्ष और स्वतंत्र सौंदर्य का वर्णन उसने प्रायः नहीं किया है। पर फिर भी कवि ने अपनी आंखों से प्रभात, दोपहर, संध्या, रात्रि, चांदनी–तारे, मेघ तथा विभिन्न ऋतुओं आदि को देखा है और कहीं कहीं प्रकृति के मोहक चित्र भी प्रस्तुत किये हैं।

भवानीप्रसाद मिश्र की कुछ कविताओं में प्रकृति का सहज और विराट रूप अंकित हुआ है। उनकी रचना 'सतपुड़ा के जंगल' में प्रकृति का सजीव रूप अपनी मोहकता और विराटता के साथ चित्रित हुआ है–

क्षितिज तक फैला हुआ सा

मृत्यु तक मैला हुआ सा
क्षुब्ध काली लहर वाला,
मथित उत्थित जहर वाला,
मेरू वाला, शेष वाला
शंभु और सुरेश वाला
एक सागर जानते हो !
उसे कैसा मानते हो !
ठीक वैसे घने जंगल,
नींद में डूबे हुए–से
ऊँघते अनमने जंगल।

प्रयोगवादी काव्य में कवि ने प्रकृति का पारम्परिक और नवीन दोनों रूपों में चित्रण किया है। नवीन बौद्धिक आवेश के कारण उसका प्रकृति–प्रतीकों में सर्वत्र नवीनता दृष्टिगोचर होती है। इन प्रतीकों में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता और सत्यान्वेषण की प्रवृति अधिक है।

20.5 कवि अज्ञेय और प्रयोगवाद

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक नई कविता के प्रणेता पुरूष माने जाते हैं। अज्ञेय की प्रारम्भिक रचनाओं की भावभूमि व शिल्प पर छायावाद व प्रगतिवाद का प्रभाव दिखाई देता है। अज्ञेय के काव्य संकलन 'इत्यलम' जो 'भंग्नदूत' और 'चिंता' के बाद प्रकाशित हैं, में प्रयोगवादी रूप दिखाई देता है। 'इत्यलम' में ही सामाजिक परिवेश के प्रति विक्षुब्धत, अहं की अभिव्यक्ति, यौन भावना, दीनता और लघुता का प्रदर्शन, आभिजात्य वर्ग के प्रति विद्रोह, अस्तित्व बोध, पीड़ा, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद आदि की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। इत्यलम काव्य–संग्रह में मिट्टी की ईहा' खण्ड में बौद्धिकता, दुरूहता तथा अस्पष्टता तो है ही, पर साथ ही लोक–गीतों की लय पर लिखे भावप्रवण गीत भी प्राप्त होते हैं। वस्तुतः 'इत्यलम' की रचनाओं से ही अज्ञेय का प्रयोगवादी रूप प्रारंभ होता। अंह की अभिव्यक्ति, कुंठा और निराशा के स्वर तथा अनिश्चय की भावना 'हरी घास पर क्षण भर' की रचनाओं में प्रखर रूप अभिव्यक्ति पा सकी हैं 'हरी घास पर क्षण भर' में स्वप्न प्रतीक, यौन प्रतीक व अनेक संकेत गर्मी प्रतीकों की बहुलता है। छंदो के नवीन प्रयोग भी अज्ञेय ने किये हैं। इसी संकलन में कवि आत्मान्वेषण की ओर भी झुकता हुआ दिखलाई देता है। 'कितनी शांति', 'प्रणति', 'तुम्ही हो क्या बन्धु वह', दीप ये अगणित', 'आत्मा बोली' और 'नदी के द्वीप' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 'बावरा अहेरी' (1954) में संकलित रचनाओं में अज्ञेय यहां तक आकर अपने अंह को सामाजिकता में लीन कर देने को उत्सुक दिखाई देते हैं। इनके आगामी काव्य संकलन 'इन्द्र धनुष रोंदे हुये ये' 1957 'अरी ओ करूणा प्रभामय' 1959, 'आंगन के पार द्वार 1961', 'कितनी नावों में कितनी बार' और सागर मुद्रा में कवि का यही रूप प्रखर से प्रखरतर होता

दिखलाई पड़ता है। सत्य तो बहुत मिले', 'मैं तुम्हारा प्रति भू हूं' और 'यही एक अमरत्व' आदि कविताओं में अज्ञेय का विशिष्ट आत्म–निवदेन है। कवि सत्य उसी को मानता है जो सत और आंसुओं के साथ अपनी अनुभूति में पलाहैं। यद्यपि उनकी अनेक रचनाएं पराजयवादी, क्षणवादी, नियतिवादी और अंहवादी है, किन्तु उत्तरोत्तर उनमें आस्था और अंह के विसर्जन के भाव दृढ़ होते गये हैं। प्रयोगवादी काव्य ने सौंदर्य के उस पक्ष को अधिक सहानुभूति प्रदान की है जो साधारण है, विरूप है अथवा भदेस है। इस सौन्दर्य चित्रण के लिए उसने नये प्रतीकों की खोज की है। चांदनी को चन्द्रमा सदृश न मानकर उसने उसे रूपये के समान माना है, जिसमें चमक है, पर खनक गायब है। उसने मुंह को अजायबघर माना है 'जहां पर बेतुके, अनमोल, जिन्दा और मुर्दा भाव' रहते है। नारी का रूप अंकित करने में कवि को अब पुराने उपमान बासी और मैले दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ :

अगर मैं तुमकों
ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता
या शरद के भोंर की नीहार–न्हायी कुंई
टटकी कली चम्पे की
वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गये है।
देवता इन प्रतीकों के कर गये है कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

प्रयोगवादी काव्य में प्रकृति सदैव कवि के साथ रही है। अज्ञेय ने भी प्रकृति का रूप देखा है ओर उसे अंकित किया है। आज का कवि अधिक जागरूक और बौद्धिक है। उसने प्रकृति में नये अन्वेषण किये है। उसने प्रकृति के अंचल में केवल कोयल और पपीहे को ही नहीं देखा है वरन् कुररी, पिड़कुल और हारिल जैसे पक्षियों को भी देखा है।

अज्ञेय के काव्य में चिन्तन की प्रमुखता है और उनके द्वारा चित्रित प्रकृति का रूप भी इसी चिन्तन की दिशा को विस्तीर्ण करता है। उनका प्रकृति–चित्रण या तो प्रतीक रूप में हुआ है या बिम्ब रूप में। अज्ञेय ने यौन प्रतीकों का चयन प्रायः प्रकृति से किया है। 'खुलती आंख का सपना', 'जब पपीहे ने पुकारा' 'सागर के किनारे,' 'सो रहा है झोंप' तथा 'कलगी बाजरे की' आदि रचनाओं में सशक्त यौन प्रतीक है जो प्रकृति पर ही आधारित है।

अज्ञेय ने सामाजिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक प्रतीकों के लिए भी प्रकृति का सहारा लिया है। एक दार्शनिक प्रतीक देखिए–

झरना
झरता पत्ता
हरी डाल से
अटक गया।

प्रयोगवादी काव्य–धारा के सभी कवियों ने प्रकृति को भिन्न–भिन्न रूप में अंकित किया है। भवानीप्रसाद मिश्र की अनेक कविताओं में विध्य का सौंदर्य उभरा है। नरेश मेहता की 'मेघ पाहुन द्वार' शीर्षक रचना में 'मेघ पाहुन' 'पुरजनों के खेत पोखर जहां फैले को 'अमृत' करने वाले ठाकुर के रूप में द्वार पर आता है। अज्ञेय की एक अन्य प्रसिद्ध कविता 'नदी के द्वीप में द्वीप की प्रतीकात्मकता के अन्तर्गत उनकी वैयक्तिकता का रूप स्पष्ट रूप से सामने आता है, यहां नदी समाज का प्रतीक है और द्वीप व्यक्ति का यथा–

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़ कर स्त्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियां, अन्तरीप, उभार, मैकतकूल
सब गोलाइयां उसकी गढ़ी है।
माँ है वह ! है इसी से हम बने है।
किन्तु हम है द्वीप! हम धारा नही है
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप है स्त्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं है। क्योंकि बहना रेत होता हैं।

शब्द मे नया अर्थ देने, भाषा को नयी अर्थवत्ता प्रदान करने तथा अपने आपको अभिव्यक्त करने के लिए प्रयोगवादी काव्य मे शिल्प की दृष्टि से विविध प्रयोग हुए है। शिल्प के द्वारा कवि ने अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। अज्ञेय ने सत्य की खोज के लिए शिल्प सम्बन्धी प्रयोगों की बात जोरदार ढंग से स्वीकार ही नही की बल्कि नानाविध प्रयोग स्वयं भी कियें। अज्ञेय ही नहीं प्रयोगवादी कवियों ने शिल्प के क्षेत्र में नवीन प्रयोगों की एक शृंखला का सूत्रपात किया है। अलंकार बिम्बविधान, प्रतीकविधान, और भाषा तथा छन्द की दृष्टि से प्रयोगवादी काव्य विविधता बहुल है। नदी के द्वीप, सोन मछली आदि शीर्षक कविताओं में बिम्ब लेखक के भाव को बिम्ब के माध्यम से अंकित करते हैं। अज्ञेय काव्य मे उपमानों का चयन विविध क्षेत्र से किया गया है, जिनमें प्रकृति,

विज्ञान, धर्म, पुराण, कला और जीवन के विविध पक्ष प्रमुख हैं। प्रकृति का मनुष्य से सबसे पुरातन सम्बन्ध हैअतः काव्य में सबसे अधिक प्रयोग मानवीकरण प्रकृति का ही हुआ है। अज्ञेय ने स्वयं प्रकृति के विभिन्न उपकरणों के माध्यम से मानवीय व्यापारों की अभिव्यंजना की है। सागर का हाथ मारना, चंचल लहरों का झकझक कर किनारे आना, धूप का झगड़ैल होना आदि प्रकृति का मानवीकरण ही है। चांद, तारा, संध्या, रात आदि का मानवीकरण प्रयोगवादी कविता में अधिकांश रूप में हुआ है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है–

1. चांद चितेरा
   आंक रहा है शारद नभ में
   एक चीड़ का खाका।

2. पति सेवा रत सांझ
   उझकता देख पराया चांद
   लजा कर ओट हो गई।

प्रयोगवादी काव्य के अनुरूप अज्ञेय ने नवीन भावबोध को नवीन भाषा प्रदान की है। संस्कृत निष्ठ पदावली से लेकर बोल चाल तक की भाषा का प्रयोग कवि अज्ञेय काव्य में निर्बाध रूप से हुआ हैं। अज्ञेय ने संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, आदि से शब्द ग्रहण तो किये ही हैं पर इसके साथ ही उसने लोक भाषा के कितने ही शब्दों को विशुद्ध ग्राम्य अंचल में ग्रहण कर उनका विविध संदर्भों में प्रयोग किया है।

20.6 सारांश

काव्य की विषय वस्तु एक ओर मध्यवर्ग के मानव की यौन वर्जनाओं और दमित कुंठाओं को ग्रहण कर रही थी तो दूसरी ओर सामाजिक कटाव रिक्त यथार्थ को भी अपने भीतर समेट कर चलती थी। इसीलिए प्रयोगवादी काव्यों में जहां उसमें जीवन के परिवेश से उद्‌भुत आस्था अनास्था तथा आशा निराशा का मिला जुला चित्रण है वहीं आधुनिक जटिल भावबोध का व्यंग्य और विद्रूप तथा असंतुलित रोषमय चित्रण भी है। कवि की ईमानदारी और सत्य की खोज दो प्रमुख तत्व प्रयोगवादी धारा में सदैव चेतन रहे हैं। प्रयोगवादी धारा में प्रेम का चित्रण हुआ है परउसमें संयोग की अपेक्षा वियोग वेदना का स्थान अधिक है। प्रयोगवादी काव्य में व्यक्तिगत चेतना और सामाजिक चेतना का तीव्र संघर्ष है जिसका कारण यह है कि कवि जीवन के बदले हुये सन्दर्भ को पूरी सच्चाई से पकड़ना चाहता है और अंह की आंच को भी जगाये रखने का अभिलाषी है। प्रयोगवाद ने शिल्प के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किये हैं। इन नवेन प्रयोगों का महत्व इतना अधिक है प्रायः सामान्य समझ का अध्येता केवल शिल्प की नवीनता को ही प्रयोगवादी काव्य धारा का मूल मान लेता है। प्रयोगवादी कविता ने प्रारम्भ से ही शब्द में नया अर्थ भरने की चेष्टा की है। इस नवीनता के प्रवाह मे कहीं–कहीं प्रयोगवादी काव्य में चमत्कार की अधिकता अथवा अतिरेक भी दिखलाई पड़ता है। यद्यपि इस

काव्यधारा की अपनी विशिष्टताएँ व सीमाऐं दोनों रही हैं। प्रयोगवाद का वैचारिक और शैल्पिक पक्ष दोनोअज्ञेय के काव्य में सोदाहरण समझे जा सकते हैं। अज्ञेय ने नवीन भाव बोध को नवीन शब्दों में नई शैली से अभिव्यक्तिप्रदान की है।

20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रयोगवाद के स्वरूप और विकास को स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. प्रयोगवाद के उदय के कारणों का उल्लेख कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3. प्रयोगवादी काव्य के वैचारिक पक्ष का विश्लेषण कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4. प्रयोगवादी काव्य धारा में कवि अज्ञेय का स्थान निर्धारित कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

5. टिप्पणी लिखिए :

1. प्रयोगवादी काव्य में बौद्धिकता का स्वर

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. अज्ञेय की कविता में प्रकृति निरूपण

_____

_____

_____

_____

_____

_____

20.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रो. रामस्वरूप चतुवेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
2. डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल – हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद, ऋषभचरन जैन व संतति प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हरिचरण शर्मा, नये प्रतिनिधि कवि, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
4. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, – अज्ञेय की कविता एवं मूल्यांकन विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
5. रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद, निराला, अज्ञेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
7. रमेश ऋषिकल्प– अज्ञेय की कविता : परम्परा व प्रयोग, अभिरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली
8. नन्द किशोर आचार्य – अज्ञेय की काव्य तितिर्षा, सूर्य प्रकाशन, बीकानेर
9. नामवर सिंह – कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. डॉ. केदारनाथ सिंह – आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, दिल्ली 1971
11. अज्ञेय–आत्मनेपद
12. अज्ञेय–भवन्ती

.....

मुक्तिबोध की काव्यदृष्टि

21.0 रूपरेखा
21.1 उद्देश्य
21.2 प्रस्तावना
21.3 मुक्तिबोध की काव्यदृष्टि
21.4 सारांश
21.5 कठिन शब्द
21.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
21.7 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

21.1 उद्देश्यः

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप
–मुक्तिबोध प्रगतिशील कविता के प्रमुख कवियों में से एक हैं इससे अवगत होंगे।
–मुक्तिबोध की काव्यदृष्टि से अवगत हो सकेंगे।

21.2 प्रस्तावना

गजानन माधव मुक्तिबोध प्रगतिशील कविता के प्रमुख कवियों में से एक हैं। अन्य प्रगतिशील कवियों से आधारभूत वैचारिक समानता के बावजूद मुक्तिबोध का काव्य भिन्न और अपनी वैयक्तिक विशिष्टता लिए हुए है। जीवन, साहित्य और कला सम्बन्धी प्रश्नों पर मुक्तिबोध ने स्वतन्त्र रूप से चिंतन मनन कर विचार अभिव्यक्त किए हैं। मुक्तिबोध कवि कर्म को शुद्ध कवि कर्म नहीं मानते अपितु उसे गहरे सामाजिक सरोकारों से जोड़ कर देखते हैं। यह भी एक कारण रहा है कि काव्य सरोकारों की काव्य अभिव्यक्ति को सफल बनाने के लिए जिस काव्य पद्धति को उन्होंने चुना, उसकी दुरूहता को लेकर उनकी जीवन दृष्टि और काव्य दृष्टि के बारे में काफी विवादास्पद स्थिति पैदा होती रही। उन्हें विश्लेषण करने के क्रम में मार्क्सवादी, अस्तित्ववादी रहस्यवादी, भाववादी, पदार्थवादी आदि परस्पर विरोधी मान्यताओं से युक्त अंतर्विरोधों का कवि भी सिद्ध किया गया। किन्तु बाद में यह निर्विवाद रूप से स्थापित हो गया कि मुक्तिबोध एक प्रतिबद्ध और अपने समय से जूझते जागरुक कवि हैं।

21.3 मुक्तिबोध की काव्यदृष्टि

किसी भी कवि की काव्यदृष्टि जीवनानुभवों, जीवनानुभूतियों के घात–प्रतिघात से विकसित होती और रूपाकार ध ारण करती है। सामान्य परिवार के साथ एक सर्वसामान्य, अभावग्रस्त जिन्दगी बसर करते हुए मुक्तिबोधने अपने जीवन दर्शन का निर्माण किया था बावजूद इसके कि उन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव था और उसके प्रकाश में उन्होंने अपने जीवनानुभवों को संशोधित संपादित किया था, जीवन दर्शन के सम्बन्ध में उनकी स्पष्ट मान्यता रही है कि ''किसी न किसी रूप में हमारे पास व्यापक जीवन दर्शन आवश्यक है। इसमें अगर कुछ भी न हो तब भी वे बुनियादी बातें तो हैं, जिन्हें साधारण जन अपने हृदय में अनुभव करते हैं, जैसे अन्याय का प्रतिकार, मानव सभ्यता की स्थापना के प्रयत्न, विकृत स्वार्थवाद और भ्रष्टाचार का विरोध, समझौतापरस्ती के खिलाफ लड़ाई और साधारण भारतीय जनमत के प्रति भक्ति और अनुराग।''

इसी प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों में नयी कविता के व्यक्तिवादी दौर में भी कविता के बारे में उन्होंने एक विशिष्ट धारणा बना रखी थी। कविता को जीवन की अत्यन्त मानवीय सृष्टि मानते हुए मुक्तिबोध ने एक विशिष्ट कथन प्रणाली का विकास किया था। जीवन और कविता का अत्यन्त विशुद्ध और विस्तृत खुलासा उन्होंने अपनी ''चकमक की चिनगारियाँ'' शीर्षक कविता में किया।

''कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में
सभी प्रश्नोत्तरी की तुंग प्रतिमाएँ
गिराकर तोड़ देता हूँ हथौड़े से
कि वे सब प्रश्न कृत्रिम और
उतर और भी छलमय
समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव सुखी, सुन्दर व शोषण मुक्त
कब होंगे?''

अधूरी और सतही जिंदगी के गर्म रास्तों पर चलते हुए मुक्तिबोध ने आत्मसंघर्ष और आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से इस एक मूल समस्या का संधान किया है। सबकी शोषण से मुक्ति सबके लिए समान सुख–सुविधा के विधान की समस्या का संधान। समस्त मानव चिन्तन, धर्म, दर्शन, ज्ञान–विज्ञान इस एक समस्या से उलझा है और इसकी चुनौती को स्वीकार करते हुए अलग–अलग ढंग से इसके समाधान का मार्ग भी प्रस्तुत किया गया है लेकिन मुक्तिबोध ने एक मार्क्सवादी चिन्तन के रुप में इस समस्या को ''प्रशोषण सभ्यता की दृष्टता'' के समक्ष रखकर देखा है और एकमात्र समाधान वर्ग संघर्ष पर आधारित जन क्रान्ति में खोजा है।

जिन्दगी की कोख में जनमा नया इस्पात
दिल के खून में रंगकर

कला और साहित्य के क्षेत्र में व्यष्टिपरक और समष्टिपरक चिन्तन के दो धरातल हैं। जहाँ तक मुक्तिबोध के चिन्तन का प्रश्न है उन्होंने आजीवन अपने आपको व्यष्टि के साथ बन्धे रहने का प्रयत्न कभी नहीं किया। उनके अन्तर–बाह्य दोनों ही सदा सर्वदा व्यापक समष्टि के साथ जुड़े रहे हैं। इसी कारण उनके सृजन में, उनके काव्य जगत् में जो भी विचार एवं भाव अभिव्यंजित हो सके हैं वे चिन्तन के धरातल पर युग–युगों के पीड़ित और शोषित समष्टिगत मानवता के करुण क्रन्दन की ही देन अधिक है। कवि मुक्तिबोध को इसी कारण विचार मंथन एवं चिंतन की सघन घाटियों से गुजरना पड़ा, ताकि उनका काव्य मात्र आत्म–अभिव्यक्ति या व्यष्टि की अभिव्यक्ति न रहकर समष्टि की अभिव्यक्ति बन सके।

मुक्तिबोध के अनुसार कविता ''आवेगत्वरित'' (आवेशात्मक) होते हुए भी ''कालयात्री'' निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है। स्वंय कवि उसका कर्त्ता, पिता या पोषक नहीं होता। उसे कवि की मानस पुत्री भी नहीं माना जा सकता। वास्तव में अपनी स्वाधीन प्रकृति और ज्ञान सम्पन्नता के कारण कविता वर्तमान के साथ ही भविष्य के लिए प्रचुर संकेत लिए होती है। अपनी इस प्रकृति के कारण वह व्यक्ति चरित्री न होकर जन चरित्री होती है। इसलिए वह व्यक्ति की सम्पदा न होकर जन सम्पदा बन जाती है। नये अध्याय प्रकरण के रूप में उसमें कलाकार के नए अनुभव और संवेदना भी जुड़ते चलते हैं लेकिन (यह सब) सामान्यकृत होने के बाद, सबके बनने के बाद ही कविता के विषय बन पाते हैं और यदि ये संवेदन, अनुभव नितांत वैयक्तिक ही रह जाएँ, आवेशात्मक क्षण के घेरे में बंधे रहें तो कलाकृति का क्षेत्र अत्यंत संकुचित रह जाता है, व्यक्तिवादी रह जाता है। इसे मुक्तिबोध ने

''तुम्हारे कारणों से जगमगाती है
व मेरे कारणों से सकुचा जाती है।''

कह कर स्पष्ट किया है। मुक्तिबोध के यहाँ निर्वैयक्तिकता अज्ञेय की तरह पूर्ण तटस्थता की स्थिति न होकर परम तल्लीनता की स्थिति है–आत्मपक्ष से तटस्थता और परपक्ष से परम तल्लीनता की स्थिति।

मुक्तिबोध काव्य की सार्थकता, महत्व और प्रयोजन आदि सभी कुछ व्यावहारिक जीवन संदर्भों में ही स्वीकार करते हैं। मुक्तिबोध ने सिद्धांत और व्यवहार में समानता पर अधिक बल दिया है।

''ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया!!''

मुक्तिबोध ने ''एक साहित्यिक की डायरी'' में लिखा है–''हमें अपने को एक विद्यार्थी मानकर चलना चाहिए, कॉलेज या विश्वविद्यालय का नहीं, बल्कि प्राइमरी पाठशाला का, जिसके हाथ में स्लेट–पट्टी होनी चाहिए, जिस पर लगातार लिखना फिर मिटाना, फिर लिखना–यह प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहनी चाहिए। तभी हम अपने युग के वास्तविक सत्य को पकड़ पाएँगे।'' इस मान्यता को ध्यान में रखकर उन्होंने स्वीकार किया है कि परिवर्तनशील यथार्थ को व्यक्त करने वाली कविता कभी पूरी नहीं हो सकती क्योंकि वह जिस छोर पर जाकर समाप्त होती है यथार्थ उसके आगे बढ़ जाता है। इस दृष्टि से देखें तो मुक्तिबोध की अधिकांश कविताएँ अधूरी प्रतीत होती हैं। ''चकमक की चिंगारियाँ'' कविता का अन्तिम अंश कविता के स्वरूप, उसकी प्रकृति, उसकी स्वाधीनता, कवि और समाज से उसके संबंध आदि के साथ ही मुक्तिबोधकी काव्य दृष्टि को भी उद्‌घाटित करता है।

''नहीं होती, कहीं भी खतम कविता नहीं होती
कि वह आवेगत्वरित कालयात्री है
व मैं उसका नहीं कर्ता
पिता–धाता
कि वह कभी दुहिता नहीं होती
परम स्वाधीन है, वह विश्व शास्त्री है
गहन गम्भीर छाया आगामि की
लिए वह जन चारित्री है
नये अनुभव व संवेदन
नये अध्याय प्रकरण जुड़
तुम्हारे कारणों से जगमगाती है
व मेरे कारणों से सकुच जाती है.....

कला की पूर्ण स्वायत्तता की स्थापना के लिए हिन्दी के नए कवि–समीक्षकों ने कलात्मक अनुभूति और जीवनानुभूति के अलगाव या भिन्नता को प्रचारित–प्रसारित किया। मुक्तिबोध का मानना था कि इस विलगाव के पीछे कलाकार को अपने व्यक्तित्व से ही नहीं वरन् समाज से भी पूरी तरह काटने की एक गहरी साजिश है। इस संबंध में मुक्तिबोध की मान्यता है कि जिस प्रकार फूल वृक्ष की मूल प्राण शक्ति से कट–कर निर्जीव हो जाता है, ठीक उसी प्रकार कलाकार का व्यक्तित्व, जो कि सामाजिक है, उससे कटकर कविता निष्प्राण हो जाती है। अतः अपनी जीवन शक्ति के लिए, वैभव सम्पन्नता के लिए कला कवि जीवन सापेक्ष है, समाज सापेक्ष है। इस प्रकार मुक्तिबोध ने कला के प्रश्नों को जीवन के प्रश्नों के साथ जोड़ने का सफल प्रयास किया है।

मुक्तिबोध के चिन्तन की विशिष्टता का पता उनके विश्वदृष्टि से सम्बन्धित विचारों से चलता है। मुक्तिबोधकवि की भावदृष्टि को सर्वाधिक महत्व देते हैं, लेकिन उसकी सार्थकता के लिए उसका विश्वदृष्टि पर आधारित होना

आवश्यक बतलाते हैं। ''भावदृष्टि'' यह शब्द अपने आप में महत्वपूर्ण है। पहले के कवियों में जहाँ मात्र भाव को महत्व दिया गया, वहाँ वे चाहते हैं कि भाव हमारे भीतरी किसी दृष्टि का भी उन्मेष करे। वे ये तमाम बातें छठे दशक की हिन्दी कविता के संदर्भ में कर रहे थे। जिसे 'नई कविता' के नाम से जाना जाता है। उन्हें इस कविता के कवियों से शिकायत थी कि चूंकि उनके पास कोई केन्द्रिय दृष्टि नहीं इसलिए एक तो वे निराशा और अवसाद से घिरे रहते हैं और दूसरे उनकी कविताएँ केवल स्वतन्त्र संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। उनका आग्रह था कि नई कविता के कवि अपने भीतर अनुभवात्मक ज्ञान–व्यवस्था विकसित करे और उसी के आधार पर काव्य रचना में प्रवृत्त हो। मुक्तिबोध काव्य और जीवन के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं; लेकिन वे जीवन के यथावृत्त चित्रण को साहित्य मानने के पक्ष में नहीं। उनकी मान्यता है कि कलाकार साहित्य में अपनी विघायक कल्पना के द्वारा जीवन की पुनर्रचना करता है। यह पुनर्रचना ही, जो उस जीवन का प्रतिनिधित्व करती है, जो कलाकार या अन्य लोगों द्वारा इस संसार में जिया या भोगा जाता है, कलाकृति होती है। 'साहित्य में जीवन की पुनर्रचना' शीर्षक एक अधूरे लेख में आगे उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि पुनर्रचित जीवन वास्तविक जीवन से एक होते हुए भी स्वरूपतः भिन्न होता है। यह भिन्नता उसमें सामान्यीकरण और आत्मीकरण से सम्भव होती है। इसके साथ ही मुक्तिबोध ने नए कवि समीक्षकों की सौन्दर्यानुभूति और जीवनानुभूति की पृथकता की मान्यता पर भी पुनर्विचार किया है। दोनों के स्वरूप और प्रकृति में अन्तर मानते हुए भी सौन्दर्यानुभूति को जीवनानुभूति के ठोस आधार पर प्रतिष्ठित किया है। इस संबंध में 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' पुस्तक में उन्होंने विचार व्यक्त किए हैं ''सौन्दर्यानुभूति जीवनानुभवों के गुणात्मक रीति से परिवर्तित रूप का नाम है। इन दोनों का सार रूप एक ही है। फिर भी दोनों में महान भेद है''। इन दोनों के भेद को स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध ने सौन्दर्यानुभूति के दो लक्षण बताए हैं–

1. आत्मबद्धता दशा का परिहार और

2. आनन्दात्मक अनुभव

सामान्य अनुभव या वास्तविक जीवनानुभूति की विशेषता नहीं होती क्योंकि इसमें व्यक्ति अपने वैयक्तिक रागद्वेष से बंधा होता है, आत्मबद्धता की स्थिति में रहता है। अतः सौन्दर्यानुभूति की सबसे बड़ी विशेषता आत्मबद्धता की स्थिति से मुक्ति से है। मुक्तिबोध की यह स्पष्ट मान्यता रही है कि सौन्दर्यानुभूति का क्षण अनिवार्य रूप से रचना का क्षण भी हो' यह आवश्यक नहीं है। चलते–फिरते, उठते–बैठते, काम करते हुए किसी भी समय वह उपस्थित हो सकता है। जो सिर्फ कलाकार की ही बपौती नहीं है। वह किसी में भी, किसी भी समय उपस्थित हो सकता है। मुक्तिबोध को सौन्दर्यानुभूति के क्षण की अखंड सत्ता का खंडन इसलिए करना पड़ा क्योंकि उसके माध्यम से नए कवि समीक्षकों ने कविता को कवि के समग्र व्यक्तित्व से, उसके सामाजिक–राजनीतिक अनुभवों से काटकर अलग करने का प्रयास किया था। कवि–कलाकारों ने एक–एक कविता पर एक–एक चित्र पर, जो महीनों और वर्षों तक का समय लगाया है वह इस बात का प्रमाण है कि कला एक क्षणिक आवेग की अभिव्यक्ति मात्र नहीं होती। वह एक लम्बे मनन् चिंतन का परिणाम

होती है। उसमें कवि–कलाकार के वैयक्तिक से लेकर सामाजिक अनुभव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में समाए रहते हैं।

मुक्तिबोध ने काव्य की रचना प्रक्रिया पर 'एक साहित्यिक की डायरी', 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध', नये साहित्य का सौन्दर्य–शास्त्र' और कामायनीः एक पुनर्विचार' शीर्षक अपने चारों आरम्भिक ग्रन्थों में विस्तार से विचार किया है। इन्होंने काव्य के तीन क्षण स्वीकार किए हैं–'एक साहित्यिक की डायरी में' इन क्षणों की चर्चा करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है–''कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने दुखते कसकते मूलों से अलग हो जाना और एक फैंटेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैंटेसी अपनी आँखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण है इस फैंटेसी को शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और इस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था की गतिमानता। शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया में भीतर जो प्रवाह बहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह में वह फैंटेसी अनवरत रूप से विकसित परिवर्तित होती हुई आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार वह फैंटेसी अपने मूल रूप को बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण कर लेती है। अपनी रचना प्रक्रिया में उन्होंने आत्मसंघर्ष से साक्षात्कार और फिर जगत् साक्षात्कार की एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया को स्वीकार किया है। ''चकमक की चिनगारियाँ'' कविता में स्पष्टतः तीन स्तर या स्थितियाँः–

''अधूरी और सतही जिन्दगी के गर्म रास्तों पर
हमारे गुप्त मन
निज में सिकुड़ता जा रहा
जैसे कि हब्शी एक गहरा स्याह
गोरों की निगाहों से अलग ओझल
सिमटकर सिफर होना चाहता हो जल्द।''

कविता के माध्यम से आत्मालोचना को महत्व दिया गया है। इस आत्मालोचना की भयानक वेदना को कविता में प्रस्तुत किया गया है।

''हर पल चीखता हूँ शोर करता हूँ
कि वैसी चीखती कविता बनाने में लजाता हूँ

'संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना', मुक्तिबोध की एक प्रसिद्ध अवधारणा है, कविता में दोनों का सम्मिश्रण आवश्यक है। संवेदना का संबंध व्यक्ति से होता है, ज्ञान का समाज से, संवेदना का सम्बंध विशिष्ट से होता है, ज्ञान का सामान्य से, संवेदना का सम्बन्ध भक्ति से होता है, ज्ञान का द्रष्टा से। 'संवेदनात्मक ज्ञान' में ज्ञान में संवेदना समाई होती है और 'ज्ञानात्मक संवेदना' में संवेदना में ज्ञान। इन दोनों का जटिल सम्मिश्रण हमें मुक्तिबोध की सृजन प्रक्रिया में देखने को मिलता है।

ब्रह्मराक्षस का उदाहरणः–

''वे भाव संगत तर्क संगत
कार्य सामंजस्य योजित समीकरणों के गणित की सीढ़ियाँ
हम छोड़ दे उसके लिए।''

ब्रह्मराक्षस का एक और उदाहरणः–

मैं ब्रह्मराक्षस का सजल उर शिष्य
होना चाहता
जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य
उसकी वेदना का स्रोत
संगत पूर्ण निष्कर्षो तलक
पहुँचा सकूँ।

21.4 सारांश

मुक्तिबोध एक महत्वपूर्ण प्रगतिशील कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। आलोचनाओं के माध्यम से इन्होंने काव्य को एक नया दृष्टिकोण दिया जिससे हिन्दी काव्य जगत् में आने वाली अगली पीढ़ी के लिए इन्होंने एक नयी जमीन दी है। अपनी समीक्षाओं और कविताओं के माध्यम से उन्होंने जबरन दफनाए गए प्रगतिशील आन्दोलन को अच्छी तरह सहेज कर उसे नवजीवन प्रदान किया।

21.5 कठिन शब्द

1. दुरुहता
2. व्यष्टिपरक
3. समष्टिपरक
4. विलगाव
5. अनवरत
5. आवेगत्वरित

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. प्रगतिशील कवि मुक्तिबोध पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०3. मुक्तिबोध की काव्यदृष्टि पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2.7 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1. कविता के नये प्रतिमान–डॉ० नामवर सिंह
2. अलक्षित मुक्तिबोध–डॉ० मोती राम वर्मा
3. समकालीन कविता–अशोक कुमार
4. कविता जो साक्षी है–डॉ० ओम प्रकाश गुप्त

_____

मुक्तिबोध की काव्य कला

22.0 रूपरेखा
22.1 उद्देश्य
22.2 प्रस्तावना
22.3 तार सप्तक और मुक्तिबोध
22.3.1 'चाँद का मुंह टेढ़ा है'
22.3.2 'भूरी–भूरी खाक धूल'
22.4 मुक्तिबोध के काव्य का कला पक्ष
22.4.1 फैंटेसी
22.4.2 बिम्ब योजना
22.4.3 प्रतीक योजना
22.4.4 छन्द विधान
22.4.5 अलंकार विधान
22.5 सारांश
22.6 कठिन शब्द
22.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
22.8 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

22.1 उद्देश्यः

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

–मुक्तिबोध छायावादोत्तर काव्यधारा के महत्वपूर्ण कवि है इससे अवगत होंगे

–तारसप्तक में संकलित मुक्तिबोध के काव्य संग्रहों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

–मुक्तिबोध के काव्य के कला पक्ष के अंतर्गत फैंटेसी, बिम्ब योजना, प्रतीक योजना, छंद विधान अलंकार विधान से अवगत हो सकेंगे।

22.2 प्रस्तावना

गजानन माधव मुक्तिबोध छायावादोत्तर काव्यधारा के उल्लेखनीय कवि हैं। वह कवि होने के साथ–साथ जागरूक चिन्तक और सर्जक कलाकार हैं। जीवन संघर्ष की जैसी तथ्यात्मक प्रतीति मुक्तिबोध में हुई है वैसी अन्यत्र दुलर्भ है। मुक्तिबोध हिन्दी काव्य–क्षेत्र में प्रयोगशीलता एवं प्रगतिशीलता की समन्वित चेतना से मुक्त यथार्थोन्मुख अभिव्यक्ति के समर्थ कवि हैं। इनकी प्रगतिशीलता का सूत्र प्रकृति, रोमांस, मार्क्सवाद प्रयोगवादी आस्था और विश्वास पर पग धर कर विकसित हुआ है। कवि का चिन्तन रोमांटिकता से प्रारम्भ हो यथार्थ सामाजिक धरातल को लाँघकर नवीन सन्दर्भो के प्रति आश्वस्त है। फिर भी इन सबसे परे मुक्तिबोध का दृष्टिकोण प्रगतिशील है।

मुक्तिबोध उन कवियों में से हैं जिन्होंने सफलता का यह सरल पद छोड़कर इस युग की उलझनों में जानबूझ कर अपने को डाला है। अंधकार से प्रकाश में आना सभी चाहते हैं, पर प्रकाश से अंधेरे की ओर प्रस्थान केवल मुक्तिबोध ही अर्थों में कर सके हैं। उनकी कविताओं का केन्द्रीय विषय है आज के भक्ति मन का अन्तर्द्वंद्व, सामाजिक अन्तर्द्वंद्व की जो छाया व्यक्ति के जागरूक मन में प्रतिबिम्बित हो रही है। उसके मार्मिक चित्रण का प्रयास मुक्तिबोध ने बार–बार किया है। इस तरह मुक्तिबोध आत्मविश्लेषण के माध्यम से इस युग के सामाजिक संघर्ष को समझना चाहते हैं। वह जीवन भर नयी दृष्टि, नये युग के अनुभव और काव्य की विलक्षण अनुभूतियाँ खोजते रहे। अपनी काव्य–प्रेरणा के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है "मेरे बाल मन की पहली भूख सौन्दर्य और दूसरी विश्व मानव का सुख दुख, इन दोनों का संघर्ष मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी। मुक्तिबोध का काव्य सत् चित् आनन्द का काव्य न होकर सत् चित् वेदना का काव्य है। उनकी वेदना बड़ी व्यापक और साथ ही गहरी है। व्यक्ति और समाज के पारम्परिक सम्बन्धों की वैज्ञानिक व्याख्या और उसकी काव्यमय अभिव्यक्ति ही उनकी कविताओं का अर्न्तमन है। इनके काव्य को "मानवता का दस्तावेज" कहा गया है। आधुनिक सभ्यता की विसंगति और विद्रूपताओं से परिचित मुक्तिबोध ने उन पर करारा व्यंग्य किया है–

22.3 तार सप्तक और मुक्तिबोध–

मुक्तिबोध की कविताएँ हमें पहली बार किसी कृति में संकलित मिलती हैं तो वह अज्ञेय संपादित 'तार–सप्तक' है। यह वह समय था जब कि छायावादी आन्दोलन की धारा मन्द पड़ चुकी थी और प्रगतिवादी काव्यधारा वेगवती होकर प्रवाहित हो रही थी। तार सप्तकीय कविताओं का रंग, रूप और कथ्य छायावाद प्रगतिवाद से संयुक्त और स्पर्शित होते हुए भी नवीन था यह नवीनता मात्र भाषिक स्तर की नहीं थी काव्यगत भी थी। 'तार सप्तक' में मुक्तिबोध की 17 कविताएँ छायावादी संस्कारों से प्रभावित है। ध्यान रहे कि ये छायावादी संस्कार और कवितागत रंग रूप शिल्प के धरातल पर ही है। जिन प्रगतिशील कवितओं में छायावादी पदावली हैं, उनमें जो कथ्य है वह प्रगतिशील भावबोध से संपृकत हैं। उदाहरण के तौर पर 'आत्मा के मित्र मेरे', 'मृत्यु और कवि', 'नाश देवता' आदि कविताओं में कवि शैल्पिक स्तर पर छायावादी और कथ्य के स्तर पर प्रगतिशील दिखाई देता है।

घनी रात बादल रिमझिम हैं, दिशा मूक निस्तब्ध,

व्यापक अंधकार में सिकुड़ी, कोई नर की बस्ती भयंकर

है निस्तब्ध गगन रीती सी, सरिता धार चली घहराती

जीवन–लीला को समारत कर मरण सेज पर है कोई नर।

"पूंजीवादी समाज के प्रति" शीर्षक कविता में कवि ने पूंजीवादियों की रेशमी संस्कृति के प्रति क्रोध प्रकट किया है।

तुमको देख मितली उमड़ आती शीघ्र

मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक

अपनी उष्णता से धो चले अविवेक

तू है मरण, तू है रिक्त, तू है अर्थ

मेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।

'तार सप्तक' में संकलित कविताएँ इस बात की गवाही देती हैं कि कवि की सम्पृक्ति सामाजिक जीवन से है। सामाजिक जीवन के चित्रकार मुक्तिबोध की तार सप्तकीय कविताओं की संवेदना का धरातल यथार्थ संयुक्त है। यथार्थ की इस–जमीन पर लिखी गई मुक्तिबोध की कविताओं का मूल स्वर पूंजीवादी सभ्यता संस्कृति के प्रति घृणापरक, विद्रोहात्मक अभिव्यंजना से भी संबद्ध है और जीवनगत विषमता और अन्तर्मन के संघर्ष के कारण उत्पन्न असफलता असंतोष के कारण जन्मे एकांकीपन के भाव से भी संपृक्त है।

22.3.1 'चाँद का मुंह टेढ़ा है'– विवेच्य संकलन में मुक्तिबोध की 28 कविताएँ संकलित हैं। इसके सम्पादक श्रीकान्त वर्मा हैं और प्रकाशन काल 1964 है।

इस संकलन की कविताएँ मुक्तिबोध को प्रतिबद्ध जीवन दर्शन का सर्जक प्रमाणित करती हैं। इन कविताओं को प्रमुख तीन स्वरों में बांटा जा सकता है।

1) आत्म चेतना का अन्वेषण और उसी से व्यक्तित्व का परिष्कार–संस्कार करने की ललक।

2) संस्कारित और शोषित व्यक्तित्व के सहारे वैज्ञानिक द्वंद्वात्मक भौतिकतावाद की काव्यात्मक परिणति।

3) व्यक्तित्व संशोधन के लक्ष्य से प्रेरित होकर आत्म संघर्ष और आत्मसाक्षात्कार की स्थितियों का काव्यांकन और निरूपण।

संग्रह की कई कविताएँ ऐसी भी हैं जिनमें आत्मसंघर्ष और आत्मान्वेषण साथ–साथ चलता है। कवि आत्मसंघर्षरत होकर भौतिक–संसार के संघर्षों के लिए शक्ति और अदम्य साहस बटोरता हुआ गहन आस्था और जिजीविषा से जुड़ जाता है। ऐसी कविताओं में 'एक अंतर्कथा', 'भूल गलती', ओ काव्यात्मन फणिधर', 'चकमक की चिंनगारियाँ', 'जब प्रश्नचिहन बौखला उठे' 'एक स्वप्न कथा', 'अंधेरे में', 'चंबल की घाटी में' और 'अंतः करण का आयतन' को लिया जा सकता है।

संग्रह की अधिकांश कविताएँ लंबी और कथा तत्व से परिपूर्ण हैं। ऐसा लगता है कि मुक्तिबोध की प्रत्येक कविता पोएटिक थीम–काव्यवृत को लेकर चली है। ये काव्यवृत वर्तमान जीवन के भयावह, घिनौने, कारूणिक और संवेदनात्मक चित्रों के एलबम प्रतीत होते हैं। कवि ने लंबी कविताओं में बड़े नाटकीय ढंग से बाहरी और भीतरी दुनिया के चित्र पूरी ईमानदारी से उतारे हैं। इस संकलन की कविताओं में वर्तमान परिवेश में व्याप्त अभाव, तनाव, घुटन, षड़यंत्र, स्वार्थ, उच्छृंखल वृत्तियों हिंसात्मक स्थितियों का वर्णन है। इन परिस्थितियों के प्रति कवि व्यक्ति को सजग करता है, परिचित कराता है और फिर कहता है।

समस्या एक

मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में

सभी मानव

सुखी, सुंदर, शोषण मुक्त

कब होगें?

जन साधरण के प्रति इतनी गहरी संसिक्ति ही उन्हें उच्चवर्गीय लोगों से दूर कर देती है। इसी भूमिका पर 'मैं तुम लोगों से दूर हूँ' कविता का सृजन हुआ है।

मैं तुम लोगों से इतना दूर हूँ

तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है

कि तुम्हारे लिए जो विष है,

मेरे लिए अन्न है

'अंधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' संकलन की महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। अंधेरे में कविता को आलोचकों ने आधुनिक वर्तमान जीवन का दहकता दस्तावेज कहा है। वर्तमान विसंगतियों को उभारने में कविता सार्थक है। 'ब्रह्मराक्षस' कविता

में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की त्रासदी को चित्रित किया गया है।

पिस गया वह भीतरी

और बाहरी दो कठिन पाटों बीच

ऐसी ट्रेजडी है नीच

22.3.2 'भूरी–भूरी खाक धूल'– मुक्तिबोध की कविताओं का यह दूसरा संकलन है। 47 कविताओं को अपने कलेवर में समेटे हुए यह संकलन मुक्तिबोध के काव्य का सम्पूर्ण परिचय प्रस्तुत करने में सक्षम है। विवेच्य संकलन मुक्तिबोध के चिंतन की व्यापकता और सर्जना कौशल को अत्यंत सक्षमता से स्पष्ट करता है।

सच, हृदय रक्त के चाल–थाल

में डूबा, गहरे डूबा है

जीवन विवेक

दुर्दांत ज्ञान व मणि अशोक

वर्तमान युग में मानव –नियति को राजनीति की परिभाषाओं में ही समझा जा सकता है। मुक्तिबोध राजनीति की अहमियत को भी समझते थे और उससे साहित्य का जो सम्बन्ध है, उससे भी अवगत थे। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि सम्पूर्ण मनुष्य सत्ता का निर्माण करने का एकमात्र–मार्ग राजनीति है, जिसका सहायक साहित्य है। नई कविता के दौर में प्रगतिशील कविता को निशाना बनाकर चलनेवाले लेखकों और कवियों ने मार्क्सवादी राजनीति का कविता में भरसक निषेध करने की कोशिश की थी। मुक्तिबोध का कहना था कि नई कविता के कवियों ने कविता में मार्क्सवादी राजनीति का विरोध कर बड़े कौशल से व्यक्ति स्वतन्त्रता के नाम पर एक दूसरी राजनीति चलाने की कोशिश की, जो अपने मूल रूप में पूंजीवादी थी। इसी पूंजीवादी व्यवस्था का मुक्तिबोध ने अपनी–कविताओं के माध्यम सेंविरोध किया है।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद मुक्तिबोध ने अपनी सम्पूर्ण अग्नि फासिज्म, साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरूद्ध केंद्रित की और छोटी बड़ी अनेक प्रभावशाली राजनीतिक कविताएँ लिखी। सर्वाधिक उल्लेखनीय राजनीतिक कविता 'अंधेरे में' है जो फासिज्म की आशंका को युक्त कर रची गई है।

एक–एक वस्तु या एक–एक प्राणाग्नि–बम हैं

ये परमास्त्र है, प्रक्षेपास्त्र है, यम है,

शून्याकाश के होते हुए वे

अरे, अरि पर ही टूट पड़े अनिवार

यह कथा नहीं है, यह सब सच है, हाँ भाई।

कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

राजनीति के बाद मुक्तिबोध की कविता का दूसरा मुख्य विषय मध्यवर्ग है, जिसके वे स्वयं सदस्य थे। पूंजीवाद के विकास के कारण भारत में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों और दफ्तर के कर्मचारियों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है। मुक्तिबोध ने इस बात को समझा और मध्यवर्ग को उसके दायित्व का बोध कराने का भरसक प्रयास किया। 1947 में 'मध्य–वित्त' शीषर्क से मुक्तिबोध ने एक कविता लिखी, जिसमें उन्होंने मध्यवर्ग को बहुत कोसा, लेकिन साथ ही संकेतों से यह भी बतलाया कि उसकी निराशा, दोहरेपन और अवसरवादिता का कारण पूंजीवाद है। ब्रह्मराक्षस कविता में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की त्रासदी का चित्रण है।

प्रगतिशील आन्दोलन के आरम्भिक दौर में प्रेम को अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता था। ऐसा समझा जाता था कि यह व्यक्ति को सामाजिक वास्तविकता से अलग कर अपने आप में सीमित कर देने वाली चीज है। मुक्तिबोधकी प्रेम– कविताओं का सार तत्व है मुक्ति,

राहगीर को जैसे साथी मिल जाता है

बंजारे को जैसे गाहक

पंडित को जैसे लघु सिद्धांतकौमुदी मिलती

वैसे तुम मिल चुकी मुझे बस इतना काफी

भूल–चूक की माफी।

मुक्तिबोध की कविताओं में ऐसा प्रेम है जो उन्हें आत्मकेन्द्रित नहीं बनाता बल्कि उनकी आत्मा का विस्तार करता है जिसमें सारा विश्व समा जाए।

प्रेम की तरह प्रकृति भी श्रेष्ठ कविता का एक विषय है। मुक्तिबोध ने स्वतन्त्र रूप से प्रकृति की कविता नहीं लिखी, लेकिन प्रकृति से उनका गहरा सरोकार था। जैसे जीवन धारण के लिए प्रकृति आवश्यक है, वैसे ही वह उनके लिए सौन्दर्यात्मक दृष्टि के लिए थी।

बावड़ी की इन मुँडेरों पर

मनोहर हरी कुहनी टेक

बैठी है डगर

ले पुष्प–तारे श्वेत

दृष्टिकोण की व्यापकता के लिए मुक्तिबोध यह आवश्यक मानते थे कि व्यक्ति में ऐतिहासिक अनुभूति हो, यानि वह तमाम चीजों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करे। ओजस्विता मुक्तिबोध की कविताओं का स्वभावगत गुण मालूम पड़ता है लेकिन जैसे जैसे वे समाजवादी विचारधारा को आत्मसात करते जाते हैं, यह गुण उत्कर्ष को प्राप्त करता जाता है।

22.4 मुक्तिबोध के काव्य का कला पक्ष–

कथ्य और शिल्प के पारस्परिक संबध के विषय में मुक्तिबोध की यह मान्यता रही है कि इन दोनों को एक दूसरे से पूरी तरह अलग–थलग कर के हम इनका वास्तविक मूल्यांकन नहीं कर सकते। मुक्तिबोध ने अपने लिए फैंटेसी के शिल्प को चुना है जिसमें मिथक, प्रतीक, रूपक, उपमा, बिंब आदि अभिव्यक्ति के उपकरण घुल मिलकर आए हैं।

22.4.1 फैंटेसी– मूलतः मनोविश्लेषण शास्त्र से संबद्ध शब्द हैं जिसकी व्याख्या स्वप्न के सन्दर्भ में फ्रायड और युंग ने की है। युंग ने ''अभिप्रेरित चिंतन'' (डायरेक्टेड थींकिंग) के रूप में विवेक द्वारा नियंत्रित सत्य के सामाजिक मानदंड के रूप में इसे स्वीकार किया है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक क्रिस्टाफर काडवेल ने इस व्याख्या को अशंतः स्वीकार किया है और उसे "अभिप्रेरित अनुभूति" (डायरेक्टेड फीलिंग) सिद्ध करते हुए सौन्दर्य या अच्छाई का सामाजिक मानदंड माना है। फैंटेसी विवेक–प्रक्रिया द्वारा अनुशासित न होकर हृदय या मन द्वारा अनुशासित होती है।

मुक्तिबोध ने फैंटेसी के सन्दर्भ में काडवेल की व्यवस्था को अधिकांशतः स्वीकार किया है किन्तु 'अभिप्रेरित अनुभूति' के स्थान पर उसे 'संवेदनात्मक उद्देश्य'' से नियंत्रित एक सक्रिय–सर्जनात्मक इकाई के रुप में ग्रहण किया है। '' फेंटेसी डायनेमिक होती है। कला के प्रथम क्षण के अन्तिम सिरे पर उत्पन्न होते ही उनकी गतिमानता शुरु हो जाती है'' (एक साहित्यिक की डायरी) कला के प्रथम क्षण अर्थात, जीवन के ''उत्कट तीव्र अनुभव क्षण'' के अंतिम सिरे और कला के दूसरे क्षण अर्थात सौन्दर्यानुभूति की ही एक स्थिति को संकेतित करती है। निर्वैयक्तिकता की यह स्थिति ही मुक्तिबोध द्वारा निरूपित कला का दूसरा क्षण अर्थात फेंटेसी का क्षण हैं। जिनके संबध में मुक्तिबोध ने लिखा है। ''जो फैंटेसी अनुभव का भावगत पीड़ा से स्वतन्त्र होकर अनुभव के भीतर की ही संवेदनाओं के द्वारा उत्सर्जित और प्रक्षेपित होगी वह एक अर्थ में वैयक्तिक होते हुए भी निर्वैयक्तिक होगी। उस फेंटेसी में अब एक भावनात्मक उद्देश्य के द्वारा ही वस्तुतः फैंटेसी को रुप रंग मिलेगा'' (एक साहित्यिक की डायरी, पृ. 18) निष्कर्ष यह है कि फैंटेसी का

आकार तो अपना होता है किन्तु उनमें रंग–जीवन तथ्यों से उद्‌गत होते हैं।

मुक्तिबोध ने स्वयं इसे भाववादी बुर्जुआ शिल्प माना है। यथार्थवादी शिल्प के विपरीत, जो भाववादी शिल्प है उस शिल्प के अंतर्गत जीवन को समझने की दृष्टि यथार्थवादी रही है। जहाँ तक मुक्तिबोध का प्रश्न है, उन्होंने भाववादी शिल्प अर्थात फैंटेसी के शिल्प में अपनी यथार्थवादी दृष्टि के साथ ही अपनी द्वंद्वात्मक भौतिकवादी समझ को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। फैंटसी और भाववादी शिल्प का उन्होंने अपने ढंग से विकास किया है। वे कभी अपने अनुभूत जीवन तत्वों को सुदूर अतीत के साथ संबद्ध कर, फैंटेसी को स्वतंत्र अधिकार देते हुए, वर्तमान से आकर्षक दूरी पैदा करते हैं, तो कभी उसे वर्तमान के किन्हीं अन्य तथ्यों या भिन्न स्थितियों के साथ संबद्ध कर मात्र स्थानगत दूरी पैदा करते हुए एक रहस्यलोक की सृष्टि करते हैं। यही नहीं, वरन् कहीं कहीं वे वर्तमान जीवन तथ्यों को भविष्य के स्वप्निल आदर्श–लक्ष्यों के साथ जोड़ कर एक गहरी जिज्ञासा पैदा करते हैं, ये तीनों स्थितियाँ कभी अलग–अलग और कभी एक साथ भी बहुत सी कविताओं में मिलती है। फैंटसी की इस बहुमुखी प्रतिभा के कारण उनकी अधिकांश कविताओं में उनका पूरा व्यक्तित्व सम्पूर्ण अनुभूत जीवन सार और एक इच्छित जीवनादर्श ही नहीं समाविष्ट हुआ है, वरन वह मानवी, सामाजिक संबंध क्षेत्र की अभिव्यक्ति हुआ है जिसमें रहकर कवि ने सांस ली है और अपनी वर्ग दृष्टि के अनुकूल उन मानव संबंधों के मूल्य–मानों को संशोधित–संपादित कर एक विश्व–दृष्टि का रूप दिया है।

''गम्भीर–करूण मुसकुराहट में
अपना उर का सब भेद खोलती हैं
अनजाने हाथ मित्रता के
मेरे हाथों में पहुँच उष्मा करते हैं
मैं अपनों से घिर उठता हूँ
मैं विचरण करता सा हूँ एक फैंटेसी में
यह निश्चित है कि फैंटेसी कल वास्तव होगी।''

''अंतःकरण का आयतन'' कविता में मुक्तिबोध ने यथार्थपरक जीवन तथ्यों का जो अमूर्तीकरण किया है, वह यथार्थ को और अधिक मानवीय और ठोस बनाने के लिए ही किया है। अतः भाववादी शिल्प को ग्रहण करते हुए भी मुक्तिबोध एक यथार्थवादी सामाजवादी कलाकार के ही रूप में हमारे सामने आते हैं। यथार्थवादी कला के लिए भाववादी शिल्प वर्जित नहीं हैं। दुनिया के बड़े–से–बड़े समाजवादी यथार्थवादी कलाकारों ने भाववादी शिल्प का सार्थक उपयोग करके अपने कद को ऊँचा किया है। इस प्रकार के शिल्प का चयन करने के पीछे मुक्तिबोध के सम्मुख एक चुनौती थी कि कविता के मंच से साहित्य क्षेत्र के प्रगतिशील काव्यधारा को निष्कासित किए जाने से बचाना। इस शिल्प से उन्होंने नयी कविता के समूचे तंत्र को एक विशेष भावधारा की अभिव्यक्ति के अभेद्य दुर्ग को भीतर से तोड़ा है।

काव्य भाषा के संबंध में मुक्तिबोध का कोई रूढ़ आग्रह नहीं रहा है। यद्यपि उन्होंने रचना प्रक्रिया में शब्द

साधना को एक अत्यंत कठिन साधना के रूप में विस्तार से विश्लेषित किया है। वैसे उनकी नवीन चेतना कभी संस्कृत–निष्ठ तत्सम सामाजिक पदावली की अलंकृत गलियों से गुजरती है, तो कभी अरबी–फारसी–उर्दू के नाजुक हाथों को थाम कर चलती है, कभी बोल–चाल के सहज प्रवाह में प्रवाहित होती है, तो कभी अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत के मिश्रित रूप का कुशलतापूर्वक सहारा लेती है। अतः उनकी भाषाओं में एकरूपता न होकर अवसरानुसार तथा भावानुकूल अनेक रूप मिलते हैं। उदाहरण के तौर परः–

''फाड़ श्याम मृत्तिकावरण, उठे सकोण
प्रस्तरी अंग यत्र–तत्र सर्वत्र।''

सक्रीनिंग करो मिस्टर गुप्ता
क्रास एगजामीन हिम थारोली''– (अंधेरे में)
''भूल (आलमगीर)
मेरी आपका कमजोरियों के स्याह
लोहे का जिरह बख्तर पहन, खूँखार
हाँ, खूँखार आलीजाह'' (भूल गलती)

कोमल, अंह अस्मि वेदना, वनवासी, समीर शिलीभूत गतियों का हिम, अंगारी झीलें, गतिशील असंगतियाँ, भूले भटके शब्द, विक्राल–व्यवस्था, अपवाद के नियम जैसे शब्दों के साथ ही एलक्ट्रान–प्रोटोन, यूरेनियम, मैगनीज, रेडियम, पिस्टन आदि जैसे वैज्ञानिक शब्दावली उनकी प्रखर चेतना की अभिव्यक्ति करती हैं। ये शब्दावली उनके व्यापक रचना संसार का भी स्पष्ट संकेत करती हैं।

मुक्तिबोध ने जिस प्रकार फैंटेसी को जीवन मर्मों के साथ लिपटी हुई माना है, उसी प्रकार उपमा, रूपक, प्रतीक, बिम्ब आदि को जीवन के गहरे स्पर्श से युक्त माना है। इस संबंध में अपनी धारणा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'ध्यान में रखने की बात है कि कोई प्रतीक तभी तक भावोत्तेजना की शक्ति रखता है, जब तक कि उसकी जड़े सामाजिक सामूहिक अनुभवों की धरती में 'समाई' हुई हों। मात्र व्यक्तिगत धरातल पर तो हजारों प्रतीक खड़े किए जा सकते हैं।'' (नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र) प्रस्तुत बात केवल प्रतीकों पर ही नहीं, उपमाओं, रूपकों, मिथकों, बिंबों आदि पर भी समान रूप से लागू होती है। इन सबकों साथ लेकर ही फैंटेसी गतिशील होती है।

22.4.2बिम्ब योजना– बिंब ऐंद्रिय अनुभूति, जीवनानुभूति, कलानुभूति और काव्यानुभूति को शब्दों के माध्यम से मूर्त करते हैं। बिंब योजना से काव्य शिल्प सजीव, मुखर, संवेदनशील और पारदर्शी बन जाता है। बिंब की दृष्टि से मुक्तिबोध का काव्य अत्यंत समृद्ध है। उनके काव्य में बिम्बों का वैविध्य दृष्टिगत होता है।

उनकी प्रारंभिक कविताओं में छायावादी बिंब सृष्टि का प्रभाव स्पष्टः परिलक्षित होता है तथा बाद की कविताओं

में आधुनिक युग और नवजीवन से सम्बंधित बिम्बों का प्राचुर्य मिलता है।

ब्रह्मराक्षस

घिस रहा है देह

हाथ में पंजे, बराबर

बाँह छाती, मुँह छपाछप

खूब करते साफ

फिर भी मैल
फिर भी मैल

एक अन्य उदाहरणः–

इसी लिए, मेरी ये कविताएँ
भयानक हिडिम्बा हैं,
वास्तव की विस्फुटित प्रतिमाएँ

22.4.3प्रतीक योजनाः–

प्रतीक में एक अनूठी शक्ति सन्निहित रहती है जिसके कारण शब्द विशिष्ट अर्थ बोध को द्योतक करने में सक्षम होते हैं। एक प्रकार से प्रतीक को अभिव्यक्ति सौष्ठव का अनिवार्य तत्व माना जा सकता है। मुक्तिबोध के प्रतीक उनके काव्य को एक विशिष्ट गरिमा से मण्डित करते हैं।

घबराए प्रतीक और मुसकाते रूप–चित्र

लेकर मैं घर पर जब लौटता

उपमांए, द्वार पर आते ही कहती हैं कि

सौ बरस और तुम्हें

जीना ही चाहिए।

एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत हैंः–

शोषण की सभ्यता के नियमों के अनुसार

बनी हुई संस्कृति के तिलिस्मी

सियाह चक्रव्यूहों में

फंसे हुए प्राण सब मुझे याद आते हैं।

22.4.4छंद विधानः–

मुक्तिबोध सप्तक काव्य के प्रमुख कवि हैं। मुक्तिबोध ने निराला की भांति कविता को छन्द के बंधन से मुक्त रखा है किन्तु विषय भावों के अनुसार कहीं–कहीं पुराने छन्दों को भी अपनाया है। ''तार सप्तक'' में संकलित उनकी कविताओं में सम्यक छंद निर्वाह मिलता है। बाद की रचनाओं में मुक्त छंद का ही प्रयोग मिलता है। पर इनमें कवि ने सहज प्रवाह, लय एवं कविता की उन स्थितियों को जीवन्त रखा है जिनके अभाव ने उसे कविता नहीं कहा जा सकता।

मुझे पुकारती हुई पुकार खो गयी कहाँ
आज भी नवीन प्रेरणा यहाँ न भर सकी
न जी सकी, परन्तु वह न डर सकी

22.4.5अंलकार विधानः–

मुक्तिबोध का कथन उनके दृष्टिकोण को पूर्ण रूप से समझने में सहायक होता है कि जड़ीभूत सौन्दर्याभिरूचि में लगातार परिवर्तन करना होगा, उसके सैंसर त्यागने होंगे, जीवन के वैविध्यपूर्ण, परस्पर द्वंदमय तथा मार्मिक पक्षों के वास्तविक तथा प्रभावशाली चित्रण के लिए आवश्यक है कि हम लगातार अपने काव्य के प्रचलित ढाँचों तथा फ्रेमों में संशोधन करें। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि काव्य साहित्य में प्रयुक्त होने वाले प्रतीक, छंद, अंलकार आदि हमारे जीवन के वास्तविक यथार्थ से परिपूर्ण हो।'' मुक्तिबोध का काव्य जन–जीवन का काव्य है अतः उनमें अंलकार स्वाभाविक रूप से उपलब्ध होते हैं। अंलकारो का प्रयोग उन्होंने कथ्य प्रेषण की दृष्टि से किया है।

मानवीकरण का एक उदाहरणः–

गीले उदास ईटिया रंग
खंडहर में
अति भीम भयानक पेड़
दानवी जड़ें
भूमि की आतों में फैला करके
जो खड़ा बड़ा उदास पड़ता है।

शिल्प के अन्य उपकरणों के साथ मुक्तिबोध मिथकों के प्रयोग में हिन्दी काव्य–जगत में अद्वितीय है। वैसे

तो मुक्तिबोध ने प्रतीकों–रूपकों के चयन के लिए वर्तमान जीवन तथ्यों पर ही अधिक निर्भर किया है, लेकिन वर्तमान जीवन की त्रासदी और उससे मुक्ति की समस्या के समाधान के लिए उनकी दृष्टि पौराणिक प्रतीकों की ओर भी गई हैं। ऐतिहासिक पौराणिक पात्रों में राम, कृष्ण, रावण, लक्ष्मण, अर्जुन, भीष्म, इन्द्र, बुद्ध इत्यादि के संकेत रचनाओं में संयोजित हैं।

सब तरफ अकेला

शिखर पर खड़ा हूँ

लक्ष–मुख दानव सा लक्ष–हस्त देव–सा

परन्तु, यह क्या

आत्म प्रतीति धोखा ही दे रही!!

स्वंय को ही लगता हूँ।

बाँस के व कागज के पुटठ के बने हुए

महाकाय, रावण सा हास्य प्रद

भयंकर!!

मुक्तिबोध ने अपनी काव्य भाषा में विराम चिह्नों की भूमिका को भी रेखांकित किया है। कोष्टक, डैश, वाक्यारंभ और अंत में तीन बिंदुओं (डाट्स) का प्रयोग, कामा, कोलन, सेमीकोलन, रिक्त पंक्तियों के रूप में एक पूरी पंक्ति के स्थान पर बिंदुओं का प्रयोग, प्रश्न वाचक चिह्न, संबोधन कारक चिह्नों के रूप में!! या फिर!!! चिह्नों, इकहरे या दुहरे इनवर्टिड़ कामाज़ (९ ९) का प्रयोग आदि मुक्तिबोध के काव्य शिल्प को एक नयी और सार्थक भंगिमा प्रदान करते हैं।

अन्य अनेक विशेषताओं के साथ ही नाटकीयता भी मुक्तिबोध के काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। मुक्तिबोध ने कविता को कथ्य की दृष्टि से व्यापक पृष्ठभूमि एवं प्रभाव प्रदान करने के लिए नाटकीयता का आधार ग्रहण किया है। सम्बोधन शैली की अपेक्षा कवि नाटकीय सदर्भों के प्रति अधिक सचेत रहा है। इसे ''चाँद का मुहँ टेढ़ा है'' संग्रह की पहली कविता ''भूल गलती'' से लेकर अन्तिम कविता ''अंधेरे में'' तक आसानी से देख सकते हैं। स्थान–स्थान पर आने वाले संवाद प्रश्न उत्तर–प्रति उत्तर पर परिवर्तन, पटाक्षेप, दृश्य–परिवर्तन छाया, ध्वनि, प्रकाश आदि की कुशल योजना मुक्तिबोध की शिल्पगत विशिष्ट उपलब्धि है। अपने इस नाटकीय शिल्प के लिए मुक्तिबोध ने कुछ विशिष्ट शब्दों का सहारा भी लिया है। जैसे अचानक, अकस्मात, यकायक, एकाएक, अनायास, कौन, क्यों, हाय–हाय आदि शब्द नाटकीय कौशल में पर्याप्त सहायक हुए हैं।

22.5 सारांश

उपयुर्क्त सभी उदाहरणों में यह स्पष्ट रूप से दिखायी देता है कि अभिव्यक्ति के सभी उपकरण मुक्तिबोध के निजी और सामाजिक जीवन से गहरा रिश्ता रखते हैं और कभी–कभी वे जीवन तथ्यों से अभिन्नता भी स्थापित कर लेते हैं। लेकिन अधिकांशतः वे जीवनानुभूति को सजाते, संवारते और निखारते हुए स्वंय जीवनानुभूति के माध्यम से निखरते और संवरते भी हैं। इस प्रकार मुक्तिबोध ने वस्तु (कथ्य) और रूप (शिल्प) के मध्य एक द्वन्द्वात्मक संबंध को स्वीकार किया है।

22.6 कठिन शब्द

1. सर्जक
2. प्रतीति
3. विलक्षण
4. वेगवती
5. सम्पृक्ति
6. अन्वेषण
7. संशोधन
8. उच्छृंखल
9. परिप्रेक्ष्य
10. अभिप्रेरित
11. अनुभूत
12. समाविष्ट
13. परिलक्षित

22.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. मुक्तिबोध छायावादोत्तर काव्यधारा के उल्लेखनीय कवि हैं इस पर विचार व्यक्त करें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०2. तार सप्तक में संकलित काव्यसंग्रहों पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०3. मुक्तिबोध के काव्य के कला पक्ष पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

22.8 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1. कविता के नये प्रतिमान–डॉ० नामवर सिंह
2. अलक्षित मुक्तिबोध–डॉ० मोती राम वर्मा
3. समकालीन कविता–अशोक कुमार
4. कविता जो साक्षी है–डॉ० ओम प्रकाश गुप्त

.....

समकालीन कविता और मुक्तिबोध

23.0 रूपरेखा
23.1 उद्देश्य
23.2 प्रस्तावना
23.3 समकालीन कविता
23.4 समकालीन कविता में मुक्तिबोध
23.4.1 व्यक्तिपरकता
23.4.2 समसामयिक परिवेश
23.4.3 वर्गहीन समाज का स्वप्न
23.4.4 शोषकों के प्रति घृणा
23.4.5 शोषकों के प्रति संवेदना
23.4.6 वर्ग संघर्ष और क्रांति चेतना
23.4.7 छदम् आधुनिकता और असंगतियां
23.4.8 आत्मान्वेषण, आत्मसाक्षात्कार और व्यक्तिन्वांतरण
23.4.9 आस्था और जिजीविषा
22.5 सारांश
22.6 कठिन शब्द
22.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
22.8 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

23.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– समकालीन कविता के विषय में जान सकेंगे।

– समकालीन कविता में मुक्तिबोध के स्थान को समझ सकेंगे

– मुक्तिबोध की काव्य प्रवृतियों से अवगत होंगे।

23.2 प्रस्तावना

समकालीन हिन्दी काव्य वाद निरपेक्ष प्रगतिशील काव्यान्दोलन है। समकालीन हिन्दी कविता में विशेष रूप से सन् 1960 के बाद शोषण और विषमता के युग यथार्थ और राजनीतिक विसंगतियों से सीधी टकराहट युक्त होने लगी थी। समकालीन काव्य को समझने और उन पर विचार करने से पूर्व समकालीनशब्द को समझना आवश्यक है। समकालीन सृजन कब से प्रारम्भ होता है और किस विचारधारा को लेकर चलता है। यह एक विवाद का प्रश्न है।

1. आत्मबद्धता दशा का परिहार और

2. आनन्दात्मक अनुभव।

सामान्य अनुभव या वास्तविक जीवनानुभूति की विशेषता नहीं होती क्योंकि इसमें व्यक्ति अपने वैयक्तिक रागद्वेश से बंधा होता है, आत्मबद्धता की स्थिति में रहता है। अतः सौन्दर्यानुभूति की सबसे बड़ी विशेषता आत्मबद्धता की स्थिति से मुक्ति है। मुक्तिबोध की यह स्पष्ट मान्यता रही है कि सौन्दर्यानुभूति का क्षण अनिवार्य रूप से रचना का क्षण भी हो, यह आवश्यक नहीं है। समकालीन शब्द के लिए अग्रेजीं में कन्टम्परेरी (Contemporary) शब्द का प्रचलन है। समकालीनता को स्पष्ट करने के लिए अनेक विद्वानों ने अपने अपने विचार दिए हैं :–

चंद्रकांता अरोड़ा के अनुसार – ''समकालीनता एक कालबोधक शब्द है जो हमारे समय को समेटता है अर्थात् गत तीन–चार दशकों से चलकर आगामी तीन–चार दशकों तक के कालखण्डों में सृजनरत पीढ़ियों की कालावधि को समकालीनता शब्द के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

अंग्रेजी साहित्य के प्रतिष्ठित कवि और पत्रकार पॉल जैकब के अनुसार –''समकालीन हिन्दी कविता से आपका आशय मौजूदा सामाजिक आर्थिक परिदृश्य पर हिन्दी में लिखा जाना चाहिए।'' निश्चित रूप से ये रचनाकार के व्यक्तिगत विचार हैं परन्तु वर्तमान परिवेश के रचनाकारों द्वारा जो साहित्य सृजन किया गया है उसे ही समकालीन साहित्य की संज्ञा दी जा रही है। भावबोध और विषय व्यापकता की दृष्टि से समकालीन साहित्य समृद्ध है।

समकालीन शब्द समय सापेक्ष शब्द है, जिसका सीधा संबंध कवि या रचनाकार के रचनाकाल के समय से माना जाता है। समकालीन का संबंध काल विशेष के वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक एंव सांस्कृतिक स्थिति के वर्तमान से होता है। इसलिए 'कन्टम्परेरी' के पर्याय रूप में प्रयुक्त किया जाता है। वस्तुतः साहित्य के क्षेत्र में समकालीन कविता शब्द का संबंध एक विशिष्ट दृष्टिकोण एवं विचारधारा से मुक्त एक ऐसे भावबोध की कविता है जिसके कथ्य एंव शिल्प दोनो के केंद्र में जन एवं समाज विद्यमान है। वह जन के मन, उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति जन साधारण के शब्दों में करता है।

23.3 समकालीन कविता

हिन्दी कविता में सन् 1960 के बाद लिखी गई कविताओं के लिए समकालीन शब्द का प्रयोग किया गया। अधिकांश विद्वान इसका आरम्भ मुक्तिबोध का काव्य संग्रह ''चाँद का मुँह टेढ़ा है'' से मानते हैं। समकालीन कविता को साठोत्तरी कविता के अन्तर्गत रखा जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात देश की जनता बड़े ही विश्वास और आशा के साथ सुनहरे सपने संजोए जी रही थी, परन्तु 1962 में चीनी आक्रमण से उनका मोहभंग हुआ। जनता के समक्ष राजनेताओं की देश भक्ति कर्मठता, निष्ठा की पोल खुल गई। उनका विश्वास ठगा गया जिसका प्रभाव समकालीन कवियों की कविताओं में तीव्रता से अभिव्यंजित हो उठा। जनतंत्र के नाम मात्र के प्रदर्शन, चुनाव, दल परिवर्तन टोपी बदलाव, कुर्सी प्रियता, राष्ट्रीय चरित्र में निरंतर पैर पसारती गिरावट युवा कवियों के अंतस को झकझोरने लगी इसी की यथार्थ अभिव्यक्ति समकालीन कविता में मुखरित हो चली। इस समय की कविता में राजनीतिक चेतना को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है, जिनके मध्य में कवियों का जनवादी दृष्टिकोण ही है। स्वतन्त्रता, राजनीति और सुखी समाज के स्वप्नों से जब मोह भंग हुआ तो देश के समक्ष समाजवादी आन्दोलन, तेलंगाना का किसान विद्रोह, जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में आन्दोलन, पंजाब का आंतकवाद एवं वर्तमान में कश्मीर की कराह यह सब ऐसी ज्वलंत समस्याएं हैं जिनकी यथार्थ अभिव्यक्ति समकालीन कविता में भरपूर मात्रा में मिलती है। रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना एवं धूमिल के काव्य में यह स्वर तीखे रूप में अंकित है।

चलो चलें जलते असम को बचायें

लगी आग खूने जिगर से बुझाऐं

समकालीन कविता में समाज के निराश लोगों में उद्‌बोधन भरने की अपार क्षमता भी है। वहां मात्र निराशा, कुण्ठा की अभिव्यक्ति नहीं है।

इसलिए उठो और भीतर

सोए हुए जंगल को आवाज दो

इसे जगाओ और देखो कि तुम अकेले नहीं हो

और न किसी के मोहताज हो।

समकालीन कविता में जीवन में संघर्ष करने, लड़खड़ाते, जीवन को हाथ से छूटते हुए देखते जाने वाले व्याकुल आदमी का परिदृश्य है, यह जीवन के यथार्थ को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर शोषक समाज के प्रति शोषित की घृणा उनके आक्रोश को अभिव्यक्ति दे व्यवस्था पर प्रहार करती है। परमानंद श्रीवास्तव का कहना है – ''समकालीन कविता कहते ही हमारे समय

के महत्वपूर्ण सरोकारों सवालों से टकराता एक विशेष रूप और गुण धर्म वाली कविता का चित्र सामने आ जाता है। समकालीन कविता चाहे प्रेम की हो या राजनीतिक स्थिति की या मानवीय संकट की इतना निश्चित है कि एक खास समय की संवेदना इसके चित्रण के ढ़ंग को ही नहीं , अनुभव के रूप अथवा प्रकृति कोभी प्रभावित करती है।

विश्म्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार :– समकालीन कविता अपने समय के अन्तर्विरोधों एवं द्वन्द्वों की कविता है। समकालीन कविता में जो हो रहा है का सीधा खुलासा है, इन्हे पढकर वर्तमान काल का बोध हो सकता है क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते तड़पते, गरजते और ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है।

समकालीन काव्यधारा के प्रमुख हस्ताक्षरों में मुक्तिबोध, धूमिल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, राजकमल चौधरी, वेणु गोपाल, श्रीकान्त वर्मा, चन्द्रकान्त देवताले, कुमारेन्द्र, कुमार विकल, गोरख पाण्डे, आलोक धन्वा, सोमित्र मोहन, विष्णु खरे आदि उल्लेखनीय है इन लेखकों ने समाज के आर्थिक शोषण, नारी शोषण, बढ़ती बेकारी, दलित वर्ग की गौर दरिद्रय आदि मुद्दों पर जमकर बहस की है। इनकी कविता सामाजिक समानता,शोषण विश्वबन्धुत्व, मानव मुक्ति जैसे गम्भीर मसलों की ओर उन्मुख है।

समकालीन कविता की दृष्टि यथार्थवादी रही है। पूंजीवादी समाज में यथार्थ को इतने सुंदर और मोटे लबादे से ढ़क दिया जाता है कि उसको समझाने की प्रक्रिया में अनेक दिग्भ्रम हो सकते है। यथार्थ की जो दृष्टि निराला में बीज रूप में मिलती है वह इन कवियों में केन्द्रीय संवेदना के रूप में विद्यमान है।

समकालीन कविता में राजनीति का महत्वपूर्ण रूप में चित्रण हुआ है। ये छठे और सातवें दशक की कविता है। तत्कालीन दुनिया में राजनीति का दबाव इतना आक्रमक और तीव्रतर होता गया है कि किसी कवि के लिए उससे साफ–साफ बच निकलना मुमकिन नहीं रह गया है। इसलिए आज के दौर में हो रही कविता में राजनीति से दो चार हुए बिना उनका सही मूल्याकंन नहीं होगा।

मगर मैं जानता हूं कि मेरे देश का समाजवाद

माल गोदाम में लटकती हुई

उन बाल्टियों की तरह है जिन पर आग लिखा है

और उनमें बालू और पानी भरा है। **(पटकथा)**

समकालीन कविता सामाजिक सोच विचार के नकलीपन और प्रपंच को उजागर करने के साथ मध्यवर्ग की त्रासदपूर्ण जिन्दगी और उनकी विद्रूपता के यथार्थ को भी बारीकी से चित्रित करती है। 'नई कविता' से जुड़े हुए कवि भी अपने आप को समकालीन कविता का अंग मानते हैं। परन्तु यदि विस्तारपूर्वक देखा जाए तो नई कविता एवं समकालीन जनवादी कविता में अन्तर स्पष्ट हो जाएगा। नई कविता में कवियों की दृष्टि अर्न्तमुखी है, वैयक्तिक दुख के यथार्थ चित्रण में निराशा, कुण्ठा की झलक है परन्तु

समकालीन कविता वैयक्तिक दुख, पीड़ा, घृणा, निराशा की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है कि वह सामाजिक सरोकारों से जुड़ गयी है। समकालीन कविता का कथ्य यथार्थ पर आधारित वर्तमान समाज एवं राष्ट्र का एक सच्चा दस्तावेज है।

22.4 समकालीन कविता में मुक्तिबोध

समकालीनता का सम्बन्ध अपने युग की विवेक चेतना से है, अपने युग की ह्रासशील और उत्थानशील शक्तियों की सही पहचान से है, और इससे भी अधिक उत्थानशील शक्तियों के साथ सक्रिय सहयोग और ह्रासशील सामाजिक शक्तियों के विरोध में ही वास्तविक समकालीनता निहित है। इस दृष्टि से विचार करें तो मुक्तिबोध आधिक समकालीन हैं। फिलहाल हम जिन सामाजिक–राजनीतिक स्थितियों से गुजर रहे हैं, उनमें कम–से–कम इक्कीसवीं शती के मध्य तक मुक्तिबोध की समकालीन बने रहने की पूरी संभावना है। अपने युग के जिन सामाजिक संकट, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण–उत्पीड़न की जिन स्थितियों के विरोध में मुक्तिबोध की कविताएँ खड़ी हुई हैं, वे जब तक समाप्त नहीं हो जाती तब तक मुक्तिबोध समकालीन बने रहेगें।

मुक्तिबोध प्रगतिशील साहित्यान्दोलन और प्रयोगवाद या नयी कविता के उस दौर की उपज हैं जिनमें नयी कविता के हाथों प्रगतिशील काव्य को पराजय का मुख देखना पड़ा था। इस पराजय में नयी कविता की शक्ति नहीं, वरन् तत्कालीन राजसत्ता का अधिक योगदान था आरम्भिक दौर में स्वाधीन भारत की शासन सत्ता अपने तथाकथित उदार रवैये के कारण शिक्षित मध्यवर्ग के बुद्धि जीवियों के एक बहुत बड़े तबके को अपने अन्दर पचा लेने की क्षमता रखती थी। फलस्वरूप बड़ी संख्या में प्रगतिशील खेमें का परित्याग हुआ और माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, गिरिजाकुमार माथुर आदि जैसे मूर्धन्य कवि–कलाकारों ने सरकारी अथवा गैरसरकारी संस्थानों में शरण ली। प्रकाशन व्यवसाय के साथ ही प्रचार प्रसार के सभी माध्यमों पर इन्हें प्रतिष्ठित किया गया। ऐसे में सत्ता और उसकी अवस्था के विरोध में लिखना और छपना अत्यन्त कठिन कार्य था। विश्वव्यापी शीत युद्ध की रणनीति के तहत उसके साहित्यिक संस्करण नयी कविता के घटा टोप ने मुक्तिबोध जैसे स्वाधीन चेता कवियों के लेखन कार्य को और अधिक कठिन बना दिया था। बावजूद इसके मुक्तिबोध नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि ने युद्ध स्तर पर कविताएँ लिखी, चाहें वो प्रकाशित बाद में ही क्यों न हुई हों।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद बुर्जुआ वर्ग के प्रतिगामी तत्वों से जुड़ा हुआ लेखकों का एक ऐसा समुदाय सामने आया, जिसने साहित्य दर्शन के रूप में बड़े जोर–शोर के साथ आधुनिकतावाद की स्थापना का प्रयास किया। अलगाव, अजनबियत, व्यर्थता वैफल्य, ग्लानि कुण्ठा, संशय आदि को इसने एक विशिष्ट भाव–बोध के रूप में प्रतिष्ठित किया। नयी समीक्षा के माध्यम से नयी कविता और नयी कहानी में प्रकट होने वाली इन अगतिशील मनोदशाओं को गौरवान्वित करते हुए नये जीवन मूल्य का दर्जा दिया गया। कला चिन्तन के क्षेत्र में अनेक नये प्रश्न उठाये गए। जिनमें कला की स्वायत्तता, कलाकार की स्वतन्त्रता, कलात्मक अनुभूति और जीवनानुभूति की विलगता, अनुभव की प्रमाणिकता लघु मानववाद, कलाकार का

दायित्व और उनकी इमानदारी आदि मुख्य हैं। आधुनिकतावादी दायरे में इनका विवेचन विश्लेषण करते हुए व्यक्ति मानव को उसकी सामाजिक जिम्मेदारियों से विछिन्न करते हुए सामाजिक परिवर्तन में उनकी भाषा को क्षीण किया गया। इस पूरे दौर में एक कवि और समीक्षक के रूप में केवल मुक्तिबोध ही नजर आते हैं जिन्होंने इस आधुनिकतावादी मानसिकता के मूल मर्म और गर्हित प्रभाव को समझ कर उसे उसकी ही जमीन पर धराशायी किया। मुक्तिबोध ने यह सब तब किया जब आसपास के वातावरण में परिर्वतनकारी सामाजिक संघर्ष का नितान्त अभाव था।

मुक्तिबोध का लेखन काल नयी कविता और उससे जुडे चिन्तन के वर्चस्व का काल था। इसलिए उन्हें जन मोर्चे के साथ साहित्य के मोर्चे को भी संभालना पड़ा था। अपनी अधिकांश कविताओं और समीक्षात्मक लेखों में वे दोनों ही मोर्चे पर लड़ते हुए दिखाई देते हैं। लेकिन साहित्यिक मोर्चे पर उन्होंने जिस सूझ–बूझ, दूरदर्शिता और विवेक सम्मत वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है, वे अपने आप में एक मिसाल है। वे कविता को क्षणिक अनुभव के दायरे से बाहर निकाल कर विश्व मानवता के साथ जोड़ते हैं। उनके स्वरूप, उनकी प्रकृति, उनकी स्वायत्ता और कवि के साथ उसके सम्बंध को उद्‌घाटित करते हुए उन्होने घोषणा की हैः–

नहीं होती कहीं भी खत्म कविता नही होती

अन्य प्रगतिशील कवियों की अपेक्षा मुक्तिबोध को आत्मसंघर्ष की विकट बीहड़ता झेलनी पड़ी थी। मुक्तिबोध के काव्य और उनके समग्र चिन्तन को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी प्रतिबद्धता और पक्षधरता मार्क्सवादी समाज दर्शन से पूर्णतया अनुशासित है। प्रगतिशील काव्यधारा के अन्य कवियों की अपेक्षा मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में उनकी पैठ भी गहरी थी। भारतीय साम्यवादी दल से भी वे जुड़े हुए थे। सामाजिक जीवन के अपने लक्ष्यादर्शों की सिद्धि के लिए उन्होंने एक वैज्ञानिक समाज दर्शन से आलोक ग्रहण किया था। इस दर्शन के प्रकाश में ही उन्होंने अपने संवेदनात्मक ज्ञान को अपने अनुभव जगत की काट–छाँट, जाँच–परख करते हुए उसे ज्ञानात्मक संवेदना का रूप दिया था। इस प्रकार तत्कालीन दौर में प्रगतिशील कविता को स्थापित करने में मुक्तिबोध का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी कविता अपने युग और परिवेश की हर सांस, हर धड़कन और हर सन्दर्भ को उनकी पूर्णता से जीती रही। मुक्तिबोध की कविताएं अपने समय का यों कहना अधिक सही होगा कि कुछ और आगे के वर्षों का भी प्रमाणिक इतिहास है। समकालीन दौर को हम मुक्तिबोध की काव्य प्रवृतियों में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

23.4.1 व्यक्ति परकता

'तार सप्तक' की अनेक कविताओं में यहव्यक्तिवादी स्तर मुखरित हुआ है। मुक्तिबोध की प्रारम्भिक कविताओं में हमइस व्यक्ति परकता को देख सकते हैं। मुक्तिबोध की व्यक्तिवादिता सामासिकता की ओर बढ़ने का प्रस्थान बिंदु है। मुक्तिबोध एक सांस में व्यक्तिवादिता का आभास देते हैं और दूसरे ही पल समाजोन्मुख हो जाते हैं। कारण आत्मशोधन की प्रवृति और अपने को समग्र न मानना एक ही है। इनकी कविताओं में सूनेपन, थकन, कुहासा के बिंब आए है, किंतु ये सब चित्र आत्मान्वेषण की प्रक्रिया को पूर्ण बनाने के लिए है। वे शक्ति को संकीर्ण परिस्थितियों से निकालने के आतुर प्रतीत होते हैं।

याद रखो

कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती

यदि वह है तो सब के साथ ही।

23.4.2 समसामयिक परिवेश

मुक्तिबोध का काव्य सामाजिक जीवन की सटीक व्याख्या है। उन्होंने अपने युग मानव की पीड़ा की कमजोरियों और विडंबनाओं को देखा भी था और भोगा भी था। इससे उनका काव्य युग से संघर्ष करते जन जन के अन्तः करण और भौतिक एंव मनोवैज्ञानिक द्वंद्व को प्रतिरूपित करता है। सही अर्थों में मुक्तिबोध जन–जीवन को सुखी और खुशहाल देखना चाहते थे। इस आकांक्षा के कारण वे जीवन, समाज और जन–जीवन के भीतरी पहलुओं का 'ऐक्सरे' प्रस्तुत कर गये हैं। इस समाज से सम्पृक्ति और परिवेश सजगता के कारण डॉ. रमेश कुतंल मेघ ने उन्हें लोकजीवन का जासूस कहा है।

हाँ वहाँ एक गाँव दहक उठा

गरीबों का गाँव एक बिना ठाँव

खतरनाक लूट पाट, आग ड़कैतियां

चंबल की घाटियां!!

23.4.3 वर्गहीन समाज का स्वप्न

मुक्तिबोध के काव्य संसार को गहराई से देखें तो स्पष्ट होता है कि वे एक वर्गहीन औरशोषण रहित समाज की स्थापना के लिए लालायित थे। वे जानते थे कि मानवीय समाज, संस्कृति और जीवनदृष्टि को स्वस्थ जीवन मूल्यों से जोड़ना अनिवार्य है। इसके लिए व्यक्ति को आत्म साक्षात्कार की गलियों से गुजरना पड़ेगा, अपने 'स्व' का शोधन– परिशोधन करना पड़ेगा, तभी वर्गहीन और शोषणहीन स्वस्थ समाज का ढाँचा खड़ा हो सकेगा। स्वार्थ संकीर्णता और भौतिक सुख सुविधाओं के मलबे को हटाना होगा

शोषण की अति मात्रा

स्वार्थों की सुख यात्रा

जब–जब संपन्न हुई,

आत्मा से अर्थ मर गया

मर गई सभ्यता।

इसके लिए उन्होंने उन सुविधा भोगी और अवसरवादियों को बाधा माना है जो पूंजीवादी मनोवृत्ति को लेकर जीना चाहते हैं।

वर्तमान समाज में चल नहीं सकता

पूंजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता

स्वतंत्र्य व्यक्ति का वादी

छल नहीं सकता मुक्ति के मन को जन को।

23.4.4 शोषकों के प्रति घृणा

मुक्तिबोध सच्चे अर्थों में जीवन मूल्यों की स्वस्थ परम्परा के कवि थे। ये शोषण और अत्याचार की चक्की में पिसते जन जीवन के प्रति सहानुभूतिशील थे और चाहते थे कि जन समाज के संवलाये और पथराये चेहरों पर सूर्याभा चमके दमके और सुख संतोष की चादंनी फैले। इस प्रक्रिया में उन्होंने उस अवस्था का विरोध किया, उस मनोवृति के प्रति घृणा प्रकट की जो दूसरों के खून पर जी रही है। यह प्रक्रिया 'तार सप्तक' की पूंजीवादी समाज के प्रति कविता से आरम्भ होती है। कवि ने पूंजीपतियों की मनोवृतियों को देखकर स्पष्ट भाषा में कहा है:–

छोड़ो हाथ, केवल घृणा और दुर्गंध

तेरी रेशमी वह शब्द संस्कृति अंध

देती क्रोध मुझको खूब जलता क्रोध

तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध

तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र

तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र

तेरे हास में भी रोग कृमि है उग्र

तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध तुझ पर व्यग्र।

असत्य और अत्याचार की काली करतूतों वाले यह व्यवस्थाहीन संस्कृति कवि की दृष्टि में शोषण संस्कृति है। अतः ''नाश देवता'' कविता में यदि वह पूंजीवादियों को मिटाने पर तुला है तो 'नयी है जमीन' पर नये जन समाज को प्रतिष्ठित करने का आकांक्षी भी है। कारण उनका लगाव साधारण से इतना अधिक है कि व 'मैं' 'तुम' लोगों से दूर हूँ, कविता में लिखता है कि

मैं तुम लोगो से दूर हूँ

तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है

कि जो तुम्हारे लिए विष है, मेरे लिए अन्न है।

23.4.5 शोषितों के प्रति संवेदना

मार्क्सवादी चिंतन की भूमिका पर जहाँ कवि मुक्तिबोध सर्वहारा मज़दूर वर्ग का अभिषेक सहानुभूति और करूण–जल से करते हैं, वहीं इसे ऊँचा उठाना भी चाहते हैं। आर्थिक शोषण से उसे मुक्त भी करना चाहते है। इस दृष्टिकोण के कारण मुक्तिबोध के काव्य में शोषित मानवों और उनके जीवन के प्रति सहानुभूति, शिशुओं के प्रति वत्सल दृष्टि, पूंजिपतियों की हवस का शिकार बनी नारी के प्रति स्नेहिल एंव सजल दृष्टि मिलती है। उन्होंने शोषक वृत्ति और उसका शिकार बने समाज का शब्दांकन भर नहीं किया है, अपितु उन्हे अपनी संवेदना भी अर्पित की है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता में श्रमिक वर्ग के शोषण मजदूरों के काम करने वाले कारखाने का वातावरण चित्र भी अंकित है, जो हरिजन गलियों और पुलों के नीचे बहते गंदे नालों के सहारे पडे रहने वाले मानवों की बस्ती का संदर्भ भी पूरी सहानुभूति के साथ चित्रित किया गया है। 'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन' कविता में नौकरशाही व्यवस्था के माध्यम से शोषित संयुक्त परिवार की एक तस्वीर उभारी गई है:–

अजीब संयुक्त परिवार है

औरते व नौकर और मेहनतकश

अपने ही वक्ष को

खुरदरा वृक्षधड़

मानकर घिसती हैं, घिसते हैं

अपनी ही छाती पर जबर्दस्ती

विष–दंती भावो का सर्प–मुख

विद्रोही भावों का नाग–मुख

रक्तप्लुत होता है।

अतः मुक्तिबोध ने अपने काव्य में शोषित, दलित वर्ग के प्रति करूणा और सहानुभूति भी अर्पित की है और उन्हीं के माध्यम से श्रम, कर्तव्य, आस्था और जिजीविषा का मूल मंत्र भी दिया है।

23.4.6 वर्ग संघर्ष और क्रांति चेतना

जन साधारण के हितेच्छु और कट्टर हिमायती मुक्तिबोध अपनी अनेक कविताओं में वर्ग संघर्ष और क्रान्तिचेतना को व्यापक वाणी दे गये हैं। उनकी कई कविताओं में शोषित वर्ग की संघर्ष प्रियता और क्रान्ति प्रियता अभिव्यक्त हुई है। 'लकड़ी का बना रावण', 'चाँद का मुह टेढा है', 'ओ काव्यात्मन फणिधर' 'चकमक की चिनगारियां', 'शून्य' और 'चंबल की घाटी में' आदि महत्वपूर्ण कविताओं में मुक्तिबोध की क्रान्ति चेतना कहीं प्रत्यक्ष और कहीं सांकेतिक शैली में चित्रित होती है। 'चंबल की घाटी' कविता में कवि ने शोषण प्रिय और सांमतशाही के प्रतीक महापुरूषो के अत्याचारों से मुक्ति के लिए समूहीकरण की बात कही है। यह ऐसी दुनिया है जिसके सहारे मुक्तिबोध ने नवनिमार्ण की भूमिका भी तैयार की है । कविता के अंतिम बंद तक पहुँचते पहुँचते कवि ने अपेक्षित वर्ग संघर्ष के स्वरूप को निम्न पंक्तियों में स्पष्ट किया है:–

अपने ही दर्रो के

लुटेरे इलाको में जोरदार

आज जो गिरोह है,

छुपे हुए, खुले हुए, उनके

भयानक हमलों से पीड़ित

जन साधारण को उनकी ही टोह है।

'लकड़ी का बना रावण' कविता में एक ऐसे अहं ग्रस्त व्यक्ति का विश्लेषण है जो निस्सार और खोखलेपन का धनी होकर भी स्वयं को सर्व–तंत्र–स्वतंत्र समझता है। किन्तु जनशक्ति के सामने स्वयं को असहाय और विवश महसूस करता हुआ कहता है–

हाय,हाय

अग्रसर हो रहा चेहरों का समुदाय

और कहीं भाग नहीं पाता मैं

हिल नहीं पाता हूँ

मैं मंत्र–कीलित–सा भूमि–में गड़ा–सा

जब खड़ा हूँ

अब गिरा, तब गिरा

इस पल कि उस पल कि.....।

23.4.7 छद्म आधुनिकता और असंगतिया

वर्तमान समाज जिस आधुनिकता के दौर से गुजर रहा है अथवा जैसा मुक्तिबोध ने उसे देखा था वह छद्म आधुनिकता का सैलाब मात्र था वे इस बात से काफी चुभन महसूस करते थे कि वर्तमान समाज स्वार्थ, आडम्बर, अवसरवादिता और कृत्रिमता की बैसाखियों के सहारे जी रहा है। 'भूल गलती' अंधेरे में' जैसी कविताएं इस कथन को प्रमाणित करती हैं। आज ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो आधुनिकता का कवच पहन कर अपने को जन संघर्ष से अलग रखते हैं और समाजव्यापी भीषण गरीबी, भूख, दमन, अन्याय से अपना दामन छुड़ाकर अपने अपने दायरों में कैद हो गये हैं।

23.4.8 आत्मान्वेषण, आत्मसाक्षात्कार और व्यक्तिन्वांतरण

मुक्तिबोध काव्य के भाव सौष्ठव की एक महत्वपूर्ण विशेषता है आत्मान्वेषण एंव आत्मासाक्षात्कार की प्रवृत्ति से जुड़े रहना। उनका समग्र काव्य आत्मसाक्षात्कार के संदर्भों को प्रस्तुत करता हुआ व्यक्तित्व के परिष्कार से सम्बन्धित है। मुक्तिबोध का आत्मान्वेषी चरित्र जो उन्हें आत्मसाक्षात्कार के सोपानों तक ले जाता है उनकी प्रायः प्रत्येक लम्बी कविता में दिखाई देता है। आत्मान्वेषण से तात्पर्य आत्म समीक्षा से है, जो कवि के शब्दों में आत्मा का सहचर है। कवि की अनुभूति मध्यवर्गीय व्यक्ति के अनुभवो की नीव पर खडी है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' काव्य संकलन की 'मेरे सहचर मित्र' 'चकमक की चिनगारियां', 'अंधेरे में' और 'चंबल की घाटियां', 'ब्रह्मराक्षस' आदि कविताओं में आत्मान्वेषण की प्रवृत्ति मिलती है। आत्मासाक्षात्कार के क्षणो में कवि अपनी और जनता की भी बेबस जिन्दगी को देखता है। कवि अन्वेषक की भांति सोचता है–

जहां सूखे बबूलों की कंटीली पांत

भरती है हृदय में धुंध डूबा दुःख

भूखे बालकों के ष्याम चेहरों के साथ

मैं भी घूमता हूं शुष्क।

'ब्रह्मराक्षस' कविता में भी शक्ति की भूमिका पर आत्म संघर्ष की प्रस्तुति हुई है। ब्रह्मराक्षस व्यक्ति की प्रबुद्ध चेतना का प्रतीक है। यह ऐसी चेतना है जो अपने ज्ञान की पूर्णता के गर्व से, मुक्त है तभी तो वह पारंपरिक

ज्ञान के निष्कर्षों को नयी व्यवस्था देने का दम भरता है और विविध विचारों की मान्यताओं की व्याख्या में अपने को निष्णात समझता है, आत्म संघर्ष में फंस जाता है–

खूब ऊँचा एक जीना साँवला

उसकी अंधेरी सीढ़ियां

वे एक अभ्यंकर निराले लोक की

एक चढ़ना और उतरना

पुनः चढ़ना और लुढ़कना

मोच पैरों में

व छाती पर अनेकों घाव

वस्तुतः मुक्तिबोध का काव्य आत्मान्वेषण, आत्म परिष्कार से गुजरता हुआ अततः व्यक्तित्वांतरण में जाकर सिमट गया है। मुक्तिबोध आत्म परिष्कार तक ही नहीं रूके हैं। उन्होंने तो व्यक्ति सत्य को जन–जन में स्थानांतरित कर दिया है।

23.4.9 आस्था और जिजीविषा

अधूरी और सतही जिंदगी के गर्म रास्तों पर चलते हुए मुक्तिबोध ने प्रायः पैरों के तलवों को काटती आग को, कंधों को दबोचती बोझिल स्थितियों को मानसिक यातना भोगती जिंदगी को जाना, जिया और भोगा था। वेदना से गहन सघन अभ्यान्तर में प्रवेश करके जिंदगी की तहों में प्रवेश किया था किन्तु इतने पर भी एक आस्था, एक जिजीविषा और एक भविष्यधर्मी दृष्टि उनके पास हमेशा विद्यमान रही। इसी दृष्टि और इसी आस्था के बल पर मुक्तिबोध लिखते हैं–

कोशिश करो

कोशिश करो

जीने की

जमीन में गड़कर भी।

संघर्षरत जीवन के चित्र मुक्तिबोध में अवश्य मिलते हैं किन्तु साथ ही एक जीवन के प्रति एक अस्थावान दृष्टिकोण रहता है।

23.5 सारांश

अतः मुक्तिबोध समकालीन कविता के सबसे अधिक प्रासंगिक कवि हैं। मुक्तिबोध सामाजिक परिवर्तन की क्रांतिकारी चेतना के कवि हैं। उनकी दृष्टि में सामाजिक अंतर्विरोध का ज्ञान ही सामाजिक क्रांति की अन्तिम शर्त नहीं है। उस पर गंभीरता पूर्वक विचार करना तथा वैमनस्यपूर्ण अन्तर्विरोधों के निषेध के लिए द्वद्वांत्मक निषेध की वास्तविकता से परिचित होना और उसके अनुकूल वातावरण के निर्माण का प्रभाव भी जरूरी है।

23.6 कठिन शव्द

1. परिहार	2. आत्मबद्धता	3. अभिव्यंजित
4. गर्हित	5. अनवेषक	6. प्रबुद्व
7. निष्णात	8. परिष्कार	

23.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1. समकालीन शब्द को स्पष्ट करते हुए समकालीन कविता के उदय पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

प्र०2. समकालीन कविता पर विचार व्यक्त करें?

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०3. समकालीन कविता में मुक्तिबोध का स्थान निर्धारित करें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र०4. मुक्तिबोध की काव्य प्रवृतियों पर प्रकाश डालें?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

22.8 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1. कविता के नये प्रतिमान–डॉ० नामवर सिंह
2. अलक्षित मुक्तिबोध–डॉ० मोती राम वर्मा
3. समकालीन कविता–अशोक कुमार
4. कविता जो साक्षी है–डॉ० ओम प्रकाश गुप्त

_____

निर्धारित कविताओं का वैशिष्ट्य

24.0 रूपरेखा
24.1 उद्देश्य
24.2 प्रस्तावना
24.3 निर्धारित कविताओं का वैशिष्ट्य
24.4 सारांश
24.5 कठिन शब्द
24.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
24.7 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

24.1 उद्देश्य

निर्धारित कविताओं के पाठ से विद्यार्थियों को मुक्तिबोध के साहित्य की मूल संवेदना को समझने का अवसर मिलेगा। मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष और व्यक्तातरंण के कवि रहे हैं। आलोच्य पाठ से मुक्तिबोध की जन–पक्षधरता और उनके लिए उनके निरतंर संघर्ष को समझा जा सकता है। पाठकों को मुक्तिबोध की शिल्प योजना से भी परिचित होने का अवसर मिलेगा। मुक्तिबोध की कविताओं में मध्यवर्ग अधिकांश रहा है जिसे निर्धारित पाठ से समझा जा सकता है।

24.2 प्रस्तावना

छायावादोत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक यथार्थ और संघर्ष चेतना की रचनात्मक अभिव्यक्ति करने वाले कवियों में मुक्तिबोध महत्त्वपूर्ण रहे हैं। मुक्तिबोध जब कविता के केन्द्र में आये, कविता और राजनीति अथवा सहित्य और राजनीति के सम्बन्धों को लेकर उत्तेजक बहस संभव हुई। मुक्तिबोध की कविताओं का राजनीतिक वस्तुसन्दर्भ मूल्यांकन कर्त्ताओं के लिए अनुपेक्षणीय था। 'तारसप्तक' के वक्तव्य में मुक्तिबोध अपने स्वभाव की व्याख्या करते हुए स्वीकार करते हैं कि उनके साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी – सौन्दर्य और विश्व मानव के सुख–दुःख का संघर्ष। मुक्तिबोध की कविता अपने संघर्ष संगठन के प्रति हमें उत्सुक बनाती है और मुक्तिबोध की विचारधारा पर जीवन दृष्टि को अमूर्त्त नहीं रहने देती। मुक्तिबोध की कविता उन्हीं के शब्दों में बदरंग यथार्थ की कविता है। छायावाद के बाद की

प्रगीतशील यथार्थवादी काव्य–धारा का व्यवस्थित इतिहास जब भी लिखा जायेगा, मुक्तिबोध उसके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कवि माने जायेंगे।

24.3 निर्धारित कविताओं का वैशिष्ट्य

24.3.1 ब्रह्मराक्षस

'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता है। यह कविता पहले बनारस से निकलने वाली छोटी पत्रिका 'कवि' के अप्रैल 1957 के अंक में प्रकाशित हुई थी। बाद में 1964 में मुक्तिबोध के प्रथम काव्य संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित की गई। 'अंधेरे में' के बाद 'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की दूसरी महत्त्वपूर्ण कविता मानी जाती है। आकार में यह कविता अपेक्षाकृत छोटी है, लेकिन अपने स्वरूप से यह भी एक लम्बी कविता ही है।

शास्त्रों के अनुसार पापकर्म करने वाले ब्राह्मण को मरने के बाद प्रेत–योनि प्राप्त होती है और वही ब्रह्मराक्षस होता है। मुक्तिबोध ने कविता में इसी मान्यता का इस्तेमाल किया है और उससे एक फैंटेसी निर्मित की है। ब्रह्मराक्षस एक प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का प्रेत है। ऐसे बुद्धिजीवी को प्रेत–योनि क्यों मिली? उसने कौन सा–पाप किया था? इस कविता में मुक्तिबोध ने यही बतलाया है।

ब्रह्मराक्षस जब मनुष्य योनि में था, तो एक शोधक था, सत्य का खोजी। अपनी खोज को लेकर वह बहुत परेशान था, जैसे गणित की विकट समस्याओं में उलझा हुआ हो। वह उन समस्याओं का निदान नहीं ढूँढ सका और अंततः उन्हीं में घुटकर मर गया।

सितारे आसमानी छोर पर फैले हुए
अनगिन दशमलव से
दशमलव–बिन्दुओं के सर्वतः
पसरे हुए उलझे गणित मैदान में
मारा गया, वह काम आया,
और वह पसरा पड़ा है...
वक्ष बाहें खुली फैली
एक शोधक की।

शोधक की समस्या यह थी कि वह पूंजीवाद और समाजवाद में से समाजवाद को अंगीकार कर उसके अनुरूप अपने 'आदर्श' व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहता था। सांमती मूल्यों के विरूद्ध पूंजीवादी मूल्यों को स्वीकार करना अपेक्षाकृत सरल है। कठिन है पूंजीवादी व्यक्तित्व को छोड़कर समाजवादी व्यक्तित्व की उपलब्धि, क्योंकि समाजवाद के आदर्श पूंजीवाद की तुलना में बहुत ऊँचे हैं। इसके अलावा यह कार्य जटिल भी है। क्योंकि व्यक्तित्व को,जो सामंत विरोधी पूंजीवाद की देन है, पूरा नहीं छोड़ा जा सकता। वह न संभव है, न अपेक्षित। स्वभावतः इस प्रयास में सफलता कम मिलती है, यद्यपि महान उद्देश्य से प्रेरित प्रयास का फल होने के कारण वह आंशिक सफलता भी महत्त्वपूर्ण होती है। यही बात मुक्तिबोध ने निम्नलिखित पंक्तियों में कही है –

बुरे–अच्छे बीच के संघर्ष
से भी उग्रतर
अच्छे व उससे अधिक अच्छे बीच का संगर
गहन किंचित सफलता
अति भव्य असफलता!!

यह वस्तुतः किंचित भिन्न रूप में व्यक्तित्व निर्माण अथवा व्यक्तित्वांतरण की समस्या है, जो 'अंधेरे में' कविता की भी महत्त्वपूर्ण समस्या है।

मुक्तिबोध ने यहाँ स्पष्ट शब्दों में सामतंवाद, पूंजीवाद और समाजवाद का उल्लेख नहीं किया, लेकिन उनका आशय स्पष्ट है। उसे समझने में उनके निबंधों में व्यक्त किए गए विचारों से मद्‌द मिलती है। शोधक की प्रतिक्रिया 'आर्थिक' सामाजिक व्यक्तिवाद यानी पूंजीवाद के विरुद्ध मानव मुक्ति और मानव गरिमा की भावना यानी समाजवाद से संचालित थी। उसी के अनुरूप वह अपने व्यक्तित्व को बदलना चाहता था। उसी के लिए अपने भीतर संघर्ष कर रहा था।

उस संघर्ष में शोधक को सफलता नहीं मिली। उसने बहुत प्रयास किया कि उसके भाव और व्यवहार तथा विचार और कार्य के बीच सामजस्य स्थापित हो जाए, लेकिन वह न हुआ। वह चाहता था कि अपने चिन्तन और कर्म के बीच गणित जैसा समीकरण स्थापित करे, लेकिन वह अपने उद्देश्य को न प्राप्त कर सका। मार्ग दर्शन के लिए उसने गुरु की भी तलाश की, अनेक पण्डितों और चितंकों के पास भी मारा–मारा फिरा, लेकिन उसे अभीष्ट की प्राप्ति न हुई।

उस भाव–तर्क व कार्य सामजस्य–योजन
शोध में
सब पंडितों, सब चिंतकों के पास
वह गुरू प्राप्त करने के लिए
भटका!!

शोधक को कोई गुरू अथवा मार्ग निर्देशक इसलिए नहीं मिला कि अब पहले वाला युग नहीं रह गया था। मुक्तिबोध ने पूंजीवाद के विकास के साथ ज्ञान को पण्यवस्तु बनते हुए स्वयं देखा था। अब गुरू लोग ज्ञान दान नहीं करते थे, अपनी कीर्ति का व्यवसाय करते थे।

अब समाज में लाभ–लोभ की सत्ता स्थापित हो गई थी, जिससे धन की वृद्धि हुई थी और उस धन ने हृदय, मन और अंतःकरण सबको अभिभूत कर लिया था। धन से अभिभूत अंतःकरण पैसे की ही महिमा बखानता था। कहता था वही सत्य है, लेकिन वह सत्य की 'झाई' यानी धोखा था। धन की चमक सत्य नहीं, उसकी मरीचिका है।

नए व्यक्तित्व के निर्माण में शोधक की असफलता का कारण उसकी गलत समझ थी। व्यक्तित्वांतरण का मतलब व्यक्तित्व का विकास है, उसका परित्याग नहीं, लेकिन उसकी कोशिश आत्मचेतना को बिल्कुल झाड़कर विश्वचेतना से युक्त होने की थी। वह अपनी 'लघुता' को 'महत्ता' के चरणों में एकदम से न्योछावर कर देना चाहता था। स्वाभवः वह एक गलत किस्म के द्वन्द्व में पड़ा रहा। मुक्तिबोध मार्क्सवादी होने के कारण यह जानते थे कि कम्युनिज्म व्यक्तित्व का निषेध नहीं करता, बल्कि उसे और उत्कर्ष प्रदान करने के पक्ष में है।

मुक्तिबोध इस सत्य से अच्छी तरह परिचित थे कि व्यक्तित्व हीन व्यक्ति सत्वहीन होगा। वह नेता क्या, एक अच्छा कार्यकर्ता भी न हो सकेगा, इसीलिए शोधक के द्वन्द को गलत ठहराते हुए वे कहते हैं –

मेरा उसी से उन दिनों होता मिलन यदि
तो व्यथा उसकी स्वयं जीकर
बताया मैं उसे उसका स्वयं का मूल्य
उसकी महत्ता।
वह उस महत्ता का
हम सरीखों के लिए उपयोग
उस आंतरिकता का बताता मैं महत्त्व!!

उक्त पंक्तियाँ प्रगतिशील हिन्दी कविता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य हैं। एक बात की तरफ और मुक्तिबोध ने संकेत किया है। व्यक्तित्व के नवनिर्माण के लिए सोचे हुए को कार्यरूप में परिणत करने के लिए व्यवहार क्षेत्र में उतरना, जन संघर्षों में हिस्सा लेना, जरूरी है। तब शायद गलत किस्म के द्वन्द्वों से भी छुटकारा मिल जाए। व्यवहार क्षेत्र में ही चिंतन की सीमाएँ प्रकट होती हैं और उसमें कर्मजनित अनुभव के नए आयाम जुड़ते हैं, साथ ही चिंतन से कर्म को गति और दिशा मिलती है। चिंतन और कार्य के बीच समीकरण स्थापित करने का यही मार्ग है, कोई अन्य नहीं। व्यक्तित्वहीन व्यक्ति यंत्र की तरह होगा, जो न परिस्थितियों से प्रभावित हो सकेगा, न नई–नई परिस्थितियों में खुद रास्ता निकालकर उन्हें मनोनुकूल दिशा में निर्दिष्ट कर सकेगा।

'ब्रह्मराक्षस' कविता दो खंडों में बंटी हुई है। पहले खंड में कवि ने ब्रह्मराक्षस के प्रेतोचित व्यवहार का चित्रण किया है और दूसरे खंड में अपने पाठकों को उसकी 'ट्रैजेडी' से परिचित कराया है। ब्रह्मराक्षस का निवास स्थल शहर के बाहर के खंडहर की तरफ स्थित एक परित्यक्त तालाब है, जिसकी मुंडेर बंधी हुई है, उसी तालाब के वर्णन के साथ कविता शुरू होती है। तालाब का वातावरण बहुत भयावना है। तालाब के गहरे जल में पैठकर ब्रह्मराक्षस स्नान करता रहता है। ब्रह्मराक्षस को भ्रम है कि उसका शरीर गंदा है। वह अपनी 'पाप–छाया' दूर करने के लिए स्नान करता है।

ब्रह्मराक्षस चूंकि एक बुद्धिजीवी का प्रेत है, इसलिए जब वह स्नान कर रहा होता है, तो विचित्र प्रकार के स्रोत का पाठ करता है। ब्रह्मराक्षस तालाब में उसके जल को भीतर से हिलोरकर जो स्नान कर रहा है, उससे वह बहुत विक्षुब्ध हो उठा है। विक्षुब्ध तालाब का यह बहुत ही सशक्त चित्र मुक्तिबोध ने अंकित किया है, जो किसी हद तक ब्रह्मराक्षस की मानसिक स्थिति का भी सूचक हो सकता है।

कवि ने ब्रह्मराक्षस के व्यक्तित्व की कल्पना एक प्रसाद के रूप में की है, जिसमें ऊँची और अंधेरी सीढ़ियाँ थीं। शोधक उन सीढ़ियों पर चढ़ता था और उतरता था, पुनः चढ़ता था और लुढ़क जाता था, जिससे उसके पैरों में मोच आ जाती थी और छाती पर अनेक घाव बन जाते थे। यह उसके भीतर चलने वाला तर्क–वितर्क था, जिसमें वह क्षत–विक्षत हो जाता था। शोधक के संघर्ष के प्रति मुक्तिबोध प्रशंसा का भाव रखते हैं और उसके अतिरेकवादी होने, आत्म और विश्व तथा भीतर और बाहर के संबंध की गलत समझ रखने तथा व्यवहार क्षेत्र से दूर रहने के बावजूद उसका उपहास नहीं करते, बहुत ममता और पीड़ा के साथ उसकी मृत्यु पर कहते हैं –

'वह सघन–झाड़ी के कँटीले
तम–विवर में
मरे पक्षी–सा
विदा ही हो गया
वह ज्योति अनज़ानी सदा को सो गयी।

कविता के अंत में कवि ने कहा है –

मैं ब्रह्मराक्षस का सजल उर शिष्य
होना चाहता
जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य,
उसकी वेदना का स्रोत
संगत–पूर्ण निष्कर्षों तलक
पहुँचा सकूँ।

इस उद्धरण का एक–एक शब्द सार्थक है। कवि ब्रह्मराक्षस का शिष्य होना चाहता है, उसी की तरह करूणा से आप्लावित क्योंकि शोधक का लक्ष्य अपने को समाज के लिए पूर्णतः अर्पित कर देना था, और उसके अधूरे कार्य को युक्तिसंगत परिणति तक ले जाना चाहता है। मुक्तिबोध के कहानी संग्रह 'काठ का सपना' की भूमिका में श्रीकान्त वर्मा ने लिखा है कि मुक्तिबोध स्वयं ही ब्रह्मराक्षस थे और स्वयं ही ब्रह्मराक्षस के शिष्य थे। अपनी एक अधूरी डायरी में मुक्तिबोध ने भी लिखा है कि 'मैं ब्रह्मराक्षस हूँ'। उनका ब्रह्मराक्षस और उसका शिष्य एक साथ दोनोंहोना और पूर्णता से उनके तर्क–वितर्क, अन्तर्द्वन्द्व और आत्मसंघर्श को सामने लाता है, प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के तर्क–वितर्क अन्तर्द्वन्द और आत्मसंघर्ष के साथ।

इस कविता का वैशिष्ट इसके विचार प्रधान होने में है। मुक्तिबोध के पास एक विचार या विचारधारा थी जिसे वे कविता में रूपांतरित कर देते थे, इस कौशल के साथ कि उसमें कुछ भी आरोपित नहीं प्रतीत होत था बल्कि घटना से ही विचार या विचारधारा फूटती हुई प्रतीत होती थी।

अपनी कविताओं में मुक्तिबोध ने फैंटेसी का इस्तेमाल किया है। कहीं उसका स्पर्श हलका है, तो कहीं बहुत गहरा। कभी कोई कविता पूरी फैंटेसी होती है कभी सिर्फ उसके अंत में कवि उस पर फैंटेसी की एक कूंची फेर देता है। 'ब्रह्मराक्षस' और 'अंधेरे में' इन दोनों कविताओं में फैंटेसी के दो रूप देखने को मिलते हैं। फैंटेसी वह तर्कहीन कल्पना है, जो सबसे ज्यादा स्वप्न से मिलती है। 'ब्रह्मराक्षस' की फैंटेसी बहुत कुछ रूपकात्मक है। इसमें एक प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी को ब्रह्मराक्षस का रूप दिया गया है और अंत तक उसका निर्वाह किया गया है। डॉ० वीरेन्द्र सिंह 'ब्रह्मराक्षस' कविता को मिथकीय रूप मानकर लिखते है कि ब्रह्मराक्षस बुद्धिजीवियों की अहमन्यता का मिथकीय रूप है। उसे कविता में एक भयानक बिम्ब का रूप दिया है जो पूरी कविता में व्याप्त है। ब्रह्मराक्षस की रहस्यमयता एक आदिम बिम्ब की मिथकीय रहस्यमयता है। यह मिथक कवि की आत्मा है। जो अवचेतन की संकुलता में कैद है। वह इससे जूझना चाहता है। वहीं इतिहास मन के अवचेतन में 'ब्रह्मराक्षस' कविता कवि व्यक्तित्व की संशोधन प्रक्रिया है। जो अब भी जारी है। इस मिथकीय रूपांतरण में जीवन और जगत का एक सत्य है जो बुद्धिजीवियों के 'स्वरूप' पर एक व्यंग्य करता है। नन्दकिशोर नवल ने मार्मिक शब्दों में लिखा है। 'ब्रह्मराक्षस रोमांटिक बेचैनी और तड़प से भरी हुई एक विचार गर्भित कविता है, जो मुक्तिबोध की कविताओं में 'अंधेरे में' की तरह ही क्लासिक बन चुकी है।

24.3.2 ओ काव्यात्मन् फणिधर – 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' शीर्षक मुक्तिबोध की यह कविता अनुमानतः अपनी रचना के तुरन्त बाद सर्वप्रथम 'कृति' के कविता विशेषांक (नवम्बर–दिसम्बर 1960) में प्रकाशित हुई थी। 'काव्यात्मन् फणिधार' का अर्थ हुआ काव्य की आत्मावाला सर्प अथवा काव्य–सर्प। सर्प के लिए 'फणिधर' शब्द ही उपयुक्त था, यह काव्य–सर्प उनकी अपनी कविता के लिए प्रयुक्त है। तात्पर्य यह कि वे अपनी कविता की कल्पना सर्प के रूप में करते हैं और इस कविता में उन्होंने उसके आकांक्षित रूप का चित्रण किया है।

डॉ. नामवर सिंह ने उनकी पुस्तक 'एक साहित्यिक की डायरी' पर 1964 में एक मूल्यांकन परक लेख लिखा था, जिसे प्रयाग की 'विवेचना' गोष्ठी में प्रस्तुत किया गया था। इसमें उन्होंने प्रसंगवश इस कविता का भी जिक्र किया है। कहते है, 'यह आकस्मिक नहीं है कि जिस समय अज्ञेय ने 'नए कवि के प्रति' जैसी कविता लिखी, प्राय उसी के आसपास मुक्तिबोध ने नई पीढ़ी को सम्बोधित करते हुए 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' जैसी कविता लिखने की अवश्यकता समझी। कहा जा चुका है कि यह कविता मुक्तिबोध की अपनी कविता को सर्प बनाकर उसके आदर्श रूप को उपस्थित करती है। दिलचस्प है कि वे अपनी कविता की कल्पना हमेशा सर्प के रूप में करते थे, सम्भवतः उसकी लम्बाई, गतिशीलता, अगम्य स्थानों पर भी पहुँचने की क्षमता, संवेदनशीलता, विशमता, ओजस्विता और उसके मस्तक में प्रकाशमय मणि धारण करने के कारण, कविता छोटे–बड़े उन्नीस खंडों में बँटी हुई है और लम्बी तथा फैंटास्टिक होने के बावजूद बहुत सरल ढंग से आगे बढ़ती है। ओज और वेग इसमें इतना है कि कदम–कदम पर प्रचंड काव्य–गुण का विस्फोट होता चलता है। उसी के साथ कवि की काव्य संवेदना के विभिन्न स्तर भी उद्घाटित होते चलते हैं।

ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान मुक्तिबोध की कविता सम्बन्धी प्रिय संकल्पनाएँ हैं। वे न तो केवल संवेदनात्मक कविता को पसन्द करते थे, न केवल ज्ञानात्मक कविता को। मार्क्सवादी होने के कारण कविता उनके लिए संज्ञान भी थी, इसलिए वे चाहते थे कि कवि समाज की बनावट, उसमें परस्पर विरोधी वर्ग–शक्तियों का संघर्ष सर्वहारा का पक्ष आदि तमाम बातों को समझकर कविता लिखें और ऐसी, जिसमें समझ ही नहीं, मर्म को छूने की क्षमता भी हो, इस कविता में वे सर्प को 'संवेदनमय ज्ञान नाग' कहकर सम्बोधित करते हैं, जिससे उनका मतलब स्पष्ट है।

उनकी कविता के इस इष्ट रूप ने अनेक रत्न एकत्र किए हैं, जिनकी अभी कदर नहीं है, लेकिन वे लोग आने ही वाले हैं, जो इनका मूल्य पहचानेंगे। वे काव्य सर्प से कहते हैं कि तब तक तुम उन रत्नों को किसी अंधेरे स्थान पर छिपा रखो। यदि कोई वैसा स्थान नहीं मिल रहा है, तो कुंडली मारकर उन पर बैठ ही जाओ, जिससे वे दिखलाई न पड़ें।

ओ, संवेदनमय ज्ञान–नाग...
कुण्डली मार तुम दबा रखो
फूटती हुई रिश्मयाँ ?
कि यह सच मुश्किल है,
किरनों के उजियाले बादल ये निर्मल हैं,
मेरे मन तक
वल्मीक विभासित है,
यह गुहा दमकती भीतर से
देदीप्यमान उस मधुर रश्मि वर्षा का
असहनीय आनन्द दबा
तुम छिपा चलो जो कुछ तुम हो!

कवि अभी अपनी कविता को छिपकर रहने की सलाह देता है। क्यों ? इसलिए कि वह जानता है कि वह अपनी कविता के आदर्श रूप को प्राप्त भी कर ले, तो उसकी कद्र नहीं होगी, क्योंकि हिन्दी कविता में अभी विशिष्ट सौन्दर्याभिरूचि का शासन है। कवि काव्य सर्प से कहता है – 'यह काल तुम्हारा नहीं'। उसे विश्वास है कि उसकी कविता की कीमत पहचानने वाले लोग भी शीघ्र ही सामने आएँगे। ऐतिहासिक तथ्य है कि मुक्तिबोध की मृत्यु और उनके प्रथम कविता संग्रह के प्रकाशन के साथ ही उन्हें अपना नायक मानने वाली एक पूरी पीढ़ी सामने आ गई।

ये रत्न केवल बेशकीमती रत्न नहीं हैं, जो सजावट का सामान बनते हैं। उनमें अपना और शेष सबों का तथा अपने भीतर का और बाहर की श्रमजीवी जनता का पूरा हिसाब है। वह हिसाब उन लोगों को देना होगा, जो उन रत्नों के ग्राहक और वाहक होंगे। इस तरह मुक्तिबोध की कविता कोई शौकिया कविता नहीं, पूरे सामाजिक दायित्व को स्वीकार कर चलने वाली ज्वलंत आशय की कविता होगी। उचित ही उन्होंने रत्नों को 'प्रज्वलित प्रस्तरों' की संज्ञा दी है।

मुक्तिबोध की खूबी है कि वे कविता में फैंटेसी का इस्तेमाल करते हैं, तो बिल्कुल यथार्थ की तरह उसका चित्रण करते हैं और यथार्थ का वर्णन करते हैं तो उसे फैंटेसी बना देते हैं। मुक्तिबोध काव्य सर्प कोमुदित होकर 'नागात्मक कविताएँ' कहकर सम्बोधित करता है और उससे कहता है कि तुम लहराते चलो और झाड़ी–झुरमुट में 'जहाँ कहीफेंके हुए रत्न मिलें, उन्हें अपने विस्तारित फन पर धारण कर अपनी विवर गुहा में ले जाकर सुरक्षित कर लो।

वे फेंके गए रत्न, ऐसे

जो बहुत असुविधाकारक थे,

इसलिए कि उनके किरण सूत्र से होता था

पट–परिवर्तन, यवनिका–पतन

मन में जग में !

इस कविता में सर्प की जहरीली, तीव्र और विपथगामी गति का इतना सजीव वर्णन है कि उसे देखते ही बनता है, कवि आगे उससे कहता है कि अब तुम अंधेरे से निकलकर जंगल का रास्ता पकड़ो और वन–तुलसी के नीचे से गुजरते हुए किसी बरगद का आश्रय लो। साँपों का निवास प्रायः खंडहर तथा पीपल और बरगद जैसे पेड़ ही होते हैं।

कविता के आठवें खंड में मुक्तिबोध ने उस सर्प से बरगद की शाखाओं पर तेजी से चढ़ जाने के लिए कहा है, जिससे उसकी प्रकृति सूचित होती है, लेकिन उनका ध्यान उसके नीचे सोई एक पागल स्त्री पर है, जिसके साथ उसके बच्चे की परछाई लेटी है। ये यथार्थवादी प्रसंग है, जो हमारे समाज की असलियत का एक टुकड़ा बड़े सशक्त रूप से हमारे सामने रखता है।

आधुनिक सभ्यता–संकट की प्रतीक रेखा,

उसको मैंने सपनों में कई बार देखा!!

जीने के पहले मरे समस्याओं के हल!!

ओ नागराज, चुपचाप यहाँ से चल!!

वह शिशु मुक्तिबोध को परेशान करता है। कवि कहता है, मैंने उसे कई बार सपने में भी देखा है। वह आधुनिक सभ्यता के संकट को प्रतीकित करता है। इस सभ्यता में पागल स्त्री भी गर्भवती बना दी जाती है और उसे जब पुत्र की प्राप्ति होती है तो वह जीवित नहीं रहता। माँ का स्तन मुँह में लिए जन्म के तुरन्त बाद काल–कवलित हो जाता है।

कविता में मुक्तिबोध की कई संकल्पनाएँ अनुस्यूत हैं। उनकी एक संकल्पना चिन्तन और कर्म को लेकर थी, जिसमें वे यह मानते थे कि आचाररहित विचार का कोई मतलब नहीं है। जब तक भाव और व्यवहार में एकता न स्थापित होगी, व्यक्तित्वान्तरण सम्भव नहीं है। 'गुँथे तुमसे, बिंधे तुमसे', 'ब्रह्मराक्षस' से लेकर 'अँधेरे में' तक में वे

लगातार इस बात पर जोर देते हैं। प्रस्तुत कविता में भी यही भाव मिलता है। कविता में बरगद की शाखाओंके पत्रावरण में छिपकर कोई दार्शनिक आत्मा सिसकती है। निस्सन्देह अपनी विफलता पर। विफलता उसे क्यों मिली? इसलिए कि जीवन–काल में उसने सिर्फ कर्मरहित बुद्धि–विवेक को महत्त्व दिया और अपनी सारी शक्ति अपनी भौतिक सुख–सुविधाएँ जुटाने में लगाई। जब विचार कर्म से नहीं जुड़ेंगे, तो वे कितने भी ऊँचे क्यों न हों,व्यक्ति का भौतिक सुख–सुविधाओं का दास हो जाना स्वाभाविक है। मुक्तिबोध अपने काव्य–सर्प से कहते हैं कि वह उस दार्शनिक आत्मा के आशय का विष यानी उसमें जो निष्क्रियता थी, उसका पान कर ले।

उक्त प्रसंग के पश्चात् शिशु का प्रसंग आता है। कुएँ में फेंके गए कचरे के बड़े–बड़े ढेरों के बीच कोई नवजात शिशु फेंका हुआ है। कवि कहता है कि शिशु उस विद्रोहपूर्ण प्रेम का फल है जिसे स्वीकार करने कोसमाज तैयार नहीं। कवि ने उस शिशु के बारे में जो कुछ कहा है, वह ध्यान देने लायक है –

उस शिशु स्वर से, अर्गला टूटती है,
दरवाजे खुलते हैं,
मन मिलते–जुलते हैं।
अन्तर–आनन्द मुक्ति बन बाहर आता है,
पल–पल भविष्य उच्छृंखल होता जाता है,
आगामी कई दृष्टियों के संकेत असाधारण
उसके स्वर में

मुक्तिबोध की प्रबल इच्छा है कि वह सर्प अंधेरे में उस शिशु के आक्रोश को तीव्रता से अनुभव करे और साहसपूर्वक कुएँ में उतरे। वहाँ उस शिशु को अपनी छाती से लगा ले और उसे लिए हुए रास्ते की तलाश करें रास्ता जो शिशु को ठिकाने पर पहुँचाए। वह यह भी सोचे कि जिस व्यक्ति का वह पुत्र है, वह 'सज्जन' था। वह सज्जन मध्यवर्ग का प्रगतिशील बुद्धिजीवी है, जिसमें विद्रोह और संघर्ष करने की क्षमता नहीं। ठीक ऐसा ही प्रसंग मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'भविष्य धारा' में है। मध्यवर्ग अपने अस्तित्व के पहले दौर में क्रान्तिकारी था, लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था में उसकी क्रान्तिकारिता समाप्त हो गई और वह अपनी सुविधाओं तक सिमटा हुआ अधिक से अधिक चिन्तन औरअनुभव के धरातल पर क्रान्तिकारी रह गया। क्रियाशीलता से दूर–दूर।

कविता के शेष अगले तीन खंडों में कवि की उक्ति फिर रूपात्मक हो जाती है और वह जो कुछ कहता है, काव्य सर्प को ही सम्बोधित करके। वह उसे अपने विवर की तरफ शीघ्रता से लौटने की बात कहता है – भावमुक्त, लेकिन पूरी गम्भीरता से आँखों में आँसू लिए, भाव रूप जैसे शरीर नहीं, उसकी छाया चल रही हो।

सर्प जब अपने विवर में पहुँचता है, तो यह पाता है कि उसने जो रत्न इकट्ठे किए थे, जिनसे वह विवर जगमगाता रहता था, वे गायब हैं और वह अंधेरा और स्तब्ध पड़ा है। मुर्छित, जड़ और दुस्सह। अन्तिम खंड में मुक्तिबोध उसे बतलाते हैं कि रत्न जो गायब हैं, उससे विचलित होने की जरूरत नहीं है। जिन लोगों की उसेप्रतीक्षा थी, वही उसकी अनुपस्थिति में आकर उन्हें ले गए। वे सही लोग है, इसलिए रत्नों के लुट जाने का शोक मनाना गलत है।

मुक्तिबोध जिस समाज से लड़ रहे थे, उसमें उनका एक मुख्य निशाना धर्म था, जो व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित बनाकर उसे आत्मरति सिखलाता है। कविता की परिणति धर्म विरोध में ही होती है। सर्प द्वारा एकत्रित रत्नों की सार्थकता यह है कि उसके प्रकाश में ईश्वर का असली चेहरा पहचान सकेंगे।

अब उन रत्नों का अर्थ दीप्त होगा;
उनका प्रभाव घर–घर में पहुँचेगा फिर से
उनके प्रकाश में
दीख सकेगा भीषण मुख...
वह भीषण मुख उस ब्रह्मदेव का
जो ईश्वर प्रच्छन्न स्वयं,
निज अंक शपिनी, दुहिता पत्नी सरस्वती
या विवेक धी के द्वारा ही
उद्दाम स्वार्थ या सूक्ष्म आत्म रति का प्रचार
कर, भटकाता
विक्षुब्ध जगत को, उसके अपने मन से ही
काटकर अलग,
फेंकर पृथक
उन दोनों को दूत परस्पर से, तुरन्त
अपने को स्वयं चूम जाता!

अन्तिम पंक्तियों में मुक्तिबोध अपने काव्य सर्प से कहते हैं कि वर्तमान काल संक्रमण–काल है, इसलिए विपरीत परिस्थितियों को देखकर तुम अधीर मत हो और अपने ईमान को हर तरह से सुरक्षित रखो। अभी सारे रत्न इकट्ठे नहीं किए गए, इसलिए उनकी तलाश जारी रखो, इन पंक्तियों में उन रत्नों की चमक को मुक्तिबोध ने और बढ़ा दिया है –

तुम भटक चलो,
इन अन्धकार–मैदानों में सरसर करते!!
शत–उपेक्षिता भूमि में फिंके
चुपचाप छिपाये गये
शुक्र, गुरु, बुध, मंगल
कचरे की परतों–ढँके तुम्हें मिल जायेंगे!!

प्रत्यक्ष है कि 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' मुक्तिबोध की लम्बी कविता है। कवि की कल्पना सर्प के माध्यम से अनेक स्थलों पर पहुँचती है। उन लोगों का भी ज़िक्र है, जो साँप की बाँबी में छुपाए रत्नों को ले जाते हैं, जिनमें धर्म, सृष्टिकर्ता और भगवान् का समाज और मानव–विरोधी चेहरा उजागर होगा। इस फैलाव अथवा भटकाव के बावजूद यदि कविता में बिखराव नहीं आता और वह सुगठित बनी रहती है, तो उसका कारण है। वह यह कि मुक्तिबोध का संवेदनात्मक उद्देश्य उनके सामने एकदम स्पष्ट रहता है और वह उनके सभी बिम्बों, प्रतीकों, दृश्यों और वर्णों को परस्पर जोड़ता चलता है।

24.4 सारांश – मुक्तिबोध की काव्य–चेतना का मूलाधार है मानवीय संवेदना। वे जीवन पर्यन्त शोषण मुक्त समाज का सपना देखते रहे। इनका काव्य सत्–चित् वेदना का काव्य है, ये वेदना बड़ी व्यापक और गहरी है जिसे विवेच्य कृतियों से समझा जा सकता है। पूंजीवादी व्यक्तित्व त्यागकर जन मानस के साथ जुड़ने की छटपटाहट इनमें अधिकांश है। दोनों कविताओं में इसी विचार को व्यवहार में बदलने का प्रयास है।

24.5 कठिन शब्द –

परित्यक्त – निर्वासित,	बावड़ी – छोटा तालाब,
अतिरेकवादी पूर्णता – अतिशयोक्तिपूर्ण,	रूधिर – लाल,
देदीप्यमान – चमकदार,	यवनिका पतन – पटाक्षेप,
मुख–विगलित – अश्रुपूर्ण चेहरा,	अंकशयिनी – पत्नी

24.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :

24.6.1 दीर्घ प्रश्न –

1. 'ब्रह्मराक्षस' कविता की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

2. 'ब्रह्मराक्षस मध्यवर्गीय बुद्धिजीवि की त्रासदी है' सिद्ध कीजिए।

_____

_____

3. 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' का उद्देष्य स्पष्ट कीजिए।

4. 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' कविता के काव्य–सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

24.6.2 लघु प्रश्न –

1. 'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

2. 'ब्रह्मराक्षस' कविता की बिम्ब योजना पर सोदाहरण टिप्पणी कीजिए।

3. विवेच्य कविताओं में 'व्यक्तित्वातंरण की समस्या' पर विचार कीजिए।

_____

_____

_____

4. 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' कविता का कथ्य स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

24.6.3 वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. 'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध के किस काव्य संग्रह में संकलित है ?

_____

2. 'ब्रह्मराक्षस' किसका प्रतीक है ?

_____

3. 'काव्यात्मन् फणिधर' का क्या अर्थ है ?

_____

4. 'ओ काव्यात्मन फणिधर' कविता का प्रकाशन वर्ष क्या है ?

_____

24.7 सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. निराला और मुक्तिबोध : चार लम्बी कविताएँ – नन्दकिशोर नवल।
2. मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना – नन्दकिशोर नवल।
3. मुक्तिबोध का काव्य सौष्ठव – डॉ. शंकर वसंत मुद्गल।
4. मुक्तिबोध के प्रतीक बिम्ब : चंचल चौहान।
5. मुक्तिबोध, विचार और कविता : डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, डॉ. राजेन्द्र मिश्रा।

_____